सत्यमेव जयते

बागबानी फसलों के महत्वपूर्ण रोग एवं उनका प्रबंधन

डॉ. दिनेश सिंह
डॉ. राम रोशन शर्मा

भारत सरकार
वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग
मानव संसाधन विकास मंत्रालय
(उच्चतर शिक्षा विभाग)

GOVERNMENT OF INDIA
Commission for Scientific and Technical Terminology
Ministry of Human Resource Development
(Department of Higher Education)

बागबानी फसलों के महत्वपूर्ण रोग
एवं
उनका प्रबंधन

लेखक
डॉ दिनेश सिंह,
प्रधान वैज्ञानिक, पादप रोग विज्ञान संभाग,
डॉ राम रोशन शर्मा,
प्रधान वैज्ञानिक, फसलोत्तर प्रौद्योगिकी संभाग
भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली

सत्यमेव जयते

वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग
मानव संसाधन विकास मंत्रालय
(उच्चतर शिक्षा विभाग)
भारत सरकार

Commission for Scientific and Technical Terminology
Ministry of Human Resource Develoment
(Department of Higher Education)
Government of India

2018

© भारत सरकार, 2018

© Government of India, 2018

प्रथम संस्करण, 2018
मूल्य देश में:
विदेश में :

प्रकाशक: वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग
पश्चिमी खंड–7, रामकृष्णपुरम्
नई दिल्ली – 110 066
वेबसाइट: www.cstt.nic.in
ई मेल: vgs.cstt@gmail.com

बिक्री का पता:

(1) बिक्री अनुभाग
वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग
पश्चिमी खंड – 7, रामकृष्णपुरम
नई दिल्ली – 110066

(2) प्रकाशन नियंत्रक, भारत सरकार
सिविल लाइन्स, दिल्ली – 110054.

प्राक्कथन

हाल ही वर्षों में हमारे देश ने बागवानी अर्थात् औद्यानिक फसलों के उत्पादन में काफी उन्नति की है। फलोत्पादन (81 मी. टन) एवं सब्जी उत्पादन (170 मी. टन) में हम विश्व में दूसरे पायदान पर हैं। कई पुष्पों के उत्पादन में भी हमारा विश्व में अव्वल स्थान है। औद्यानिक फसलों के उत्पादन में हुई इस वृद्धि को 'स्वर्णिम क्रांति' का नाम दिया गया है। हालांकि ये आँकड़े काफी लुभावने हैं, परंतु हमारे देश में उगाई जाने वाली अधिकतर फसलों की उत्पादकता अन्य देशों की अपेक्षा काफी कम है। कम उत्पादकता के वैसे तो कई कारण हैं, परंतु एक प्रमुख कारण यह भी है कि हमारे देश में औद्यानिक फसलों को कई प्रकार के रोग लगते हैं एवं उनका ठीक से प्रबंधन नहीं हो पाता हैं। रोग प्रबंधन की सबसे बड़ी समस्या यह है कि किसानों द्वारा रोग को ठीक से पहचान नहीं हो पाती है और यदि हो भी जाए तो, उनके प्रबंधन की जानकारी ठीक से एवं सरल भाषा में उपलब्ध नहीं हो पाती है।

इसके अतिरिक्त हमारे देश के अधिकतर फल, सब्जी एवं पुष्प उत्पादक कम शिक्षित हैं और आए दिन शोध-कार्यों का ज्ञान उन तक नहीं पहुंच पाता क्योंकि अधिकतर पाठ्य-सामग्री अंग्रेजी भाषा में है। इसके अतिरिक्त हमारे देश में लगभग हर कृषि कालेज या विश्वविद्यालय में पादप-रोग प्रबंधन पर पाठ्यक्रम पढ़ाया जाता है। उत्तरी भारत में कई ऐसे महाविद्यालयों में हिंदी में पठन-पाठन की व्यवस्था हैं। किंतु हिंदी में पाठ्य-सामग्री का हमेशा अभाव रहा है। हमारे देश के अधिकतर किसान पाठ्य-सामग्री हिंदी में चाहते हैं क्योंकि अंग्रेजी भाषा में उनका ज्ञान निम्नस्तर का होता है एवं कई किसान तो बिल्कुल अनपढ़ हैं परंतु वे हिंदी जानते हैं।

अतः भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली के वैज्ञानिकों डॉ. दिनेश सिंह एवं डॉ. राम रोशन शर्मा द्वारा '**बागवानी फसलों के महत्वपूर्ण रोग एवं उनका प्रबंधन**' विषय पर हिंदी में पुस्तक लिखने का प्रयास एक सराहनीय कार्य है। इन वैज्ञानिकों ने इस

पुस्तक में विभिन्न स्रोतों में बिखरी जानकारी को एक सूत्र में पिरोने की कोशिश की है। इस पुस्तक को लिखने हेतु इन वैज्ञानिकों ने कई पुस्तकों, शोधग्रंथों, एवं लोकप्रिय लेखों से सामग्री ली है तथा सारी जानकारी को संक्षिप्त एवं सरलतम हिंदी भाषा में लिखने का प्रयास किया है। यह अति कठिन कार्य था जिसे इन वैज्ञानिकों ने कड़ी मेहनत करके सरल किया है। अतः मैं डॉ. दिनेश सिंह, प्रधान वैज्ञानिक, पादप रोग विज्ञान संभाग, भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली एवं डॉ. राम रोशन शर्मा, प्रधान वैज्ञानिक, खाद्य विज्ञान एवं फसलोत्तर प्रौद्योगिकी संभाग, भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली को इस सराहनीय प्रयास के लिए बधाई देता हूँ।

मुझे आशा है कि यह पुस्तक किसानों, वैज्ञानिकों, शोधकर्ताओं, विषय-विशेषज्ञों, प्रसार कर्मियों, एवं छात्रों हेतु अत्यंत लाभकारी होगी।

एस. अय्यप्पन

डॉ० एस. अय्यप्पन
महानिदेशक
भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद
नई दिल्ली – 110001

लेखकीय

कृषि विज्ञान के अंतर्गत उद्यान विज्ञान की तीन शाखाएँ– फल विज्ञान, सब्जी विज्ञान एवं पुष्प विज्ञान आती हैं। इन्हीं के अंतर्गत औद्यानिक अर्थात् बागवानी फसलों के बारे में शोध कार्य किए जाते हैं। हालांकि हमारे देश में औद्यानिक फसलों के अंतर्गत मसालों, आलू, एवं खुंबी उत्पादन को भी जोड़ा जाता है। हमारे देश में अधिकतर फसलों की उत्पादकता अन्य देशों से काफी कम है। कम उत्पादकता हेतु इन फसलों पर लगने वाले रोगों का महत्वपूर्ण भूमिका है। इस फसलों के रोगों की पहचान एवं प्रबंधन हेतु कई संस्थानों एवं विश्वविद्यालयों में निरंतर शोध जारी है, जिसे पुस्तक के रूप में संकलित करने की आवश्यकता होती है ताकि इसे किसानों, पाठकों, एवं छात्रों तक आसानी से पहुँचाया जाए।

हमारे देश के अधिकतर बागवान कम शिक्षित होते हैं और आए दिन शोधकार्यों का ज्ञान उन तक नहीं पहुँच पाता क्योंकि अधिकतर पाठ्य–सामग्री अंग्रेजी भाषा में होती हैं। इसके अतिरिक्त, हमारे देश में लगभग प्रत्येक कृषि कॉलेजों या विश्वविद्यालयों में फसलों के रोग एवं प्रबंधन पर पाठ्यक्रम पढ़ाया जाता है। उत्तरी भारत में, कई ऐसे महाविद्यालयों में हिंदी के माध्यम से पठन–पाठन किया जाता है। परंतु हमारी राजभाषा हिंदी होने के बावजूद हमारे देश में हिंदी में पाठ्य–सामग्री का हमेशा अभाव रहा है। इसके अतिरिक्त हमारे देश के अधिकतर किसान पाठ्य–सामग्री हिंदी में चाहते हैं क्योंकि वे अपनी भाषा में जानकारी अच्छी तरह से जान एवं समझ सकते हैं। इन्हीं बातों के मद्दे नजर 'बागवानी फसलों के महत्वपूर्ण रोग एवं उनका प्रबंधन' विषय पर यह पुस्तक लिखने की कोशिश की गई है। इस पुस्तक में सारी बिखरी जानकारी को एक सूत्र में पिरोने की कोशिश की गई है। इस पुस्तक को लिखने के लिए हमने कई पुस्तकों, शोधग्रंथों, लोकप्रिय लेखों से सामग्री ली है और यथासंभव सारी जानकारी को संक्षिप्त एवं सरलतम भाषा में लिखने की कोशिश की है।

इस पुस्तक को लिखने में हमारे कई साथी वैज्ञानिकों, विद्यार्थियों, किसानों, एवं विषय-विषेशज्ञों ने सहायता की है। हम उनका दिल से धन्यवाद करते हैं।

हम वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग, मानव संसाधन विकास मंत्रालय, भारत सरकार के आभारी हैं, जिन्होंने हमें यह पुस्तक अपनी योजना के अंतर्गत लिखने की अनुमति दी। इस योजना के प्रभारी अधिकारी व संपादक डॉ. अशोक एन. सेलवटकर के भी आभारी हैं जिन्होंने समय-समय पर हमें इसके लिए सहयोग व दिशानिर्देश दिया।

हमें आशा ही नहीं अपितु पूर्ण विश्वास है कि यह पुस्तक किसानों, वैज्ञानिकों, शोधकर्ताओं, विषय-विशेषज्ञों, प्रसार कर्मियों, एवं छात्रों में अत्यंत लोकप्रिय होगी।

डॉ० दिनेश सिंह
डॉ० राम रोशन शर्मा

संपादकीय

विश्व में बागवानी उत्पादन में भारत का दूसरा स्थान है। इस तथ्य से हम जान सकते है कि विश्व में बागवानी फसलों का भारत का एक अपना महत्व है। वर्ष 2012–2013 में भारतीय कृषि के इतिहास में पहली बार हुआ कि अन्न–धान्य के उत्पादन से ज्यादा बागवानी फसल का उत्पादन रहा (लगभग 268.84 मिलियन टन) यह दर्शाता है कि देश ने पारंपरिक बागवानी तरीके में नई अनुसंधान पद्धतियों को ध्यान में रखकर यह प्रगति हासिल की है। बागवानी खेती खरीफ व रबी का वैशिष्ट्य यह है कि अनाजों की तुलना में प्रति हेक्टेयर अधिक उत्पाद हमें देती है। इससे प्रति इकाई क्षेत्र से अधिक आय भी प्राप्त होती है। एक बार पौधा लग जाने पर या लगाने पर मजदूर मजदूरी की आवश्यकता नहीं होती और न ही लगातार देखरेख की। कुछ बागवानी पौधों के लिए बंजर जमीन आसानी से उपयोग में लाई जा सकती है।

भारत की बढ़ती हुई विशाल जनसंख्या केवल पारंपरिक कृषि पर निर्भर होकर भोजन की आवश्यकता को पूरी नहीं कर सकती और इसलिए भारत–सरकार के विभिन्न अनुसंधान संस्थानों, कृषि विश्वविद्यालयों में बागवानी के संबंध में चल रहे अनुसंधान का लाभ उठाकर बागवानी उत्पाद की मात्रा को बढ़ाया जा सकता है। इसी प्रकार, गुणवत्ता को भी विश्वस्तर पर प्रतिष्ठापित किया जा सकता है।

बागवानी उत्पाद जैसे बढ़ रहे है उसी मात्रा में बागवानी खेती विविध भौगोलिक क्षेत्र में करने के लिए बागवानी कृषक आगे बढ़ रहे हैं। बागवानी फसलों की मात्रा व बढ़ते क्षेत्र के साथ बागवानी उत्पाद किस प्रकार ज्यादातर उपभोक्ता तक व बाजार में अच्छी स्थिति में पहुँचाए जाएँ यह भी एक मुख्य विषय है। प्रस्तुत पुस्तक बागवानी फसलों के महत्वपूर्ण रोग व उनका प्रबंधन पर एक बहुमूल्य कृति है। पाठमाला के लेखकद्वय सर्वश्री डॉ. दिनेश सिंह व डॉ० राम रोशन शर्मा भारत की कृषि अनुसंधान की शीर्ष संस्था 'भारतीय कृषि

अनुसंधान संस्था' में कार्यरत हैं व अनुसंधान में लगातार कार्यरत हैं। डॉ० शर्मा का कृषिविज्ञान विषय हिंदी साहित्य लेखन का उल्लेखनीय योगदान है। उद्यान विज्ञान विषय पर इनकी कई पुस्तकें प्रकाशित हुई है जिनपर इन्हें भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली का डॉ० रामनाथ सिंह पुरस्कार दो बार, भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद का डॉ० राजेंद्र प्रसाद पुरस्कार दो बार एवं केंद्रीय हिंदी निदेशालय, भारत सरकार का शिक्षा पुरस्कार भी प्राप्त हुए है। दोनों ने पुस्तक हिंदी में लिखकर भारत के हिंदी-भाषी क्षेत्र के बागवानी कृषकों की रोग-प्रबंधन की समस्या पर प्रकाश डाला है एवं बहूपयोगी सुझाव दिए हैं। पुस्तक की सरल भाषा व विषय के रोचक विशदीकरण से निश्चित पुस्तक को कृषकों के साथ ही अनुसंधानकर्ताओं, शिक्षकों व कृषि पत्रकारों को भी अच्छा लगेगा।

सेलवटकर

(डॉ. अशोक एन. सेलवटकर)
संपादक व समन्वयक
पाठमाला योजना

समन्वय तथा संपादन

प्रमुख संपादक

प्रो. नन्द किशोर पाण्डेय

अध्यक्ष

संपादक एवं समन्वयक

डॉ. अशोक एन. सेलवटकर

सह-संपादक

शैलेन्द्र सिंह

पुनरीक्षण

प्रो. जे. एस. श्रीवास्तव

पूर्व विभागाध्यक्ष, कवकविज्ञान व पादप-रोग विज्ञान विभाग
कृषिविज्ञान संस्थान, बनारस हिंदू विश्वविद्यालय, वाराणसी

विशेष सहयोग

श्री देवेंद्र दत्त नौटियाल
पूर्व सचिव, शब्दावली आयोग
मानव संसाधन विकास मंत्रालय
भारत सरकार

एवं

डॉ. ओ. पी. अवस्थी
प्रधान वैज्ञानिक
फल व उद्यान प्रौद्योगिकी
संभाग, भारतीय कृषि
अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली–12

प्रकाशन

श्री शिव कुमार चौधरी

सहायक निदेशक

विषय–सूची

अध्याय **पृष्ठ**

खंड – 1: फलों के रोग

1. आम के रोग	1–14
2. केले के रोग	15–24
3. नींबूवर्गीय फलों के रोग	25–37
4. अमरूद के रोग	38–43
5. अंगूर के रोग	44–51
6. पपीते के रोग	52–59
7. अनार के रोग	60–63
8. अनन्नास के रोग	64–68
9. बेर के रोग	69–71
10. आंवले के रोग	72–74
11. सेब एवं नाशपाती के रोग	75–90
12. गुठलीदार फलों के रोग	91–101
13. स्ट्रॉबेरी के रोग	102–108

खंड – 2: सब्जियों के रोग

14. आलू के रोग	109–120
15. टमाटर के रोग	121–137

16. बैंगन के रोग 138–145

17. मिर्च के रोग 146–158

18. गोभीवर्गीय सब्जियों के रोग 159–175

19. खीरावर्गीय सब्जियों के रोग 176–186

20. मटर के रोग 187–197

21. फरासबीन के रोग 198–209

22. भिंडी के रोग 210–214

23. प्याज तथा लहसुन के रोग 215–225

24. जड़ एवं तना वाली सब्जियों के रोग 226–257

25. पत्तीदार सब्जियों के रोग 258–270

26. खुंबी के रोग 271–281

खंड – 3: शोभाकारी पौधों के रोग

27. गुलाब के रोग 282–291

28. ग्लैडिओलस के रोग 292–301

29. कार्नेशन के रोग 302–310

30. गेंदे के रोग 311–317

31. गुलदाउदी के रोग 318–329

संदर्भ साहित्य 330–331

परिशिष्ट

1.	बागवानी फसलों के रोगों के प्रबंधन के लिए प्रयोग में आने वाले प्रमुख कृषि रसायन	332–339
2.	बागवानी फसलों के रोगों के प्रबंधन के लिए प्रयोग में आने वाले जैविक कवकनाशी एवं जीवाणुनाशी	340–341
3.	हिंदी - अंग्रेजी शब्दावली	342–364

खंड – 1

फलों के रोग

(Diseases of Fruits)

अध्याय – 1

आम के रोग (Diseases of mango)

आम एक ऐसा फल है जो अपने सुंदर रंग, स्वादिष्ट व सुगंधित फलों के कारण विश्व में प्रसिद्ध है। यह भारत का प्राचीनतम फल है और हमारे देश की सभ्यता एवं इतिहास से सबसे अधिक जुड़ा है। अनुमान है कि हमारे देश में आम की बागवानी 4,000 वर्षों से की जा रही है। हमारे देश में उंचे पहाड़ी क्षेत्रों को छोड़कर आम की बागवानी संपूर्ण भारत में की जाती है। इसका उत्पादन भी सबसे अधिक है। शायद यही कारण है कि इसे 'फलों का राजा' कहा जाता है। आम के पेड़ों व फलों को रोगों से बचाना अत्यंत आवश्यक है। आम में लगने वाले प्रमुख रोग व उनके रोकथाम की विधियों का वर्णन निम्नलिखित है:

1. गुच्छा रोग (Mango malformation)

आम में गुच्छा रोग नर्सरी के पौधों तथा पुराने बड़े पेड़ों में पाया जाता है। रोग के लक्षण मार्च–अप्रेल तथा जुलाई से अक्टूबर में ही दिखाई देते हैं। पौधों में सामान्यतः दो प्रकार की विकृति पाई जाती है: कायिक या गुच्छशीर्ष एवं पुष्पक्रम विकृति।

कायिक विकृति या गुच्छशीर्ष विकृत्ती के लक्षणः इस प्रकार की विकृति नए एवं पुराने (बड़े) दोनों तरह के पेड़ों में पाई जाती है। रोग के लक्षण में द्‌वितीयक शाखाओं के सिरों के निकट स्थित कक्षस्थ कलिकाएं विकृत हो जाती हैं। शीर्षस्थ कलिका का क्षय हो जाता है तथा कक्षस्थ कलिकाओं में नई वृद्‌धि होती हैं। छोटी–छोटी पत्तियों एवं पोरियों वाली शाखाओं के सामूहिक निर्माण से टहनियों के सिरे पर एक गुच्छा-सा बन जाता है। बहुत छोटी अवस्था में ही संक्रमित होने पर कभी-कभी पौधे मर जाते हैं। संक्रमित पौधों की जड़ें नष्ट हो जाती हैं। खींचने पर रोगी पौधे आसानी से उखड़ जाते हैं।

पुष्पक्रम विकृति के लक्षणः बड़े पेड़ों पर मुख्य पुष्प-मंजरियों में बंध्य फूलों और पत्तियों से युक्त गुच्छे दिखाई देते हैं। पुष्प के सभी अंगों में वृद्‌धि होने से वह स्थूल हो जाता है। पुष्पक्रम के मुख्य अक्ष एवं शाखाओं का आकार छोटा रह जाता है, अतः मंजरियां गुच्छों के समान दिखाई देती हैं। पुष्प कलिकाएं वर्धी कलिकाओं में बदल जाती हैं, और इस प्रकार से बहुसंख्यक छोटी–छोटी पत्तियों एवं छोटी पोरियों वाली शाखाएं बन जाती हैं। संपूर्ण वृद्‌धि कूर्चिका के समान दिखाई देती है। प्रभावित फूलों के वर्तिकाग्र, वर्तिका व अंडाशय मोटे हो जाते हैं। विकृत पुष्पक्रमों में साधारणतः फल नहीं लगते। लेकिन यदि फल लग भी गये तो वे शीघ्र ही मटर दाने की अवस्था में ही झड़ जाते हैं। बाद में, विकृत पुष्पक्रम मुरझा कर काले रंग के गुच्छों के रूप में रोगग्रस्त पेड़ों पर अगले वर्ष तक दिखाई पड़ते हैं।

रोगकारक एवं रोग-अनुकूल परिवेश

उपर्युक्त दोनों प्रकार की विकृतियों से संबधित ज्ञान अभी अपूर्ण है एवं रोगकारक के विषय में वैज्ञानिकों के कई मत हैं। समय–समय पर इस रोग के भिन्न-भिन्न कारण बताए गए हैं, जो इस प्रकार हैं:

फूल निकलते समय नमी की अधिकता, कार्बोहाइड्रेट/नाइट्रोजन की मात्रा में असंतुलन, वृद्धि नियामकों का असंतुलन तथा मुख्य बृहत व सूक्ष्म पोषक तत्वों का प्रभाव, आदि इस रोग का प्रमुख कारण बताए गए हैं। जबकि शुरू में कुड कीछ वैज्ञानिक इस रोग को ईरियोफिड माइट, *एसिरिया मैंजीफेरी* (*Aceria mangiferae*) से संबंधित रोग मानते थे। कुछ वैज्ञानिकों के विचार से, जिन्होंने रोगग्रस्त पौधों से इस रोग का संचरण स्वस्थ पौधों में कलम बांध कर (ग्राफ्टिंग)/चश्मा चढाकर (बड़िंग) किया था, यह एक विषाणुविकृति रोग है। अधिकांश वैज्ञानिकों द्वारा इस विकृति रोग का संबंध कवक से होना बताया है। मुख्य कवक *फ्यूजेरियम मोनिलीफोमी* उपजाति *सबग्लूटिनैन्स* (*Fusarium moniliforme* subsp. *subglutinans*) हैं। यह रोग कारक प्रभावित भागों के आंतरिक ऊतक में ही मौजूद रहते हैं। यह रोग कवक और चिंचड़ी के संयुक्त प्रभाव से होता है। उन्होंने यह संभावना प्रकट की है की कवक के बीजाणु, जो चिंचड़ी के शरीर पर चिपके होते हैं, चिंचड़ी के स्थानांतरण के साथ-साथ पेड़ के विभिन्न भागों पर वितरित हो जाते है। चिंचड़ी आक्रमण से अथवा किन्हीं अन्य कारणों से पेड़ पर हुए घावों के द्वारा यह कवक पेड़ों पर संक्रमण पैदा करके रोग पैदा करता है।

नए पौधे विकृति कायिक से अधिक प्रभावित होते हैं जब कि बड़े पेड़ों पर पुष्पक्रम विकृति का प्रकोप अधिक होता है। रोगजनक, विकृति पौधे पर उत्तरजीवी के रूप में बने रहते हैं। प्रायः रोग का फैलाव रोगी पौधों के संवर्धन एवं वितरण से होता है। उत्तरी-पश्चिम क्षेत्रों में जहाँ दिसंबर-जनवरी के माह में तापमान 10-15° सेल्सियस के बीच में होने वाले रोग के लक्षण छुटपुट रूप में मिलते हैं। औसतन तापमान 25° सेल्सियस से अधिक होने पर रोग के लक्षण नहीं पाए जाते हैं। रोग मे सबसे अधिक

पुष्पक्रम–विकृति का प्रभाव आम की दशहरी, मालदा, चौसा और लंगड़ा आदि किस्मों में अधिक होता है।

रोग-प्रबंधन

इस रोग का प्रबंधन करना कठिन होता है, क्योंकि इसके रोगकारक के विषय में अभी भी स्पष्ट मत नहीं है। फिर भी विभिन्न वैज्ञानिकों के शोध के आधार पर निम्नलिखित उपायों द्वारा रोग की तीव्रता को कम किया जा सकता है:

- प्रमाणित पौध को रोगरहित पौधशाला से प्राप्त करें तथा स्वस्थ पौधों की पौध को ही नए बाग में लगाएं।
- रोगी भागों को संक्रमण स्थल से कम से कम 30 से. मी. नीचे से काटकर नष्ट कर दें।
- पादप वृद्धि नियामकों के छिड़काव से प्रभावशाली परिणाम पाए गए हैं, जैसे:

(अ) नैपथलीन एसिटिक अम्ल, 20-25 ग्राम प्रति 100 लिटर पानी की दर से घोल बनाकर छिड़काव करें। पहला छिड़काव अक्टूबर के प्रथम सप्ताह में करें तथा आवश्यकतानुसार लगभग चार छिड़काव 10 दिन के अंतराल पर करने से लाभ होता है।

(ब) जिबरेलिक अम्ल, 5 ग्राम प्रति 100 लिटर पानी की दर से घोल बनाकर छिड़काव करें। यह फूल में निकलने वाले पुष्प गुच्छों के निकलने में विलंब कर देता है, जिससे फूलों की संख्या में बढ़ोतरी तथा परागकणों की जीवन-क्षमता बढ़ जाती है।

(स) पेक्लोब्यूट्राजोल, 4 मि. ली. दवा प्रति पेड़ के हिसाब से छिड़काब अक्टूबर के प्रथम सप्ताह या फूल की कलियाँ बनने के पहले करने से रोग विकृति में कमी आती हैं तथा स्वस्थ फूलों की संख्या बढ़ जाती है जिससे उपज में वृद्धि होती है।

- पोटेशियम मेटाबाइसल्फाइट, (0.5 प्रतिशत) के दो छिड़काव पहले अक्टूबर में तथा दूसरा फूल आने के पहला लाभकारी पाए गए हैं।
- कीटनाशी दवा जैसे डायाजिनॉन, मेथिल-आ-डिमेटॉन, मोनोक्रोटोफॉस, फॉस्फामिडॉन (0.03–0.1 प्रतिशत) के घोल का छिड़काव करने से माइट का नियंत्रण किया जा सकता है।
- कवकनाशी दवा जैसे कैप्टॉन (0.2 प्रतिशत) कार्बेन्डाजिम (0.1 प्रतिशत), थीरम (0.2 प्रतिशत), या मैंकोजेब (0.25 प्रतिशत) का घोल बना कर पेड़ों पर छिड़काव करें।
- बागों में उचित मात्रा में नाइट्रोजन एवं फॉस्फोरस युक्त उर्वरक देने से लाभ होता है।
- जाड़े के मौसम में, आम के पेड़ों को चारों तरफ सफेद पॉलीथीन की चादर (करीब 400 गेज मोटी) से ढक देना चाहिए। ढके बागों का तापमान, सामान्य तापमान से अधिक होता है जिससे फूल में पुष्पगुच्छ निकलते हैं और उसकी बढ़वार भी तेजी से होने के कारण फल जल्दी लगते हैं तथा रोग में कमी आती है।

2. श्यामव्रण (Anthracnose)

लक्षण

इस रोग से आम के विभिन्न भागों में अलग-अलग लक्षण जैसे मंजरी अंगमारी, पर्णचित्ती एवं फल-विगलन पाए जाते हैं। पत्तियों पर भूरे या काले रंग के गोल या अनियमित आकार के धब्बे दिखाई देते हैं। बाद में, ये धब्बे आपस में मिलकर बड़ा क्षेत्र बनाते है और इससे पत्ती का अधिकांश भाग प्रभावित होता है। पत्तियों की सामान्य वृद्धि रुक जाती है तथा रोगी पत्तियां कुंचित हो जाती हैं। रोगग्रस्त ऊतक सूखकर गिर जाते हैं। इस प्रकार पत्तियां कटी-कटी दिखाई देती हैं। रोग की तीव्रता बढ़ने

पर, सभी पत्तियां पीली पड़कर गिर जाती हैं। हरी टहनियों पर लंबे एवं गहरे–भूरे रंग के धब्बे दिखाई देतें है। ये धब्बे टहनियों को चारों तरफ से घेर लेते हैं जिससे ऊपरी हिस्सा सूखने लगता है तथा रोग ऊपरी हिस्से से शुरू होकर नीचे की तरफ बढ़ता जाता है जिसे शीर्षरंभी क्षय रोग कहते हैं।

कच्चे फलों पर काले धब्बे दिखाई देते हैं। धब्बों के नीचे का गूदा फट जाता है एवं रोगी फल पेड़ से गिर जाते हैं। पके हुए फलों पर काले, गोल या अनियमित आकार के कुछ धंसे हुए धब्बे दिखाई देते हैं। बाद में ये धब्बे फैलकर आम के पूरे छिलके पर फैल जाते हैं। फल मुलायम होकर सड़ने लगते हैं। इस प्रकार के लक्षण प्रायः फल के ढेंपी के पास से शुरू होते हैं और नीचे की ओर लकीरों के समान फैल जाते हैं। रोगी फल पेड़ पर, परिवहन और भंडारण के समय सड़ जाते हैं। फलों के रोगग्रस्त स्थान पर गुलाबी रंग की कवक की बढ़वार दिखाई देती है।

रोगकारक एवं रोग-अनुकूल परिवेश

यह रोग *कोलेटोट्राइकम ग्लीयोस्फोरिऑयडीज* *(Colletotrichum gloeosporioides)* नामक कवक के द्वारा होता है। यह रोगकारक आम की रोगग्रस्त पत्तियों, टहनियों तथा अन्य परपोषी पेड़ों पर जीवित बना रहता है। रोग का फैलाव पानी की बौछार एवं कीटों के द्वारा होता है। रोग के विकास के लिए 25° सेल्सियस तापमान अनुकूल होता है। वातावरण में नमी की अधिकता एवं कुहासा, रोगकारक के आक्रमण के लिए अनुकूल दशाएं होती हैं। नए प्ररोहों, पुष्पों या फलों के निर्माण के समय अधिक नमी या आर्द्रता, वर्षा एवं तापमान 24 से 32° सेल्सियस होने पर, रोग की व्यापकता बढ़ जाती है, जिससे फसल को काफी हानि होती है।

रोग-प्रबंधन

इस रोग का प्रबंधन निम्नलिखित प्रकार से किया जा सकता है:–

- बाग की जमीन पर गिर-पड़े सभी रोगी पौधों के अवशेषों जैसे पत्तियों, टहनियों एवं फलों को इकट्ठा करके नष्ट करें।
- पेड़ों के ऊपर की रोगग्रस्त टहनियों की काट-छांट के बाद, ताँबा-युक्त कवकनाशी दवाओं जैसे बोर्डो मिश्रण या कॉपर ऑक्सीकलोराइड का छिड़काव पेड़ों पर करें।
- वृक्षों को उचित मात्रा में उर्वरक दें तथा समय-समय पर सिंचाई करें।
- जिन क्षेत्रों में मौसम रोग को बढ़ाने वाला होता है, वहाँ पेड़ और बाग की सफाई तथा कवकनाशी रसायनों के सामयिक छिड़काव पर विशेष ध्यान दें।
- कवकनाशी दवाइयों जैसे बोर्डो मिश्रण (4:4:50), मैंकोजेब (0.25 प्रतिशत), जिनेब (0.25 प्रतिशत), कॉपर ऑक्सीक्लोराइड (0.3 प्रतिशत), कार्बोन्डैजिम (0.1 प्रतिशत) का छिड़काव निम्न प्रकार से किया जा सकता है:
- पौधशाला में छोटे पौधों पर इन कवकनाशी दवाओं का छिड़काव फरवरी, अप्रेल और सितंबर माह में करें।
- बड़े पेड़ों पर, छिड़काव जनवरी माह से जून-जुलाई तक करें। पहला छिड़काव मंजरियों के आने के पहले और शेष फल लगने पर करें। शुरू में दो छिड़काव में एक सप्ताह और बाद के छिड़काव में 15 दिन का अंतराल रखें।
- फलों के तुड़ाई, परिवहन एवं भंडारण के समय फलों

पर किसी प्रकार की खरोंच या घाव न होने पाए। फलों का भंडारण कम आर्द्रता तथा उचित तापमान वाले हवादार कमरों में करें।

- भंडारण के पूर्व फलों को 50° सेल्सियस तापमान पर गर्म पानी से 15 मिनट तक उपचारित करने से रोग का प्रभाव कम हो जाता है।

3. चूर्णिल आसिता (Powdery mildew)

लक्षण

साधारणतः इस रोग का संक्रमण दिसंबर-मार्च में होता है। रोग के लक्षण पेड़ों में फूल आने के समय पुष्पक्रम पर दिखाई देते हैं। पुष्पक्रम एवं नई पत्तियों पर सफेद या कभी-कभी धूसर रंग लिए चूर्ण दिखाई देता है, जिसमें कवक के बीजाणु एवं कवकजाल होते हैं। रोग का आक्रमण पुष्पक्रम के ऊपरी हिस्से से प्रारंभ होकर नीचे की तरफ पुष्प, अक्ष, नई पत्तियों एवं पतली शाखाओं पर फैलता है। पुष्पक्रम का रोगग्रस्त भाग बुरी तरह से क्षतिग्रस्त होकर नीचे गिर जाता है, जिसके कारण फलों की संख्या में या तो भारी कमी आ जाती है या फल लगते ही नहीं। यदि संक्रमण से पहले फल लग गए हों तो वे छोटे मटर के आकार की ही अवस्था में पीले पड़कर गिर जाते हैं। रोग की तीव्रता में फल विकृत तथा बदरंग भी हो जाते हैं।

रोगकारक एवं रोग अनुकूल परिवश

यह रोग एक अतिकल्पी परजीवी कवक *ऑइडियम मैंजीफेरी* (*Oidium mangiferae*) द्वारा होता है। यह रोगकारक आम के पेड़ पर ही उत्तरजीवी के रूप में रहता है। बाग में रोग का फैलाव हवा द्वारा होता है। नम तथा गर्म वातावरण, रोग के संक्रमण के लिए अनुकूल होता है। फूल लगने के समय रात के ठंडी होने तथा वर्षा या कोहरा होने पर इस रोग की व्यापकता

बढ़ जाती है। इस रोग की बढ़वार के लिए अधिकतम तापमान 27-31° सेल्सियस तथा न्यूनतम तापमान 10-13° सेल्सियस अनुकूल होता है।

रोग-प्रबंधन

इस रोग का प्रबंधन निम्नलिखित विधियों द्वारा से किया जा सकता है।

- बाग की सफाई का विशेष धयान दें तथा संक्रमित पौधों के अवशेषों को बाग से निकाल कर नष्ट कर दें।
- पुष्पक्रमों पर गंधक के महीने चुर्ण का बुरकाव 2-3 बार करें। पहला बुरकाव फूल खिलने से पहले तथा उसके बाद के बुरकाव पन्द्रह दिन के अंतराल पर करें।
- कवकनाशी दवाइयों जैसे सल्फेक्स (0.2 प्रतिशत), कैराथेन (0.06 प्रतिशत), कार्बेन्डाजिम (0.1 प्रतिशत), बेलेटान या सैप्राल (0.1 प्रतिशत) का पानी में घोल बनाकर, पेड़ों पर 15 दिन के अंतराल पर 2-3 बाद छिड़काव करें। मैदानी क्षेत्रों में पहला छिड़काव, रोग के लक्षण जनवरी–फरवरी में या फूल खिलते समय दिखाई देने पर करें। शुरू के छिड़काव सल्फेक्स से करें तथा बाद के छिड़कावों में जब वातावरण का औसत तापमान 30° सेल्सियस से अधिक हो तो इस दवा का प्रयोग न करें।

4. शीर्षारंभी क्षय (Die-back)

इस रोग का संक्रमण पेड़ में किसी भी अवस्था में अक्टूबर–नवंबर में स्पष्ट रूप से दिखाई देता हैं। इस रोग के मुख्य लक्षण बड़े पेड़ों की टहनियों एवं शाखाओं का झुलसना, उनकी सभी पत्तियों का गिर जाना तथा संपूर्ण पेड़ का झुलसना आदि हैं। टहनियों का छिलका उसके शीर्षाग्र के कुछ नीचे से गहरे रंग का हो जाता है तथा नए प्ररोह नीचे से झुलसने लगते

हैं। पत्ती भूरी हो जाती है तथा उसके किनारे ऊपर की ओर मुड़ जाते हैं, जिससे इस भाग के अंदर की सभी पत्तियाँ गिर जाती हैं। रोग की तीव्रता बढ़ने पर टहनियों का भीतरी हिस्स भूरा हो जाता है। संक्रमित भाग से गोंदीय स्राव निकलता है। रोग का संक्रमण कलम बांधे हुए जोड़ों पर होने से नए पौधे मर जाते हैं।

रोगकारक एवं रोग-अनुकूल परिवेश

यह रोग *लैसिओडिप्लोडिया थियोब्रोमी (Lasiodiplodia theobromae)* नामक कवक से होता है। यह रोगकारक, रोगी पौधों की टहनियों एवं काष्ठ ऊतकों पर उत्तरजीवी बना रहता है। अधिकतम तापमान 31.5° सेल्सियस तथा न्यूनतम तापमान 26° सेल्सियस एवं आपेक्षिक आर्द्रता लगभग 80 प्रतिशत तथा हल्की वर्षा का होना, रोग वृद्धि एवं तीव्रता में सहायक होता है।

रोग-प्रबंधन

इस रोग का प्रबंधन निम्नलिखित प्रकार से किया जा सकता है–

- रोगग्रस्त टहनियों की काट-छांट रोगग्रस्त स्थान के लगभग 7 से 8 से. मी. नीचे से करें तथा कटे हुए स्थानों पर कवकनाशी दवा का लेप करें। इसके बाद कॉपर ऑक्सीक्लोराइड (0.3 प्रतिशत) का घोल बनाकर छिड़काव करें।
- नए पौधे तैयार करने के लिए कलम बाँधने के लिए कलम का चुनाव स्वस्थ पेड़ों से करें। कलम बांधे हुए पौधों को खुले व सूखे वातावरण में रखें।

5. सर्कोस्पोरा पर्ण–चित्ती *(Cercospora* leaf spot)

लक्षण

इस रोग के लक्षण पत्तियों पर गोलाकार या अनियमित आकार के धब्बों के रूप में दिखाई देते हैं। ये धब्बे आकार में 3. 5–10 मि.मी. व्यास तक के होते हैं। इन धब्बों के कारण, पत्तियों

के ऊपरी किनारे भूरे रंग के तथा मध्य भाग राख के रंग का हो जाता है जबकि पत्तियों की निचली सतह पर बने धब्बों के किनारे गहरे रंग के तथा मध्य भाग कहरूआ (अंबर) रंग का होता है। इन धब्बों के आपस में मिलने से बड़े आकार के अनियमित क्षेत्र बन जाते हैं तथा संक्रमित भाग सूखकर नष्ट हो जाता हैं

रोगकारक एवं रोग-अनुकूल परिवेश

यह रोग *स्टिगमिना मैंजीफेरी (Stigmina mangiferae)* नामक कवक द्वारा होता है। इस रोगकारक कवक का अन्य नाम *सर्कोस्पोरा मैंजीफेरी इंडिका (Cercospora mangiferae-indica)* है। यह कवक वृक्षों के अवशेषों व पत्तियों पर उत्तरजीवी बना रहता है। रोग का फैलाव हवा द्वारा होता है।

रोग का प्रबंधन

इस रोग का प्रबंधन निम्नलिखित प्रकार से किया जा सकता है :–

- रोगी पेड़ों के अवशेषों, विशेषकर पत्तियों को बाग से इकट्ठा करके नष्ट कर दें।
- कवकनाशी दवाओं जैसे कॉपर ऑक्सीक्लोराइड (0.3 प्रतिशत), मैंकोजेब (0.25 प्रतिशत), का पानी में घोल बना कर पेड़ों पर छिड़काव करें। पहला छिड़काव फल लगने के लगभग पन्द्रह दिन बाद से ही शुरू कर दें। इसके बाद 3 छिड़काव, 10–15 दिन के अंतराल पर आवश्यकतानुसार करें।

6. जीवाणुज कैंकर (Bacterial canker)

लक्षण

इस रोग के लक्षण पत्तियों, पत्ती के डंठलों, तनों, टहनियों, शाखाओं तथा फलों पर जलीय धब्बों के रूप में दिखाई देते हैं, जो बाद में कैंकर का रूप ले लेते हैं। पत्ती के शीर्ष भाग पर एवं शिराओं के बीच सूक्ष्म अनियमित या कोणीय, जलीय धब्बे दिखाई

देते हैं। बाद में ये धब्बे गहरे भूरे रंग के तथा 4 मि. मी व्यास के हो जाते हैं। इन धब्बों के समूह के चारों तरफ पीला प्रभामंडल दिखाई देता है। पुराने धब्बों में ऊतकक्षय के कारण संक्रमित भाग सूख जाता है। बाद में ये धब्बे खुरदरे एवं कुछ उठे हुए हो जाते हैं। कई धब्बों के आपस में मिलने से गहरे भूरे रंग के अनियमित आकार के ऊतकक्षयी कैंकर क्षेत्र बन जाते हैं। रोगी पत्तियाँ पीली होकर गिर जाती हैं। शाखाओं, टहनियों एवं तनों पर जलीय, फूले हुए गहरे भूरे रंग की धब्बे दिखाई देते हैं जिनमें से गोंदीय स्राव भी होता है। बाद में ये धब्बे खुरदरे होकर कैंकर का रूप ले लेते हैं। फलों का छिलका फट जाता है। रोग की तीव्रता अधिक होने पर अधिकांश फल गिर जाते हैं। इस प्रकार के लक्षण अप्रैल माह के अंतिम सप्ताह से दिखाई पड़ते हैं।

रोगकारक एवं रोग-अनुकूल परिवेश

यह रोग *जैन्थोमोनास सिट्री पैथोवार मैंजीफेरी इंडिकी* (*Xanthomonas citri pv. mangiferae indicae*) नामक जीवाणु से होता है। यह जीवाणु रोगी टहनियों एवं पत्तियों पर उत्तरजीवी बना रहता है। यह रोगकारक नवंबर से मार्च तक सुषुप्तावस्था में रहता है तथा वर्षा ऋतु के समय (जुलाई से अगस्त) उग्र अवस्था में आ जाता है। वर्षा के बाद, पत्तियों व टहनियों पर इसका नया संक्रमण होता है। इस रोग की वृद्धि के लिए 28 से 30° सेल्सियस तापमान तथा 90 प्रतिशत आपेक्षित आर्द्रता अनुकूल होती हैं। इस रोग का फैलाव हवा एवं वर्षा की बौछार द्वारा होता है। रोग संक्रमण के लगभग 12-14 दिन के बाद पत्त्यिों एवं फलों पर रोग के लक्षण दिखाई देने लगते हैं।

रोग-प्रबंधन

इस रोग का प्रबंधन निम्नलिखित प्रकार से किया जा सकता है :–

- बागों का नियमित निरीक्षण करते रहें।

- संक्रमित पत्तियों, टहनियों, शाखाओं एवं फलों को बाग से इकट्ठा करके नष्ट कर दें।
- पेड़ तथा बागों की स्वच्छता का विशेष ध्यान रखें तथा स्वस्थ एवं प्रमाणित पौधों को ही लगाएं।
- रोग के लक्षण दिखाई पड़ने पर, कॉपर ऑक्सीक्लोराइड (0.3 प्रतिशत) का घोल बना कर पेड़ों पर छिड़काव करें। इसके बाद, 15 दिन के अंतराल पर कुल 5 छिड़काव करें। छिड़काव के घोल में स्टिकर सैन्डोबिट, ट्राइटोन (0.1 प्रतिशत) के हिसाब से अवश्य मिलाएं।
- ताम्रयुक्त कवकनाशी दवा जैसे कॉपर ऑक्सीक्लोराइड (0.3 प्रतिशत) या स्ट्रेप्टोसाइक्लिन (200-300 पी. पी. एम) का छिड़काव 15-20 दिन के अंतराल पर (कुल 5-6 छिड़काव) करने पर लाभ होता है।
- रोग प्रतिरोधी किस्में जैसे जहाँगीर, फजली और स्वर्ण रेखा आदि के बाग लगाएं।

7. काला सिरा (Black tip)

लक्षण

इस रोग को कोयली, ऊतकक्षय, कोयल पद्दा एवं चिमनी रोग के नामों से जाना जाता है। रोग के लक्षण अप्रेल-मई में दिखाई पड़ने लगते हैं जब फलों का आकार लगभग 1 से. मी. का हो जाता है। फल के कोणी सिरे पर ऊतकक्षयी धब्बे दिखाई देते हैं । ये धब्बे छोटे और पांडुरित होते हैं। बाद में ये धीरे-धीरे फैलते हैं तथा काले रंग के होकर पूरे सिरे को ढक लेते हैं, जिसके फलस्वरूप फल का सिरा चपटा व कुछ नुकीला हो जाता है। संक्रमित भाग का छिलका सख्त एवं धँसा हुआ होता है। फल के अंदर के ऊतक मृदु हो जाते है। उनमें मृतजीवी जीवाणुओं का आक्रमण होने से, दबाने पर उनसे गहरे भूरे रंग का द्रव निकलता है। रोगी फल विकृत हो जाते है।

रोगकारक एवं रोग-अनुकूल परिवेश

यह रोग कवक या जीवाणु से न होकर, ईंट के भट्ठों से निकलने वाले धुएं में विद्यमान जहरीली गैसों जैसे सल्फर डाइऑक्साइड, एथिलीन, एवं कार्बन मोनाऑक्साइड के कारण होता है। इन गैसों के कारण वातावरण दूषित हो जाता है। इनमें सल्फर डाइऑक्साइड गैस सबसे अधिक नुकसानदायक होती है। रोग की व्यापकता हवा के दिशा और गति पर निर्भर करती है। उत्तर–दक्षिण की तुलना में पूर्व-पश्चिम दिशा में बने ईंट के भटटों के काफी नजदीक वाले बागों की पत्तियाँ ऐंठकर अधोकुंचित हो जाती हैं।

रोग-प्रबंधन

इस रोग का प्रबंधन निम्नलिखित प्रकार से किया जा सकता है :–

- ईंट एवं चुने के भट्टों को बागों से कम से कम 1.5 से 2.5 कि.मी की दूरी पर लगाएं।
- ईंट के भट्टों में कम से कम 15-18 मीटर ऊँची चिमनियों का प्रयोग करें।
- यदि संभव हो तो भट्टों को मार्च के प्रथम सप्ताह से मई के तीसरे सप्ताह तक बंद रखें।
- पेड़ों पर सुहागे या कॉस्टिक सोडा, 6-8 कि. ग्रा. प्रति हजार लिटर पानी में घोल बनाकर लगभग तीन छिड़काव करें। पहला छिड़काव फूल आने के पूर्व, दूसरा छिड़काव फूल खिलते समय तथा तीसरा छिड़काव फल लगने के समय करें।

अध्याय – 2

केले के रोग (Diseases of banana)

विश्व के उष्णकटिबंधीय जलवायु वाले देशों में केले का व्यावसायिक महत्त्व है। कई अफ्रीकी देशों में केला वहां के लोगों के भोजन की एक मुख्य फसल है तथा विश्व खाद्य उत्पादन में इसकी अग्रणी भूमिका है। यह लाभदायक बहुवर्षीय फसल है जिससे उत्पादकों की पूरे वर्ष आमदनी होती है, क्योंकि केले में वर्ष फल भर लगते रहते हैं। भारत में केले में कीड़ों की तुलना में रोग अधिक लगते हैं। रोगों में विषाणु-जनित रोग महत्वपूर्ण हैं। इसी प्रकार कवक-जनित रोगों में पनामा म्लानि, पर्णचित्ती, श्यामव्रण, एन्थ्रक्नोज, सिगार अंत सड़न आदि प्रमुख रोग हैं। केले में लगने वाले प्रमुख रोग व उनकी रोकथाम की विधियों का वर्णन निम्नलिखित है:

1. सिगाटोका पर्ण चित्ती (Sigatoka leaf spot)

लक्षण

इस रोग के लक्षण पौधे में ऊपर से तीसरी या चौथी पत्तियों पर सूक्ष्य चित्तियों के रूप में दिखाई देते हैं। ये चित्तियाँ हल्की पीली धारियों के रूप में, 1-10 मि.मि. तथा 0.5-1.0 मि.मि चौड़ी तथा पूर्ण शिराओं के समानांतर होती हैं। बाद में ये धारियाँ

चौड़ाई में फैलकर दीर्घवृत्ताकार, भूरे धब्बों में परिवर्तित हो जाती हैं। इन धब्बों का मध्य भाग सूखकर हल्के धूसर और किनारा गहरे भूरे या काले रंग का हो जाता है। परिपक्व धब्बा चक्षु बिंदु के समान हो जाता है। पुरानी पत्तियों की अपेक्षा नई पत्तियों पर धब्बे अधिक बड़े, गोल तथा स्पष्ट होते हैं। रोगी पौधा झुलस जाता है। रोग की व्यापकता बढ़ने पर, पत्तियों का मध्य शिरा एवं पर्णवृंत सड़ जाते हैं, जिससे पत्तियाँ सूखकर लटक जाती हैं। पत्ती का अधिकांश भाग या पूरी पत्ती के झुलस जाने पर फलपुंज तथा फल का आकार छोटा रह जाता है तथा फल पकते नहीं है। प्रभावित केलों की महक तथा स्वाद में असामान्य परिवर्तन हो जाते हैं। साथ ही इनकी भंडारण क्षमता में कमी आ जाती है।

रोगकारक एवं रोग-अनुकूल परिवेश

यह रोग, *सर्कोस्पोरा म्यूसी* (*Cercospora musae*) नामक कवक से होता है। यह रोगकारक संक्रमित एवं पौधे के अन्य भाग पर उत्तरजीवी बना रहता है। रोग का फैलाव हवा, एवं वर्षा की बूँदों के द्वारा होता है। रोग-विकास के लिए 23-25° सेल्सियस तापमान और आर्द्र मौसम अनुकूल होता है। 21° सेल्सियस या उसके नीचे के तापमान एवं आर्द्रता अधिक होने पर यह रोग बहुत कम लगता है। कमजोर भूमि तथा पानी के निकास का उचित प्रबंध न होने पर रोग की तीव्रता काफी बढ़ जाती है।

रोग-प्रबंधन

इस रोग का प्रबंधन निम्नलिखित प्रकार से किया जा सकता है : –

- केले के खेत की स्वच्छता पर विशेष ध्यान रखें। रोगी पत्तियों, तथा खरपतवारों को बाग से निकाल कर नष्ट कर दें।
- केले के खेत में जल–निकास का उचित प्रबंध रखें।

- पौधों के लिए संतुलित उर्वरकों का समय पर प्रयोग करें।
- नए बाग लगाने के लिए रोगरहित स्तंभ या भूस्तारी का प्रयोग करें। रोपने के पूर्व, पौधों को कॉपर ऑक्सीक्लोराइड (0.05 प्रतिशत) या कार्बेन्डाजिम (0.05 प्रतिशत) के घोल में डुबोकर उपचारित करें।
- कॉपर ऑक्सीक्लोराइड (0.3 प्रतिशत), या जिनेब, या क्लोरोथैलोनिल (0.2 प्रतिशत) या मैंकोजेब (0.25 प्रतिशत), या कार्बेन्डाजिक (0.1 प्रतिशत) का छिड़काव 15–25 दिन के अंतराल पर करें। ट्राइटोन या सैन्डोबिट एक मि.ली प्रति लिटर दवा के घोल की दर से मिला लें।

2. फ्यूजेरियम म्लानि या पनामा रोग (Fusarium wilt or Panama disease)

रोग का आक्रमण पौधे के किसी भी भाग पर एवं किसी भी अवस्था में हो सकता है। पौधे के नीचे की पुरानी पत्तियों के पर्णवृंत पर हल्की–पीली धारियाँ दिखाई देती हैं तथा पत्तियाँ पीली पड़ने लगती हैं। पर्णवृंत के टूटने से पत्तियाँ लटक जाती हैं जो बाद में सूख जाती हैं। तने के आधार से ऊपर की नई पत्तियों पर ऊतकक्षय के लक्षण दिखाई देते हैं। रोग के पहली बार लक्षण दिखाई देने के 5–6 सप्ताह अंदर ही पौधे की सभी पत्तियाँ नष्ट हो जाती हैं और केवल मूल तना खड़ा रह जाता है। संक्रमित पत्ती, पर्णवृंत या तने के भीतरी भाग हल्के पीले या गहरे रंग के हो जाते हैं, जो इस रोग की विशेष पहचान है। कहीं–कहीं इनका रंग गहरा लाल या बैंगनी होता है। तने के आधार पर दरारें बन जाती हैं। प्रकंद को काटकर देखने पर उसका आंतरिक भाग पीला, लाल या भूरा दिखाई देता है। रोगी प्रकंद की जड़ें काली पड़कर सड़ जाती हैं। मूल पर्णवृंत तथा तने के अंदर से सड़ी हुई मछली जैसी दुर्गंध आने लगती है।

रोगकारक एवं रोग-अनुकूल परिवेश

यह राग *फ्यूजेरियम ऑक्सीस्पोरम* उपजाति *क्यूबेंसी* (*Fusarium oxysporum* f. sp. *cubense)* नामक कवक द्वारा होता है। यह रोगकारक पोषी की अनुपस्थिति में भूमि में उत्तजीवी बना रहता है। कवक का प्रवेश पौधों में जड़ों पर बने घावों के माध्यम से होता है। इस प्रकार का घाव कर्षण क्रिया करते समय या गोलकृमि, *रैडोफोलस सिमिलिस* (*Radopholus similis)* के आक्रमण से होता है। रोग का फैलाव सिंचाई के पानी, मनुष्य, जानवर तथा यंत्र द्वारा होता है। एक स्थान से दूसरे स्थान तक रोग का फैलाव रोगी भूस्तारियों के प्रयोग से होता है। इस रोग की वृद्धि के लिए हल्की या बलुई दोमट तथा अम्लीय मृदा अनुकूल होती हैं।

रोग-प्रबंधन

इस रोग का प्रबंधन निम्नलिखित प्रकार से किया जा सकता है:

- केले के खेत के लिए उदासीन या क्षारीय मृदा उचित होती है। अन्य मृदाओं में केले का रोपण ना करें।
- भूमि में पानी के निकास का प्रबंधन अच्छा होना चाहिए।
- केले के खेत में रोग के लक्षण दिखाई देने पर संक्रमित पेड़ को जड़ सहित उखाड़कर नष्ट कर दें। गड्ढे में से जड़ के टुकड़ों को भी चुनकर नष्ट कर दें। इसके बाद उस गड्ढे में चूना डालकर ढक दें तथा ऐसे स्थान पर कुछ समय तक केले का पौधा न लगाएं।
- रोगी पौधों को काटने के लिए जो उपकरण प्रयोग करें उन्हें आग, स्पिरिट या फिनाइल के घोल से धो लें।
- कृषि कार्य करते समय जड़ों व प्रकंदों को घाव व खरोंचों से बचाएं।

- केला लगाने के लिए रोगरहित अंतःभूस्तारी का प्रयोग करें। लगाने से पूर्व कार्बेन्डाजिम (0.1 प्रतिशत) घोल में डुबोकर उपचारित करें। पौधा लगाने के 6 माह बाद इसी दवा के घोल का जड़ों के पास छिड़काव करें।
- रोगरोधी जातियों जैसे बसराई, केवेन्डिश, पूवन, मंगोली पेलाडिन, राजाबले तथा वामनकेली के पौधे लगाएं।
- रोग की रोकथाम में एक्टिनोमाइसीज जैव नियंत्रक भी प्रभावी पाया गया है।

3. **श्यामव्रण या फल-विगलन** (Anthracnose or fruit rot)

लक्षण

इस रोग को काला विगलन, फल-विगलन और शिखर विगलन आदि नामों से भी जाना जाता है। श्यामव्रण रोग का संक्रमण कच्चे फलों में पौधों पर ही हो जाता है, लेकिन रोग के लक्षण पके फलों पर परिवहन के समय या भंडारण के समय होते हैं। पकते हुए फलों के छिलके पर बिखरे हुए छोटे–छोटे, गोल, भूरे या काले रंग के कुछ धंसे हुए धब्बे दिखाई देते हैं। ये धब्बे आपस में मिलकर फल की छाल पर बड़े धब्बे बना देते हैं। रोगी फल का शीर्ष या नीचे का हिस्सा सड़ने लगता है। नम वातावरण में संक्रमित स्थानों पर रोगकारक के छोटे–छोटे बिंदु आकार के गुलाबी या नारंगी रंग के समूहों में फलनकाय दिखाई देते हैं जिसे एसरवुलस कहते हैं। अविकसित फल समय से पहले ही पक जाते हैं एवं काले पड़ जाते हैं। फलों में चोट लगने पर फल समय से पहले ही पक जाते हैं, एवं काले पड़े जाते हैं। फलों में चोट लगने पर फल भंडारण के समय रोगकारक आसानी से प्रवेश कर जाते है और काले रंग के धब्बे उत्पन्न करते हैं जिससे फल सड़ने लगता है।

रोगकारक एवं रोग-अनुकूल परिवेश

यह रोग *ग्लीयोस्पोरियम म्यूजेरम* (*Gloeosporium musarum*) तथा *कोलेटोट्राइकम म्यूजी* (*Colletotrichum musae*) नामक कवकों से होता है। ये कवक रोगी पौधों के अवशेषों पर उत्तरजीवी बने रहते हैं । रोग का फैलाव जल, कीट तथा वायु द्वारा होता है। रोग के विकास के लिए आर्द्र वातावरण तथा 25-30° सेल्सियस तापमान अनुकूल होता है।

रोग-प्रबंधन

इस रोग का प्रबंधन निम्नलिखित प्रकार से किया जा सकता है:

- केले के स्तंभ पर जब फलों का गुच्छा पूरा खुल जाए तब उसके आगे का फूलों वाला भाग काट दें। संक्रमित पौधों के अवशेषों को खेत से निकाल कर नष्ट कर दें।
- कवकनाशी जैसे कॉपर ऑक्सीक्लोराइड (0.3 प्रतिशत) या मैंकोजब (0.25 प्रतिशत) के घोल में सैन्डोविट या ट्राइटोन (0.1 प्रतिशत) को मिलाकर पौधों पर छिड़काव वर्षा ऋतु के पहले 20–30 दिन के अंतराल पर करें।
- फलों को भंडारण के समय विगलन से बचाने के लिए फलों की तुड़ाई उचित समय पर करें। परिवहन के समय फलों पर किसी प्रकार का घाव व खरोंच नहीं लगने दें। फलों का भंडारण अधिक तापमान पर अधिक समय तक न करें। फलों के भंडारण के लिए भंडारण का तापमान 13-14° सेल्सियस होना चाहिए।
- फलों को भंडारण से पूर्व कवकनाशी जैसे कार्बेन्डाजिम, थायोबेन्डाजोल, या थायोफिनेट–मेथिल (0.01–0.04 प्रतिशत) के घोल में एक से दो मिनट तक डुबो कर उपचारित करें।

- रोगप्रतिरोधी किस्मों जैसे कोथ्यिा या मुथिया को लगाने पर रोग कम लगता है।

4. जीवाणुज म्लानि या मोको रोग (Bacterial wilt or Moko disease)

लक्षण

इस रोग का संक्रमण होने पर पौधे की नई पत्तियों के पर्णवृंत के पास का रंग पीला पड़ जाता है। उसके बाद पर्णवृंत टूट जाता है, जिससे पौधे की मध्य पत्ती सूख कर मर जाती है। साथ ही अन्य पत्तियाँ भी मुरझाकर सूख जाती हैं। रोगी पौधों के तनों को काटकर देखने पर आंतरिक भाग हल्के पीले, गहरे भूरे या नील-काले रंग के दिखाई पड़ते हैं। कटे भागों को कुछ समय के लिए नम स्थानों पर रखने पर, उनमें से अपारदर्शी मटमैले धूसर या भूरे रंग का अवपंकी स्राव निकलता है जिसमें वास्तव में जीवाणु के बीजाणु होते हैं, जो जीवाणुज म्लानि रोग की पहचान है। जीवणुज विगलन के मृदु धब्बे धनकंद या तने में पाए जाते हैं, जिससे यह रोग आसानी से पहचाना जा सकता है। फल की बढ़वार रूक जाती है तथा फलियाँ काली होकर सिकुड़ जाती हैं। रोग का संक्रमण पौधे पर फल लगने के बाद होने पर फल की सतह पर रोग के लक्षण दिखाई नहीं देते हैं, लेकिन यदि फलों को काटकर देखा जाए तो उनका गूदा भूरे रंग का दिखाई देता है।

रोगकारक एवं रोग-अनुकूल परिवेश

यह रोग, *राल्स्टोनिया सोलेनेसिएरम* रेस 2 बायोवार 1 (*Ralstonia salanacearum race* 2 biovar 1) नामक जीवाणु से होता है। यह जीवाणु मिट्टी में उत्तरजीवी बना रहता है। यह रोग खराब जल–निकास वाली गीली भूमि में अधिक पाया जाता है। जड़ में बने घावों के द्वारा यह जीवाणु पौधे के अंदर प्रवेश कर जाता है और उसे रोगी बना देता है। रोग का फैलाव यंत्रों, फूल

पर मंडराने वाली मक्षिका तथा बर्रे के द्वारा होता है। इस रोग की वृद्धि के लिए 35-37° सेल्सियस तापमान अनुकूल होता है।

रोग-प्रबंधन

इस रोग का प्रबंधन निम्नलिखित प्रकार से किया जा सकता है:

- खेत में जल–निकास का अच्छा प्रबंधन करें।
- संक्रमित पौधों के अवशेषों तथा रोगी पौधों के आसपास के पौधों को खेत से निकाल कर नष्ट कर दें।
- भूमि को ग्रीष्म ऋतु में कम से कम पांच बार जुताई करके खुला छोड़ दें तथा उसके बाद 9 माह तक भूमि में कुछ नहीं लगाएं।
- कम से कम दो वर्ष का फसल-चक्र अपनाएं जिसमें रोगग्राही फसलों को कभी ना लगाएं। खेतों में संरक्षी फसल जैसे ज्वार को लगाएं।
- नए केले के बाग लगाने के लिए स्वस्थ तथा प्रमाणित पौधों को चुनें।
- संगरोध नियम का कड़ाई से पालन करना चाहिए, जिससे संक्रमित पौधों एवं फलों को एक स्थान से दूसरे स्थान पर ना ले जाएं।
- काट–छाँट करने वाले यंत्रों को 5 प्रतिशत फॉर्मेल्डीहाइड या फिनायल के घोल में आधे मिनट तक डुबाकर अच्छी तरह से निर्जर्मीकृत कर लें।
- रोग–प्रतिरोधी किस्मों, जैसे मोन्थन और पूवन, को लगाने पर इस रोग से बचा जा सकता है।

5. गुच्छित चूड़ रोग (Bunchy top disease)

लक्षण

यह रोग पौधे की किसी भी अवस्था में हो सकता हैं। रोग का आक्रमण पौधे की शुरू की अवस्था में होने पर रोगी पौधे की

पत्तियाँ पौधे के शीर्ष पर एक गुच्छे के रूप में दिखाई देती हैं। पौधे बौने तथा पत्तियाँ स्वस्थ पौधों की अपेक्षा सीधी होती हैं। रोग की व्यापकता बढ़ने पर, पौधे की बढ़वार रूक जाने से पौधे काफी छोटे रह जाते हैं तथा उनमें फल नही लगते हैं। बड़े पौधों पर द्वितीकय संक्रमण होने पर, रोग के लक्षण पत्तियों पर दिखाई देते हैं। पर्ण पटल पर हरी पर्ण-धारियाँ बन जाती हैं। नई निकलती या निकली गोल लिपटी हुई पत्तियों पर पीताभ-श्वेत धारियाँ दिखाई देती हैं। सीमांत में हरिमाहीनता तथा कुंचन के लक्षण भी दिखायी देते हैं। बाद में पत्तियाँ भंगुर हो जाती हैं तथा पणवृंत छोटे हो जाते हैं। रोग की तीव्रता बढ़ने पर फल के गुच्छों की बढ़वार रूक जाती है तथा ऐसे फलों का बाजार मूल्य कम हो जाता है।

रोगकारक एवं रोग-अनुकूल परिवेश

यह रोग केले के *गुच्छित चूड़ विषाणु* (*Banana bunchy top virus*) से होता है। यह विषाणु केले के प्रकंद, अंतःभूस्तारी तथा अन्य अंगों में उत्तरजीवी बना रहता है। इसी प्रकार रोगी पौधों से रोपण के लिए निकाले गए अंतःभूस्तारी ही रोग के प्रारंभिक स्रोत का मुख्य साधन हैं। इन्हीं के माध्यम से रोग एक क्षेत्र से दूसरे क्षेत्र में पहुँचता है। केले के खेतों में रोग का फैलाव माहू द्वारा होता है।

रोग-प्रबंधन

रोग का प्रबंधन निम्नलिखित प्रकार से किया जा सकता है: –

- केले के पौधे लगाने के लिए स्वस्थ तथा प्रमाणित अंतःभूस्तारियों का ही प्रयोग करें।
- पादप संगरोध कानून का कड़ाई से पालन करें। इसके अंतर्गत एक क्षेत्र से दूसरे क्षेत्र में केले के कायिक भाग को ले जाने एवं ले आने पर प्रतिबंध होना चाहिए।

- संक्रमित पौधों में जैसे ही विषाणु के लक्षण दिखाई दें, तो पौधे को जड़ समेत निकाल कर जला दें।
- कीटनाशी दवाईयाँ जैसे पैराथियौन, मैलाथियॉन या इन्डोसल्फॉन (0.1 से 0.15 प्रतिशत) का छिड़काव करें। दानेदार कीटनाशी जैसे लिन्डेन, डाइसिस्टान, डाइमेथोएट (रोगर) या फोरेट, 25 ग्राम प्रति पौधे के हिसाब से जमीन की सतह पर तने के पास और पत्तियों के अक्ष में दें।
- सर्वांत्री कीटनाशी दवा जैसे मोनोक्रोटोफॉस या मेथिल डिमोटोन (0.05-0.2 मि.ली.) का पौधे में इंजेक्शन लगाएं। यह क्रिया 20-30 दिनके अंतराल पर दुहराते रहें।

अध्याय – 3

नींबू वर्गीय फलों के रोग (Diseases of citrus)

उत्पादन की दृष्टि से भारत में उगाए जाने वाले फलों में नींबू वर्गीय फलों का तीसरा स्थान है। हमारे देश में फलों के कुल क्षेत्रफल के लगभग 9 प्रतिशत हिस्से में ये फल उगाए जाते हैं तथा ये कुल फलोत्पादन का 8 प्रतिशत अंशदान करते हैं। भारत में यद्यपि ये फल कई शताब्दियों से पैदा किए जा रहे हैं परन्तु इनकी व्यावसायिक खेती लगभग 30-40 साल पहले से ही आरम्भ हुई। नींबू वर्गीय फलों के अंतर्गत माल्टा, संतरा, नींबू, लेमन, ग्रेपफ्रूट, चकोतरा, तुरंज, मीठा नींबू और खट्टी नारंगी आदि फल आते हैं। नींबू वर्गीय फलों में कई रोग लगते हैं, परन्तु निम्नलिखित रोग बहुत क्षति पहुंचाते हैं:

1. **श्यामव्रण** (Anthracnose), **पश्चमारी** (Die back), **शीर्षारंभी क्षय** (Withertip)

लक्षण

नींबू वर्गीय फलों में इस रोग के लक्षण मुख्यतः दो प्रकार के होते हैं, पश्चमारी या शीर्षारंभी क्षय एवं श्यामव्रण पश्चमारी। शुरू की अवस्था में नई या पुरानी टहनियों की शीर्षाग्र भाग की

पत्तियाँ गिर जाती है तथा टहनियां ऊपर से नीचे की ओर सूखने लगती हैं। सूखे हुए भाग राख के रंग जैसे हो जाते हैं। रोगी स्थानों पर काफी संख्या में छोटे, काले बिन्दु के समान बिखरे हुए कवक की बढ़वार (एसरवुलस) दिखाई देती हैं। रोग के ये लक्षण गर्मियों और वर्षा में अधिक स्पष्ट होते हैं। श्यामव्रण के लक्षण पत्तियों पर प्रारम्भ में लाल भूरे रंग के धब्बे दिखायी देते हैं, जिससे पत्तियां विकृत हो जाती हैं। इन धब्बों का मध्य भाग धूसर या राख के रंग का हो जाता है। रोगी स्थान पर छोटे–छोटे बिन्दु आकार के काले रंग की संरचना (एसरवुलस) दिखाई देती है। टहनियों पर शीर्षारंभी क्षय के साथ ही अन्य स्थानों पर भी ऊतकक्षय हो जाता है। संक्रमित पुष्पगुच्छ फल लगने से पहले ही गिर जाते हैं। पुष्पवृन्त तथा पुष्प पर भी भूरे या काले रंग के धब्बे दिखायी देते हैं एवं फलों पर लाल भूरे धब्बे बनते हैं। रोगी फल का गूदा सड़ने लगता है। ये धब्बे फल के किसी भी भाग पर उत्पन्न हो सकते हैं, लेकिन फल के ढेंपी के पास अधिक बनते हैं और नीचे की ओर फैलते हैं। रोगग्रस्त फल, फूल तथा पत्तियां शीघ्र ही गिर जाती हैं।

रोगकारक एवं रोग-अनुकूल परिवेष

यह रोग *कोलेटोट्राइकम ग्लीयोस्पोरीऑइडीज* (*Colletotrichum gloeosporiodes*) नामक कवक से होता है। यह कवक भूमि पर पड़ी रोगी टहनियों और पत्तियों तथा पेड़ के रोगी भागों पर जीवित बना रहता है। रोग का फैलाव वर्षा की बूंदों, वायु तथा कीट द्वारा होता है। रोग के संक्रमण तथा वृद्धि के लिए 28–30° सेल्सियस तापमान तथा लगभग 95 प्रतिशत आपेक्षिक आर्द्रता अनुकूल होती है। वर्षा ऋतु में यह रोग अधिक फैलता है। स्वस्थ तथा मजबूत पेड़ इस रोग से कम प्रभावित होते हैं।

रोग-प्रबंधन

- पौधों के स्वास्थ्य तथा सुदृढ़ता को बनाए रखने के लिए बागों में उचित कर्षण-क्रियाओं तथा रोग-प्रबंधन की क्रियाओं को अपनाएं।
- रोगी टहनियों को वर्षा ऋतु से पहले काटकर जला दें। इसी समय बाग में गिरी टहनियों, पत्तियों और सूखे फलों को भी इकट्ठा करके जला दें।
- कटाई–छंटाई के बाद कटे हुए भाग पर कवकनाशी पेस्ट जैसे बोर्डो पेस्ट लगाएं।
- गर्मी और वर्षा ऋतु में बोर्डो मिश्रण (5:5:50), कॉपर ऑक्सीक्लाराइड (0.3 प्रतिशत) या मैंकोजेब (0.25 प्रतिशत) का पानी में घोल बनाकर पेड़ों पर छिड़काव करें। कवकनाशी का छिड़काव सितंबरं के प्रथम सप्ताह से शुरू करके, 15 दिन के अंतराल पर कुल तीन छिड़काव करने से फल का गिरना बंद हो जाता है।

2. चूर्णिल आसिता (Powdery mildew)

लक्षण

यह रोग पत्तियों, टहनियों एवं फलों पर दिखाई देता है। प्रारम्भ में छोटे–छोटे सफेद धब्बे पत्तियों पर दिखायी देते हैं। इन धब्बों पर सफेद आटे की तरह चुर्णी पदार्थ फैला रहता है। बाद में ये धब्बे आकार में बढ़ जाते हैं और अंत में आपस में मिलकर पत्ती के बड़े हिस्से को घेर लेते हैं। इस सफेद चुर्णी पदार्थ में कवक का बहिःपादपीय कवकजाल, बीजाणुधानीधर और बीजाणु उपस्थित होते हैं। इसी प्रकार के आटे–जैसे चूर्णीय धब्बे, टहनियों और फलों पर भी दिखाई देते हैं। पत्तियां विकृत और आकार में छोटी रह जाती हैं। इसके अलावा, इस रोग में भी पौधों की टहनियां ऊपर से सूखने लगती हैं, जिससे शीर्षारंभी क्षय के लक्षण उत्पन्न हो जाते हैं। रोग की गंभीरता बढ़ने पर पत्तियां ओर कच्चे फल अपरिपक्व अवस्था में ही गिर जाते हैं।

रोगकारक एवं रोग-अनुकूल परिवेश

यह रोग, *ऐक्रोस्पोरियम टिंजीटेनियम (Acrosporium tingitanium)* नामक कवक के द्वारा होता है। यह कवक पेड़ पर ही उत्तरजीवी बना रहता है। इस रोग के लिए पर्याप्त नमी, गर्म और शुष्क मौसम बहुत अनुकूल होता है। बसंत ऋतु व जाड़े के समय की जलवायु इस रोग की वृद्धि में काफी सहायक होती है।

रोग-प्रबंधन

- संक्रमित पौधों के अवशेषों जैसे पत्तियाँ, शाखाओं तथा फलों को बगीचे से इकट्ठा करके नष्ट कर दें।
- गंधक के महीन चूर्ण (200–300 मेश) का सुबह के समय, जब पत्तियों पर ओस पड़ी हो, बुरकाव करें।
- कवकनाशी दवा कार्बेन्डाजिम (एक ग्राम) या कैलिक्सीन, कैराथेन (0.5 मिली लिटर) या सल्फेक्स (2 ग्राम) प्रति लिटर पानी की दर से घोल बनाकर पेड़ों पर छिड़काव करें। पहला छिड़काव या बुरकाव रोग–लक्षण दिखाई देने पर ही शुरू करें तथा 10–15 दिन के अंतराल पर कुल 2–3 छिड़काव करें।

3. गुलाबी रोग (Pink disease)

लक्षण

गुलाबी रोग के लक्षण वर्षा ऋतु या उसके समाप्त होने पर, तने तथा शाखाओं पर दिखाई देते हैं। यह मुसम्मी और संतरा दोनों को अधिक हानि पहुंचाता है। रोगी शाखा या स्तंभ की छाल सूखकर कड़ी हो जाती है और उसमें कुछ मात्रा में गोंद का स्राव होने लगता है। छाल में खड़ी दरारें पड़ जाती हैं और शीघ्र ही इन दरारों से या छाल को फाड़कर सफेदी या गुलाबी रंग के कवक के फफोले बाहर उभर आते हैं तथा छाल पर सफेद या गुलाबी कवकजाल फैल जाता है। रोग के बढ़ने पर छाल फटकर

अलग हो जाती है तथा उसके नीचे की भूरी संक्रमित लकड़ी दिखाई देने लगती है। धीरे–धीरे यह रोग रोगी शाखाओं या स्तंभ को चारों ओर से घेर लेता है, जिससे जल तथा पोषक तत्वों के स्थानांतरण में रूकावट पड़ती है। पत्तियां पीली होकर, सूखकर गिर जाती हैं। पतली शाखाएं शीघ्र सूख जाती हैं।

रोगकारक एवं रोग-अनुकूल परिवेश

यह रोग *बॉट्रियोबेसिडियम साल्मोनीकलर* (*Botryobasidium salmonicolor*) नामक कवक से होता है। इस कवक की अलैंगिक अवस्था में गुलाबी रंग के फफोले उत्पन्न होते हैं। कभी–कभी इस अवस्था से पूर्व साल्मन गुलाबी रंग की अवस्था बनती है। कवक की सभी अवस्थाएं रोग प्रसार में सहायक होती हैं। यह रोगकारक कवकजाल के रूप में पेड़ की छाल के नीचे पड़े सुषुप्तावस्था में बनी गांठों के रूप में जीवित रहता है। रोग का फैलाव वर्षा के जल, वायु तथा कीटों द्वारा होता है। वर्षा ऋतु में रोग की वृद्धि अधिक होती है।

रोग-प्रबंधन

इस रोग का प्रबंधन निम्नलिखित प्रकार से किया जा सकता है:

- पेड़ के रोगी भाग को काटकर जला दें। रोग की गंभीर अवस्था में तने या बहुत सी शाखाओं पर फैले होने पर, पूरे पेड़ को काटकर जला देना ही लाभदायक होता है।
- रोग प्रारंभिक अवस्था में होने पर, रोगी भाग को चाकू से छीलकर उस पर कवकनाशी दवा का लेप लगा दें। बने घावों पर गोंदार्ति की तरह कवकनाशी दवा का लेप लगाएं।
- गर्मियों और वर्षा ऋतु में आवश्यकतानुसार समय–समय पर कवकनाशी दवा जैसे कॉपर आक्सीक्लोराइड (0.3 प्रतिशत), कार्बेन्डाजिम (0.1 प्रतिशत) का पानी में घोल बनाकर पेड़ों पर छिड़काव आवश्यकतानुसार करते रहें।

4. गोंदार्ति (Gummosis)

लक्षण

गोंदार्ति, नींबूवर्गीय फलों का महत्वपूर्ण रोग है। इस रोग को अन्य नामों जैसे भूरा विगलन, कालर विगलन, जड़ विगलन, फल विगलन आदि से भी जानते हैं। इस रोग के लक्षण पौधे के सभी भागों जैसे जड़, तना, पत्तियों, शाखाओं तथा फूलों पर दिखाई देते हैं। यह रोग नर्सरी के पौधों के साथ-साथ बड़े पौधों में भी लगता है। संक्रमण तने में भूमि की सतह से शुरू होता है जहां जलीय क्षेत्र दिखाई देता है जिससे बाद में एक भूरा गोंदीय पदार्थ निकलता है। तने के छिलके पर स्पष्ट कठोर गोंद का भूरा धब्बा दिखाई देता है। गंभीर अवस्था में तने पर चारों तरफ से धंसा हुआ घेरा बना लेता है। शाखाओं पर घेरा होने पर शाखाएं सूख जाती हैं, पत्तियां गिर जाती हैं जिससे फलों की उपज कम हो जाती है। संक्रमित पौधों में पोषक तत्वों की कमी हो जाती है जिसके परिणामस्वरूप पत्तियां हल्की पीली तथा मध्य शिरा भी पीली हो जाती है। रोग सुग्राही मूलवृंत की जड़ें कॉलर क्षेत्र में अधिक संक्रमित होती हैं और प्रायः मुख्य तने के छिलके तक फैल जाती हैं। फाइटोफ्थोरा से संक्रमित पत्तियां अंगमारी लक्षण के साथ फैलते हुए धब्बे सामान्यतः दिखाई पड़ते हैं। पत्तियां पूर्ण अंगमारी के पहले ही झड़ जाती हैं। इस तरह के लक्षण नर्सरी के पौधों में दिखाई पड़ते हैं। फलों पर भूरे रंग की सड़न दिखाई पड़ती है। संक्रमित गिरे हुए फल में सड़ी हुई गंध का लक्षण होता है, जिससे इस रोग के लगने की पहचान दूर से ही हो जाती है। भूरा विगलन रोग कटाई फलों का उपरांत की गंभीर समस्या है।

रोगकारक एवं रोग-अनुकूल परिवेश

यह रोग मुख्य रूप से *फाइटोफ्थोरा निकोटियाना*

(*Phytophthora nicotiana*) या *फा. पाल्मीवोरा* (*P. palmivora*) नामक कवकों से होता है। फाइटोफ्थोरा कवक भूमि में रहता है। जैसे ही स्वतंत्र जल भूमि में उपलब्ध होता है इसके बीजाणु प्राकृतिक चोटिल जड़ों को संक्रमित करते हैं। यह पाया गया है कि भारी भूमि जिसमें जलनिकास की व्यवस्था ठीक न हों, एवं अधिक सिंचाई जिससे मुख्य तने से पानी काफी समय तक ठहराव हो, से रोग अधिक होता है। इसके अलावा कई और कारण हैं जिससे रोग फैलता है, जैसे कलियों को कम ऊंचाई पर लगना, पौधों को अधिक गहराई में लगाना, स्तंभ के चारों तरफ मिट्‌टी चढाना, क्राउन, जड़ों या तने के आधार में चोट होना, आदि।

रोग-प्रबंधन

इस रोग का प्रबंधन निम्नलिखित प्रकार से किया जा सकता है:–

- बगीचा लगाने के लिए अच्छी जल-निकास वाली भूमि का चुनाव करें।
- बीज क्यारी, नर्सरी तथा पौध के लगने की जगह को वेपाम (0.91 प्रतिशत) से उपचारित करें।
- कलिकायन तने पर 30-45 से. मी. ऊपर करनी चाहिए।
- वर्षा ऋतु में, बगीचे से खपरतवार को निकाल कर नष्ट कर दें।
- कोमल प्ररोहों को मुख्य तने से निकाल देना चाहिए, जिससे फाइटोफ्थोरा का संक्रमण कम हो जाता है।
- आवश्यकतानुसार सिंचाई करें तथा बगीचे में पानी अधिक देर तक खड़ा न रहने दें।
- मुख्य तनों पर कम से कम जमीन की सतह से 60 सें. मी. ऊपर साल में एक बार वर्षा से पहले बोंडो या चौबटिया पेस्ट का लेप लगाएं।

- बोंडो मिश्रण (1 प्रतिशत) घोल से या जिंक सल्फेट (0.5 प्रतिशत) के साथ छिड़काव करने पर फल विगलन को कम किया जा सकता है। क्लोरोथैलेनिक (0.2 प्रतिशत) या कॉपर आक्सीक्लोराइड (0.3 प्रतिशत) का छिड़काव करने से पत्तियों का गिरना या विगलन को नियंत्रित किया जा सकता है। मेटालेक्सिल तथा मैन्कोजेब (0.25 प्रतिशत) से पेड़ों पर छिड़काव करने से भी रोग को नियंत्रित किया जा सकता है।
- मेंड के चारों तरफ थाले में मेटालेक्सिल के साथ *ट्राइकोडरमा हारजियेनम* नामक जैविक का प्रयोग करें।
- नारंगी (स्वीट औरंज) के लिए रंगपुर नींबू और क्लीयोपैट्रा मैडरीन का मूलवृंत के रूप में प्रयोग करें क्योंकि ये दोनों रोगप्रतिरोधी मूलवृंत हैं।

5. कैंकर (Canker)

लक्षण

यह रोग पौधे के सभी भागों जैसे पत्तियों, तनों, फलों एवं कांटों पर पाया जाता है। पत्तियों पर उठे हुए भूरे रंग के धब्बे हो जाते है जो चारों तरफ से पीले रंग के घेरे से घिरे होते हैं। तनों पर भी इस रागे के लक्षण पाए जाते हैं। फलों पर ये धब्बे स्पष्ट रूप से स्पंज की तरह होते हैं। कैंकर के धब्बे छिलके तक ही सीमित होते हैं। यह रोग मनुष्यों को नुकसान नहीं पहुँचाता है लेकिन पौधों को बुरी तरह से प्रभावित करता है। जिससे उत्पादन पर बुरा प्रभाव पड़ता है। कैंकर से संक्रमित फल खाने के लिए सुरक्षित होते हैं, लेकिन इससे फलों की कीमत घट जाती है।

रोगकारक एवं रोग-अनुकूल परिवेश

यह रोग *जेंथोमोनास सीट्री (Xanthomonas citri)* नामक जीवाणु से होता है। इस रोग के जीवाणु संक्रमित पत्तियों,

टहनियों, तथा शाखाओं पर जीवित बने रहते हैं तथा एक मौसम से दूसरे मौसम तक फैलते हैं। जीवाणु पौधे में चोट, या रंध्र से होकर प्रवेश करते हैं तथा दो कोशिकाओं के बीच में संख्या में वृद्धि करते हैं। यह रोग मुख्य रूप से हवा, वर्षा की बूदों और कीटों के द्वारा फैलता है। पूर्ण सुरंगक (लीफ माइनर) कीट इस रोग को फैलाने में मुख्य भूमिका निभाता है। यह रोग सबसे ज्यादा कागजी लाइम, चकोत्तरा, तथा किन्नू में होता है।

रोग-प्रबंधन

इस रोग का प्रबंधन निम्नलिखित प्रकार से करना चाहिएः-

- मानसून आने से पहले सभी संक्रमित टहनियों को पेड़ से काटकर जला दें तथा कटी हुई टहनियों के कटे हुए भाग पर बोर्डो मिश्रण का लेप लगाएं।
- पौधे रोग रहित नर्सरी से लें।
- नींबुवर्गीय पौधे की नर्सरी, कैंकर से संक्रमित बगीचों के पास न उगाएं।
- 7 किलाग्राम नीम की खली को 140 लिटर पानी में घोलकर 15 दिन के अंतराल पर दो या तीन छिड़काव प्रति वर्ष करें।
- 100 मि. ग्राम स्ट्रेप्टोमाइसीन सल्फेट तथा 1 ग्राम कॉपर ऑक्सीक्लोराइड को एक लिटर पानी की दर से घोल बनाकर 15 दिन के अंतराल पर छिड़काव करने से रोग को फैलने से रोका जा सकता हैं।
- टैंजरिन किंग, संतरे और सतसुमा की तरह इस रोग के प्रति रोग प्रतिरोधी है।

5. हरितन (Greening)

लक्षण

इस रोग में पत्तियों की मध्य शिरा पीली पड़ जाती है। जब

पौधा प्रथम बार प्रभावित होता है तो पत्तियों की शिराएं हरी हो जाती हैं तथा पर्ण पटल, हरित चितकबरी हो जाती हैं। इस रोग से प्रभावित पौधे छोटे, सीधे तथा जिंक एवं लोहे की कमी के लक्षण के समान दिखाई देते हैं। इस रोग के कारण, पौधे की जड़ें खराब हो जाती हैं तथा जड़ों की वृद्धि रुक जाती है, जिसके परिणामस्वरूप झकड़ा जड़ें अत्यधिक कम हो जाती हैं। देर से संक्रमित पौधों में अधिक मात्रा में फूल लगते हैं। फलों पर पीले रंग का धब्बे पड़ जाते हैं। ऐसा मालूम होता है कि इसमें आर्तय दोह हो गया हैं। फलों का आकार छोटा हो जाता है तथा फलों में रस की मात्रा कम हो जाती है। फल से हरे गहरे रंग का गोंद निकलता है।

रोगकारक एवं रोग-अनुकूल परिवेश

नींबू का हरित रोग, *कैन्डिडेटस लिबेरीबैक्टर एशियाटिकस* (*Candidatus liberibacter assiaticus*) नामक जीवाणु से होता है। यह जीवाणु फ्लोएम ऊतकों में पाया जाता है। यह रोग संक्रमित पौधे से स्वस्थ पौधे में कलम–बंधन, अमरबेल तथा कीटों द्वारा फैलाया जाता है। कीटों में सिट्रस सिल्ला द्वारा यह रोग स्थानांतरित होता है : –

रोग-प्रबंधन

इस रोग का प्रबंधन निम्नलिखित प्रकार से किया जा सकता है।

- रोग के फैलने से रोकने के लिए पादप नियंत्रण का कड़ाई से पालन करना चाहिए।
- संक्रमित पौधे से कली का चुनाव कलम बाधने के लिए न करें। नर्सरी पौधे को ऐसे जगह पर तैयार करें जहां पर यह रोग नहीं हो।
- गर्म वाष्प या गर्म जल (49 डिग्री सेल्सियस तापमान पर 50 मिनट के लिए) से उपचारित करने पर रोग-रहित नर्सरी पौधे प्राप्त किए जा सकते हैं।

- जैवरोधी दवाएं जैसे लीडरमाइसिन या पेनिसिलिन को वेविस्टीन (500 पीपीएस) के साथ छिड़काव करने पर रोग के प्रभाव को कम किया जा सकता है।
- कली को 1000 पी.पी.एम लीडरमाइसिन या स्टेप्ट्रोमाइसिन या बीपी–10एल का 50 पी.पी एम. में डुबाने से पौधा पूरी तरह से स्वस्थ हो जाते हैं।
- यह रोग मुख्य रूप से कीट द्वारा फैलता है। इसको रोकने के लिए कीटनाशी दवाएं जैसे डीमेथोएट (0.03 प्रतिशत) मेथिल डेमोटान (0.012 प्रतिशत), फॉस्फोमिडान (0.085 प्रतिशत) या मोनाक्रोटोफॉस (0.02 प्रतिशत) का 30 दिन के अंतराल पर पेड़ों पर छिड़काव करें।

6. ट्रिस्टिजा (Tristiza)

लक्षण

इस रोग के मुख्य लक्षण रोगग्राही मूलवृंत एवं सांकुर में पूर्ण या कुछ भाग की नई वृद्धि को रोक देते हैं और पत्तियां विभिन्न तरह की पीली आभाओं में बदल जाती हैं। पत्तियां लंबाई में ऊपर की तरफ मुड़ जाती हैं। बाद में इस रोग से प्रभावित पत्तियां झड़ जाती हैं। इसके अलावा, ट्रिस्टिजा के अन्य लक्षण भी पौधों पर दिखाई देते हैं जैसे नसों का साफ दिखाई देना, तने पर गड्ढे बनना, जड़ों पर गढ्ढ़ा बनना आदि हैं। इस विषाणु के कुछ प्रभेद मुख्य तथा पार्श्विक नसों में कार्वी इरप्सन को बढ़ाते है जो कि हमेशा पत्तियों की ऊपरी सतह पर होता है।

रोगकारक एवं रोग-अनुकूल परिवेश

यह रोग *ट्रिस्टिेजा क्लोस्टेरो (Tristiza clostero)* विषाणु से होता है। यह विषाणु पाधे के पोषवाह उतक में रहता है। यह विषाणु *ट्राक्सॉप्टेरा सिट्रीसिडा* नामक माहू द्वारा फैलता है। साथ ही यह विषाणु कलिकायन व कलमबंधन में प्रयोग किए जाने वाले चाकू या अन्य सामग्री द्वारा भी फैलता है। अमरबेवेल भी

इस विषाणु को फैलाती है। यह विषाणु नींबुवंश की लगभग सभी जातियों को संक्रमित करता है।

रोग-प्रबंधन

इस रोग का प्रबंधन निम्नलिखित विधियों को अपनाकर किया जा सकता है:

- इस रोग से संक्रमित सभी पौधों को नर्सरी या बगीचे से निकालकर नष्ट कर दें।
- इस रोग से मुक्त नर्सरी पौधों के ही बाग में लगाएं।
- मैन्डेरिन तथा औरंज के लिए रंगपुर लाइम तथा क्लियोपैट्रा को मैन्डेरिन के लिए मूलवृंत के रूप में प्रयोग करें

7. छाल शल्कता या शल्की छाल (Psorosis or scaly bark)

लक्षण

नींबूवर्गीय फलों में छाल रोग पांच प्रकार के विषाणुओं के द्वारा होता है जो पेड़ों पर विभिन्न प्रकार के रोग–लक्षण पैदा करते हैं। इनका वर्णन निम्नलिखित प्रकार से है:

(क) छालशल्कता 'ए' विषाणु (Psorosis A virus): इस विषाणु के संक्रमण से तना एवं मोटी शाखाओं की छाल पर भूरे या बादामी रंग की पपड़ी बनने लगती हैं। रोगग्रस्त भाग गोलाकार होता है, जहां पहले छोटे फफोले दिखाई देते हैं, जो बाद में बढ़कर पूरे स्तंभ या शाखा को घेर लेते हैं। ऊपर की संक्रमित छाल नीचे की जीवित छाल से पपड़ी के रूप में अलग हो जाती है तथा बाहर की ओर मुड़ जाती है। रोग की तीव्रता बढ़ने पर, पूरी छाल तथा लकड़ी का कुछ भाग लालिमायुक्त भूरे रंग का हो जाता है। कभी–कभी थोड़ी सी गोंद भी निकली हुई दिखाई देती है। पत्तियां पीली और छोटी रह जाती हैं।

(ख)छालशल्कता बी विषाणु (*Psorosis B virus*): इस विषाणु के संक्रमण से पहले गोंद निकलती है और बाद में

पपड़ियां बनती हैं, जो लंबाई में ऊपर की ओर बढ़ती हैं। नई पत्तियों में शिराओं के पीले चमकीनेपन के साथ–साथ पुरानी पत्तियों पर भी पारभासी गोल धब्बे दिखाई देते हैं। इस प्रकार के धब्बे फलों पर भी प्रकट होते हैं।

(ग) ब्लाइंड पॉकेट छाल–शलक्ता विषाणु (*Blind Pocket Psorosis virus*): इस विषाणु से तने पर ऊपर की ओर बढ़ती हुई समांतर, गहरी नालियां दिखायी देती हैं। कभी–कभी पपड़ी भी दिखाई देती है तथा गोंद भी निकला होता है।

(घ) कन्केव गम छालशल्कता विषाणु (*Cancave gum Psorosis virus*): इस विषाणु में नालियां अधिक लंबी एवं चौडी होती हैं। पत्तियाँ की शिराएं चमकीली हो जाती हैं। नालियां अधिकतर छाल से ढकी रहती हैं। रोगग्रस्त छाल फट जाती है तथा गोंद निकलता है।

(च) पर्ण बैल्लक छालशल्कता (*Leaf roll Psorosis virus*): इसमें पत्तियां सिकुड़ जाती हैं तथा उन पर विशेष प्रकार के धब्बे बन जाते हैं।

रोग-प्रबंधन

इस विषाणु रोग का प्रबंधन निम्नलिखित प्रकार से किया जा सकता है:

- रोगी पेड़ों को उखाड़ कर नष्ट कर दें।
- कलम केवल रोग–रहित प्रमाणित पौधों से ही लें।

अध्याय – 4

अमरूद के रोग (Diseases of guava)

अमरूद भारत का चौथा महत्वपूर्ण फल है। इसे 'गरीबों का सेब', 'गरीबों का फल' एवं उष्ण जलवायु का सेब' आदि कई नामों से जाना जाता है। इसे 'गरीबों का फल' शायद इसलिए कहते हैं क्योंकि यह अन्य फलों की अपेक्षा लगभग सारे साल कम दामों पर मिलता है। शायद इसका पोषक मान सेब से भी कई मायनों में अच्छा होने के कारण भी इसे 'उष्ण जलवायु का सेब' कहा जाता है। हमारे देश में अमरूद की बागवानी उष्ण एवं उपोष्ण जलवायु वाले क्षेत्रों में सफलतापूर्वक की जा रही है। उपलब्ध साहित्य से पता चलता है कि अमरूद की बागवानी सत्रहवीं शताब्दी के शुरू में प्रारंभ हुई व फिर धीरे-धीरे व्यावसायिक तौर पर कई क्षेत्रों में की जाने लगी। अमरूद कई अन्य फलों की अपेक्षा काफी सहिष्णु है और अच्छी प्रबंधन व्यवस्था न होने कम लागत में भी अच्छी पैदावार देता है। अमरूद में लगने वाले प्रमुख रोगों व उनके रोकथाम की विधियों का वर्णन निम्नलिखित है:

1. फाइटोफ्थोरा फल-विगलन (Phytophthora fruit rot)

लक्षण

इस रोग के लक्षण पौधों की टहनियों, फूलों तथा फलों पर दिखाई देते हैं। टहनियों की ऊपरी छाल बदरंग हो जाती है तथा ऊपर से सूखते हुए नीचे की तरफ बढ़ती है। पत्तियों पर छोटे, भूरे रंग के धब्बे दिखाई देते हैं जो पत्ती के किनारे या शीर्ष भाग से शुरू होकर पूरी पत्ती पर फैल जाते हैं जिससे संक्रमित पत्तियाँ झुलस कर गिर जाती हैं। रोगी पेड़ों की सभी ऊपरी पत्तियाँ हल्की पीली दिखाई पड़ती हैं। फलों की निचली सतह पर गोल, हल्के भूरे से गहरे भूरे रंग के धब्बे दिखाई देते हैं। अनुकूल मौसम में धब्बे आकार में बड़ी तेजी से फैल कर 3-4 दिन में फल की संपूर्ण सतह को घेर लेते हैं। छोटे कच्चे फलों में रोग का संक्रमण होने पर वे कड़े हो जाते हैं तथा पेड़ों पर ये फल वर्ष भर उसी रूप में लगे रहते हैं। इस रोग के प्रभाव से बड़े एवं पके फलों के अंदर का गूदा काफी नरम हो जाता है। नम वातावरण होने पर संक्रमित भाग पर कवक की सफेद रूई के समान की तह दिखाई देती है। अंत में रोगग्रस्त फल सड़कर नीचे गिर जाते हैं। प्रभावित पेड़ों की फलोत्पादन क्षमता पर बुरा असर पड़ता है।

रोगकारक एवं रोग-अनुकूल परिवेश

यह रोग *फाइटोफ्थोरा निकोटियानी* उपजाति *पैरासिटिका* *(Phytophthora nicotianae var. parasitica)* नामक कवक से होता है। यह रोगकारक जमीन पर गिरे हुए पौधे की सूखी टहनियों, फलों तथा पेड़ों पर लगी रोगी टहनियों तथा पौधों के अन्य भागों पर उत्तरजीवी बना रहता है। मिट्टी में भी यह अनिश्चित समय तक उत्तरजीवी बना सकता है। रोग का फैलाव वर्षा की बूंदों, पानी, कीटों के द्वारा होता है। रोग के विकास के

लिए औसत तापमान लगभग 30° सेल्सियस अनुकूल होता है। वर्षा के मौसम में औसत तापमान तथा उच्च आर्द्रता होने पर, फल–सड़न रोग अधिक फैलता है।

रोग-प्रबंधन

इस रोग का प्रबंधन निम्नलिखित उपायों से किया जा सकता है:

- रोगी पेड़ों के अवशेषों तथा गिरे फलों को इकट्ठा करके नष्ट कर दें।
- बाग में जल–निकास का उचित प्रबंध करें।
- पेड़ों की टहनियों एवं डालियों को सहारा देकर ऊपर उठा दें।
- कवकनाशी जैसे मैंकोजेब, जिनेब (0.25 प्रतिशत) कॉपर ऑक्सीक्लोराइड (0.3 प्रतिशत) आदि के घोल में सैन्डोविट या ट्राइटन (0.1 प्रतिशत) को मिलाकर छिड़काव करें। पौधों पर पहला छिड़काव जून में करें इसके बाद एक 1-30 दिन के अंतराल पर कुल 5–6 छिड़काव करें। रोग की तीव्रता बढ़ने एवं संक्रमण तथा फलों पर रोग के फैलाव की रोकथाम के लिए छिड़काव 15 दिन के अंतराल पर छिड़काव करें।

2. म्लानि (Wilt)

लक्षण

अमरूद में म्लानि रोग के लक्षण वर्षा ऋतु में स्पष्ट रूप से दिखाई देते हैं। रोग का आक्रमण नए पौधों (2 से 6 माह पुराने पौधे) तथा पुराने पौधों पर होता है। संक्रमित पौधों की पत्तियां मुरझा जाती हैं तथा पत्तियों का हरा रंग भूरे रंग में बदलने लगता है। पेड़ों की छाल की सतह भी बदरंग हो जाती है तथा शाखाएं सूखने लगती हैं। बाद में, पूरा पौधा सूख कर नष्ट हो जाता है। कभी–कभी पेड़ के आधे भाग में ही रोग के लक्षण दिखाई देते हैं तथा शेष भाग हरा और स्वस्थ बना रहता है।

रोगग्रस्त पेड़ों को काटने पर उसके भीतरी संवहनी ऊतक भूरे रंग के दिखाई देते है। पेड़ो पर लगे फल सूख जाते है। तने के आधार पर दरारें पड़ जाती हैं। जड़ें काली हो जाती है। पेड़ों की बढ़वार रूक जाती है तथा पौधा फलत अवस्था में आने के पूर्व ही सूखकर नष्ट हो जाता है।

रोगकारक एवं ररोग-अनुकूल परिवेश

इस रोग के कारणों के विषय में विवाद है। परंतु वैज्ञानिक मानते हैं कि यह रोग मूख्यतः *फ्यूजेरियम ऑक्सीस्पोरम* उपजाति *सीडिआई (Fusarium oxysporum* f.sp. *psidii)* नामक कवक के द्वारा होता है। रोगकारक मृत पौधों के अवशेषों पर तथा मृदा में क्लेमाइडोस्पोर के रूप में काफी समय तक उत्तरजीवी बना रहता है। क्षारीय मृदा (पीएच 7.5 – 9.0) वाले बागों में यह रोग बहुत अधिक लगता है। रोग का प्रारंभिक आक्रमण मृत पेड़ के बचे अवशेषों के पास लगे पेड़ पर होता है जो बाद में सिंचाई–जल या अन्य माध्यम से फैलकर अन्य पेड़ों को भी रोगी बना देता है।

रोग-प्रबंधन

इस रोग का प्रबंधन निम्नलिखित प्रकार से किया जा सकता है :–

- अमरूद का बाग क्षारीय मिट्टी में न लगाएं।
- अमरूद का बाग लगाने से पहले पूरे क्षेत्र को फॉमेलिन या सौर्यन द्वारा निर्जर्मिकृत करें।
- पेड़ों के अवशेषों को बाग से निकाल कर नष्ट कर दें।
- रोगी पौधों को जड़सहित उखाड़कर नष्ट कर दें। पौधे उखाड़ने के पश्चात् बने गड्ढों में थीरम (0.3 प्रतिशत) का घोल या फॉर्मेलिन से उपचारित करें। फॉर्मेलिन से उपचारित करने के बाद गड्ढे को लगभग तीन दिन तक पॉलिथीन की चादर से ढक कर रखें तथा 15 दिन बाद पौधे लगाएं।

- कार्बेन्डाजिम (0.2 प्रतिशत) का पानी में घोल बनाकर जड़ों के पास देने से भी रोग की व्यापकता में कमी आती है।
- मिट्टी में चूना या जिप्सम (25–30 कि.ग्रा/हे) के प्रयोग से भी रोग में कमी आती है।
- नीम की फली 6 कि. ग्रा तथा जिप्सम 2 कि. ग्रा. प्रति पेड़ की दर से मृदा में प्रयोग करके रोग के प्रभाव को कम किया जा सकता है।
- *ट्राइकोडर्मा, हार्जिएनम* या *स्यूडोमोनास फ्लोरसेन्स*–निवेशित सड़ी हुई गोबर की खाद 1-5 कि. ग्रा. प्रति पेड़ की दर से सितंबर में प्रयोग करने पर लाभ होता है।

3. श्यामव्रण (Anthracnose)

लक्षण

रोग के लक्षण, नई पत्तियों, टहनियों तथा कोमल शाखाओं पर दिखाई देते हैं। पतली टहनियां ऊपर से नीचे की ओर सूखती हुई, विशेषकर नीचे की तरफ बढ़ती जाती हैं जिसे शीर्षारंभी क्षय कहते हैं। इस प्रकार रोग की तीव्रता में नई कलिकाएं तथा फूल काले पड़कर नीचे गिर जाते हैं। रोगग्रस्त हिस्सों पर छोटे–छोटे बिन्दु के रूप में कवक की बढ़वार दिखाई देती है।

इस रोग के लक्षण प्रायः वर्षाकाल में पकते हुए फलों पर स्पष्ट रूप से दिखाई देते हैं। शुरू में रोग के लक्षण, कच्चे फलों पर छोटे–छोटे धब्बे के रूप में दिखाई देते हैं। बाद में, ये धब्बे बढ़कर कुछ धंसे हुए एवं गोलाकर (5-6 मि.मि. व्यास) हो जाते हैं। प्रायः रोगग्रस्त कच्चे अथवा पके फल सिकुड़कर भूरे या काले रंग के हो जाते हैं। ऐसे रोगी फल काफी कड़े और खुरदरे हो जाते हैं। इस रोग से संक्रमित ऐसे फलों का अधिक समय भंडारण नहीं किया जा सकता है।

रोगकारक एवं रोग-अनुकूल परिवेश

यह रोग *कोलेटोट्राइकम सिडिआई (Colletotrichum psidii)* नामक कवक से होता है। यह रोगकारक सूखे फलों, रोगग्रसित शाखाओं एवं नीचे गिरे फलों और टहनियों पर उत्तरजीवी बना रहता है। रोग का फैलाव हवा, वर्षा, कीड़ों एवं द्वारा होता है। कच्चे तथ पके फलों पर संक्रमण के लिए अनुकूलतम तापमान 30° सेल्सियस है। रोग के फैलाव के लिए आपेक्षिक आर्द्रता 96 प्रतिशत अनुकूल होती है, लेकिन वातावरण में 76-83 प्रतिशत आपेक्षित आर्द्रता होने पर, पके तथा कच्चे फलों पर रोग का विकास नहीं होता है। जून व जुलाई के महीनों में केवल पेड़ की पुरानी टहनियों पर ही रोग का आक्रमण होता है, लेकिन अगस्त से नई कलियों पर शीर्षारंभी क्षय के लक्षण आने प्रारंभ हो जाते हैं तथा इसकी तीव्रता अक्टूबर तक बनी रहती है।

रोग-प्रबंधन

इस रोग का प्रबंधन निम्नलिखित विधियों से किया जा सकता है:

- बाग में गिरे हुए और पेड़ पर लगे सूखे और संक्रमित फलों तथा शाखाओं को एकत्रित करके जला दें।
- कवकनाशी कॉपर ऑक्सीक्लोराइड (0.3 प्रतिशत) या कार्बेन्डाजिम (0.1 प्रतिशत), जिनेब, मैंकोजेब (0.25 प्रतिशत) का पानी में घोल बनाकर 10 दिन के अंतराल पर पेड़ो पर छिड़काव करें। इस रोग के नियंत्रण के लिए कुल 4–5 छिड़काव पर्याप्त होते हैं।
- लंबी दूरी के परिवहन तथा भंडारण के लिए स्वस्थ, कड़े फलों का चुनाव उपचारित पेड़ों से करें।
- हल्के लाल गूदे वाली अमरूद की रोग प्रतिरोधी किस्म, 'एपल कलर' के बाग लगाएं।

अध्याय – 5

अंगूर के रोग (Diseases of grapes)

अंगूर बहुत ही स्वादिष्ट एवं पौष्टिक फल है। यह संसार के उपोष्ण कटिबंध के फलों में विशेष महत्व रखता है। यह भी जल्दी तैयार होने वाला फल है। अंगूर के प्रमुख उत्पादक देश इस की बागवानी, शराब एवं किशमिश बनाने के लिए करते हैं। हमारे देश में अंगूर की बागवानी दूसरे देशों से कई मायनों में भिन्न है क्योंकि हमारे देश में इसकी बागवानी मुख्यतः उष्ण क्षेत्रों में की जाती है जहां यह पूरे साल हरा–भरा रहता है। हमारे देश में अंगूर को निम्नलिखित रोग बहुत क्षति पहुंचाते हैं :

1. मृदुरोमिल आसिता (Downy mildew)

लक्षण

इस रोग के लक्षण पत्तियों, नए प्ररोहों तथा कच्चे फलों पर दिखाई देते हैं। प्रारंभ में पत्तियों की ऊपरी सतह पर गोल या अनियमित आकार के हल्के पीले धब्बे बनते हैं। इन धब्बों की ठीक निचली सतह पर सफेद, मटमैले भूरे या धूसर रंग की कवक की बढ़वार दिखाई देती है, जिसमें कवक के बीजाणुधानी एवं बीजाणु होते हैं। रोग से प्रभावित भाग सूख जाता है रोग की तीव्रता बढ़ने पर पत्तियां गिर जाती हैं। संक्रमित प्ररोह, प्रतान

तथा नई पत्तियां, कवक की सफेद वृद्धि से ढ़क जाती हैं। प्ररोह के प्रभावित भागों के ऊतकों के नष्ट होने के कारण रंग भूरा हो जाता है। नए फलों पर भूरे रंग के धब्बे दिखाई देते हैं। रोगी स्थानों पर मृदुरोमिल कवक की बढ़वार दिखाई देती है। रोग फल सिकुड़ जाते है तथा फलों के गुच्छे नष्ट हो जाते हैं।

रोगकारक एवं रोग-अनुकूल परिवेश

यह रोग *प्लाज्मोपारा विटिकोला* (*Plasmopara viticola*) नामक कवक के द्वारा होता है। उन क्षेत्रों में, जहां अंगूर की बेल सदा हरी–भरी रहती है, कवक, कवकजाल, बीजणुधानी एवं बीजाणु के रूप में भी उत्तरजीवित होता है। रोग का फैलाव हवा, एवं पानी के द्वारा होता है। कवक के संक्रमण के लगभग 7–12 दिन के बाद रोग के लक्षण दिखाई देने लगते हैं। रोग के संक्रमण व विकास के लिए 17-33° सेल्सियस तापमान तथा 98 प्रतिशत आपेक्षित आर्द्रता अनुकूल होती है। कम वर्षा एवं कम आर्द्रता वाले क्षेत्रों में रोग का प्रभाव कम होता है। यदि कवक का आक्रमण फसल की नई वृद्धि के शुरू में होता है, तो तनों और कच्चे फलों पर संक्रमण के कारण फलों के गुच्छे पूर्णतः नष्ट हो जाते हैं।

रोग-प्रबंधन

इस रोग का प्रबंधन निम्नलिखित प्रकार से किया जा सकता है:

- अंगूर के बागों की सफाई रखें तथा रोगी पौधों या उनके अवशेषों को इकट्ठा करके नष्ट कर दें।
- पौधों की लताओं को जमीन की सतह से काफी ऊंचाई पर रखें।
- पौधों की लताओं की काट–छांट करके उनके मध्य उपयुक्त दूरी रखें। इससे वायु संचार अच्छा होता है व

आर्द्रता कम हो जाती है, जिससे रोगकारक के संक्रमण के लिए अनुकूल वातावरण नहीं मिल पाता है।

- रीडोमिल या मैंकोजेब (0.25 प्रतिशत), एलिएटे (0.2 प्रतिशत), बोर्डो मिश्रण (4:4:50) या कॉपर ऑक्सीक्लोराइड (0.3 प्रतिशत) का छिड़काव पौधों पर छंटाई के तुरंत बाद, फूल आने के पहले, एवं फलों के गुच्छे बनने के बाद, टहनियों की वृद्धि के समय दो बार करें। फलों की तुड़ाई से 15 दिन पूर्व कवकनाशी दवाओं का छिड़काव बंद कर दें।

2. चूर्णिल आसिता (Powdery mildew)

लक्षण

इस रोग के लक्षण के रूप के प्रारंभ में पत्तियों पर छोटे–छोटे सफेद, चूर्णिल धब्बे दिखाई देते हैं जो धीरे–धीरे सफेद चूर्ण की तरह पत्ती की सतह पर फैल जाते हैं और सफेद आटे के चूर्ण के समान दिखाई देते हैं। इस सफेद चूर्ण में कवक के कवकजाल तथा कोनिडियम होते है। सूखे मौसम में पत्तियाँ गंभीर रूप से रोगग्रस्त होकर ऊपर की तरह मुड़ जाती हैं। तनों पर भी इस प्रकार के लक्षण उत्पन्न होते हैं तथा वे भूरे रंग के हो जाते हैं। रोग की तीव्रता बढ़ने पर अंगूर की लताएं सूखने लगती हैं। पुष्पगुच्छे में संक्रमण होने पर फूल मुरझाकर गिर जाते हैं। कच्चे फलों पर भी सफेद चूर्णिल दिखायी देते हैं, जो बाद में पूरे फल पर फैल जाते हैं। फल के गुच्छों में से कुछ ही फल पकते हैं।

रोगकारक एवं रोग-अनुकूल परिवेश

यह रोग *अन्सीनूला निकटर (Uncinula nectar)* नामक कवक से होता है। यह कवक रोगी लताओं पर उत्तरजीवी बना रहता है। यह कवक उष्ण मौसम में अधिक तेजी से बढ़ता है। इसी कारण यह रोग प्रायः गर्म क्षेत्रों में अधिक उग्र रूप से आता है।

रोग की वृद्धि के लिए औसत तापमान 25° सेल्सियस अनुकूल होता है। रोग का प्रभाव उन पत्तियों पर अधिक होता है जो छाया में होती हैं।

रोग-प्रबंधन

इस रोग का प्रबंधन निम्नलिखित विधियों से किया जा सकता है:

- रोगी पौधों के अवशेषों को इकट्ठा करके जला दें। बाग की सफाई का भी विशेष ध्यान रखें।
- अंगूर की लताओं की आवश्यकतानुसार काट–छांट कर दें, जिससे छाया का प्रभाव कम से कम हो तथा वायु का संचारण सुचारू रूप से होता रहे।
- संतुलित उर्वरकों, विशेषकर नाइट्रोजनयुक्त उर्वरकों, की उचित मात्रा का प्रयोग करें।
- कवकनाशी दवा सल्फेक्स (0.2 प्रतिशत), कैराथेन (0.05 प्रतिशत), ट्राइडिमेफॉन (0.1 प्रतिशत), कार्बेन्डाजिम (0. 1 प्रतिशत) का छिड़काव पौधों पर आवश्यकतानुसार करें। गंधक के चुर्ण का बुरकाव पौधों पर 20 कि. ग्रा. प्रति हैक्टर की दर से करने से लाभ होता है। कुल तीन या चार बुरकाव अथवा छिड़काव 15 दिन के अंतराल पर, रोग की तीव्रता के अनुसार करें।

3. पर्ण चित्ती (Leaf spot)

लक्षण

इस रोग के लक्षण पत्तियों पर गोलाकर या कुछ अनियमित आकार तथा 5-10 मि. मी. व्यास के गहरे भूरे रंग के धब्बे दिखाई देते हैं। इन धब्बों का केंद्रीय भाग राख के रंग का होता है। रोगी पत्तियाँ सूखकर नष्ट हो जाती हैं।

रोगकारक एवं रोग-अनुकूल परिवेश

यह रोग *सर्कोस्पोरा विटिकोला (Cercospora viticola)* नामक कवक से होता है। यह कवक रोगी पौधों के अवशेषों पर जीवित रहता है। मानसून के बाद सितंबर से लेकर अक्टूबर में जब तापमान थोड़ा कम हो जाता है, तो रोग की तीव्रता बढ़ जाती है।

रोग-प्रबंधन

इस रोग का प्रबंधन निम्नलिखित विधियों से किया जा सकता है:

- रोगी पौधों के अवशेषों को बाग से इकट्ठा करके नष्ट कर दें।
- कवकनाशी दवा जैसे कार्बेन्डाजिम, डेरोसाल, थायोफिनेट मेथिल (0.1-0.2 प्रतिशत) का पानी में घोल बनाकर पौधों पर छिड़काव करें। पहला छिड़काव रोग के लक्षण दिखाई देते ही शुरू कर दें। इसके बाद 15 दिन के अंतराल पर आवश्यकतानुसार कुल 4–5 छिड़काव करें।

4. श्यामव्रण (Anthracnose)

लक्षण

इस रोग के लक्षण, पत्तियों, प्रतानों तथा फलों पर दिखाई देते हैं। पत्तियों पर छोटे, अनियमित आकार के गहरे भूरे धब्बे दिखाई देते हैं। बाद में इन धब्बे के भीतरी धूसर भाग तथा किनारों के ऊतक भूरे रंग के हो जाते हैं। अंत में धब्बे का केंद्रीय भाग सूखकर गिर जाता है, जिससे पत्तियों पर छिद्र सा बन जाता है। प्ररोह और प्रतानों पर छोटे, बिखरे हुए हल्के भूरे रंग के धब्बे दिखाई देते हैं। ये धब्बे पहले गोलाकार, लेकिन बाद में दीर्घवृत्ती एवं धंसे हुए होते हैं। किनारों के ऊतक थोड़े उठे हुए एवं गहरे रंग के होते हैं। धब्बे के केंद्र का भाग राख के रंग का होता है। गंभीर रूप से रोगग्रस्त प्ररोहों की वृद्धि रूक जाती है। पत्तियाँ छोटी तथा हल्के रंग की हो जाती हैं। पर्णशिरा और

पर्णवृंत पर संक्रमण होने पर पत्तियाँ नीचे की तरफ मुड़ जाती हैं। फलों पर भी लगभग 6 मिमी. व्यास के धब्बे बनते हैं। फलों का गूदा कड़ा हो जाता है। रोगी फल विकृत हो जाते हैं। प्रतानों एवं पर्णवृतों की भाँति फलवृंत पर विक्षत पाए जाते हैं।

रोगकारक एवं रोग-अनुकूल परिवेश

यह रोग *एल्सिनों ऐम्पिलीना (Elsinoe ampelina)* नामक कवक से होता है। यह कवक रोगी लताओं व जमीन पर गिरे रोगी पौधों के अवशेषों पर उत्तरजीवी बना रहता है। रोग का फैलाव वर्षा की बूँदों द्वारा होता है। इस रोग की वृद्धि के लिए लगभग 21° सेल्सियस तापमान अनुकूल होता है। रोग के लक्षण अप्रेल माह से दिखने लगते हैं एवं रोग की तीव्रता बढ़ने लगती है, लेकिन मई--जून में तापमान बढ़ने पर इस रोग की तीव्रता कम हो जाती है। वर्षा आने पर जुलाई–अगस्त में पुनः इस रोग की तीव्रता बढ़ जाती है। इस रोग से सबसे अधिक हानि अगस्त में होती है। तत्पश्चात् इस रोग की व्यापकता कम होने लगती है।

रोग-प्रबंधन

इस रोग का प्रबंधन निम्नलिखित विधियां अपनाकर किया जा सकता है:

- ममीभूत फलों के गुच्छों, प्रतानों तथा संक्रमित टहनियों को इकट्ठा करके नष्ट कर दें। पिछले मौसम की सभी टहनियों की छंटाई कर दें।
- कवकनाशी दवा जैसे कॉपर ऑक्सीक्लोराइड (0.3 प्रतिशत), थायोफिनेट मेथिल, कार्बेन्डाजिम, बिनोमिल (0.1 प्रतिशत) का पानी में घोल बनाकर छिड़काव कलियाँ खिलते समय करें तथा लताओं की बढ़वार के समय छिड़काव जारी रखें।

- इसके अलावा, कार्बेन्डाजिम (0.1 प्रतिशत) और मैंकोजेब (0.25 प्रतिशत) का एकंतर छिड़काव काफी अच्छा पाया गया हैं।

5. जीवाणुज कैंकर (Bacterial canker)

लक्षण

इस रोग के लक्षण पत्तियों पर छोटे जलीय धब्बों के रूप में दिखाई देते हैं तथा पत्ती की निचली सतह पर पीला क्षेत्र दिखाई देता है जिसका आकार बढ़कर 2–5 मि. मी व्यास तथा अनियमित और कैंकरयुक्त होता है। पर्णवृंतों तथा लताओं पर भूरे से काले रंग एवं 0.5–8 सें. मी. व्यास के विक्षत पाए जाते हैं। रोग की तीव्रता बढ़ने पर प्ररोहों की बढ़वार रुक जाती है। फलों पर भी भूरे या काले रंग के कैंकर दिखाई देते हैं। रोगी फलों का आकार छोटा तथा सिकुड़ा होता है। प्रभावित फल सूखकर गिर जाते हैं।

रोगकारक एवं रोग-अनुकूल परिवेश

यह रोग *जैन्थोमोनास कम्प्रेस्टिस पैथोवार बीटीकोला* (*Xantomonas cempestris* pv. *viticola*) नामक जीवाणु से होता है। रोगकारक जीवाणु रोगी प्ररोहों पर जीवित बना रहता है। रोगकारक का फैलाव हवा तथा पानी की बूँदों द्वारा होता है। यह रोगकारक अंगूर की लताओं में कीट, फार्म मशीनरी, उपकरणों द्वारा बने घावों एचं खरोंचों के माध्यम से आसानी से प्रवेश करता है तथा पौधे को संक्रमित कर देता हैं। जीवाणु की बढ़वार के लिए 80 प्रतिशत आपेक्षित आर्द्रता और 25–30° डिग्री सेल्सियस तापमान अनुकूल होता है।

रोग-प्रबंधन

इस रोग का प्रबंधन निम्नलिखित विधियों से किया जा सकता है :

- अंगूर की लताओं की काट–छाँट का कार्य अक्टूबर के दूसरे पखवाड़े में करें।
- बागों में सिंचाई आवश्यकतानुसार करें तथा जल–निकास का उचित प्रबंधन करें।
- बागों में अधिक नमी ज्यादा समय तक न रहे।
- खरपतवारों को निकाल कर बाग को साफ रखें।
- नाइट्रोजन की अधिक मात्रा का प्रयोग न करें एवं फॉस्फोरस और पोटाश की संतुलित मात्रा दें।
- कॉपर ऑक्सीक्लोराइड (0.3 प्रतिशत), या स्ट्रेप्टोमाइसिन सल्फेट या टेट्रासाइक्लिन (300-500 मि.ग्राम प्रति लिटर पानी) का घोल बना कर पौधों पर छिड़काव आवश्यकतानुसार करें।
- नए बाग लगाने के लिए, स्वस्थ तथा रोग-रहित पौधों का प्रयोग करें।

अध्याय – 6

पपीते के रोग (Diseases of Papaya)

पपीता जल्दी तैयार होते वाला फल है। इस फल का काफी औषधीय महत्व भी है। यह मुख्यतः उष्णकटिबंधीय जलवायु का फल है लेकिन बहुत सी जातियों को उपोषण जलवायु में भी उगाया जा सकता है। पपीते को विश्व में लगभग प्रत्येक देश में उगाया जाता है। पैपेन निकालने में अधिक श्रमिकों की आवश्यकता होने के कारण पैपेन केवल उन क्षेत्रों में निकाली जाती है जहां श्रमिक सस्ते दर पर उपलब्ध होते हैं। पपीते के पौधों व फलों को रोगों से बचाना अत्यंत आवश्यक है। पपीते में लगने वाले प्रमुख रोगों व उनके रोकथाम की विधियों का वर्णन निम्नलिखित है:

1. तना या पाद विगलन (Stem or foot rot)

लक्षण

नर्सरी की पोद में आर्द्र पतन के लक्षण प्रकट होते हैं, जबकि बड़े पौधों में पाद विगलन, तना विगलन या मूल विगलन होता है। पपीते में तना विगलन सामान्यतः दो से तीन वर्ष पुराने पौधों में अधिक होता है। भूमि सतह के पास के पौधे के तने पर जलीय धब्बे दिखाई देते हैं। बाद में, ये जलीय धब्बे आकार में बढ़कर तने को चारों ओर से घेर लेते हैं। तने के चारों ओर घेरा

बनने से पौधा उस स्थान पर कमजोर पड़ जाने के कारण पूरा पेड़ आधार से ही टूटकर गिर जाता है। तने के छिलके को हटाकर देखने पर अंदर के ऊतक सूखे एवं मधुमक्खी के छत्तो जैसे दिखाई पड़ते हैं। इनका रंग गहरा भूरा या काला हो जाता है। तने का ऊपरी भाग एवं जड़ें सड़ जाती हैं। जड़ सड़ने के कारण संपूर्ण जड़तंत्र नष्ट हो जाता हैं। संक्रमित पौधे की ऊपर की पत्तियां मुरझा जाती हैं एवं उनका रंग पीला पड़ जाता है। ऐसी पत्तियां समय से पूर्व ही सूखकर गिर जाती हैं। रोगी पौधों में फल नहीं लगते हैं, यदि लग भी गए तो पकने से पहले ही गिर जाते हैं।

रोगकारक एवं रोग-अनुकूल परिवेश

यह रोग *पिथियम* (*Pythium*) कवक की अनेक जातियों जैसे *पिथियम अफेनीडर्मेटम* (*Pythium aphanidermatum*) तथा *डिबेरीएनम* (*P. debaryanum*) द्वारा होता है। इसके अतिरिक्त अन्य कवक जैसे *राइजोक्टोनिया सोलेनाई* (*Rhizotonia solani*) भी यह रोग पैदा करता है। ये सभी कवक मुख्य रूप से मिट्टी में ही पाए जाते हैं। पिथियम स्वभाव से ही विकल्पी परजीवी होता है। परपोषी की अनुपस्थिति में यह मृदा में तथा भूमि पर पड़े पपीते के मलवे पर उत्तीजीवी बना रहता है। यह रोगकारक भूमि में मलवे पर बढ़ते रहते हैं। बाग में यह रोग–संक्रमित पौधों के मलबे एवं जल प्रभाव के माध्यम से फैलता है। रोग–वृद्धि के लिए अधिक नमी और 30° सेल्सियस तापमान अनुकूल होता है। पौधशाला में पौधों की अधिक नमी और 30° सेल्सियस तापमान अनुकूल होता है। पौधशाला में पौधों की अधिक संख्या होने से सूर्य की किरणों एवं वायु का संचार कम हो जाता है, फलस्वरूप अधिक आर्द्रता बनी रहती है जो कवक की वृद्धि एवं रोग के विकास दोनों के लिए अनुकूल होती है।

रोग-प्रबंधन

इस रोग का प्रबंधन निम्नलिखित प्रकार से किया जा सकता है :

- पपीते के बाग में पानी अधिक समय तक नही रुकना चाहिए तथा जल–निकास का उचित प्रबंध होना चाहिए।
- संक्रमित पौधों को शीघ्र ही जड़ सहित उखाड़ कर जला दें तथा उस स्थान पर दूसरे पौधे ना लगाएं।
- पौधों के आधार से 60 से. मी. की ऊँचाई तक तनों पर बोर्डो पेस्ट (1:1:3) लगाएं।
- पौधों में आर्द्र-पतन रोग को रोकने के लिए बीज–अंकुरण से पूर्व एवं अंकुरण के समय मृदा में कैप्टान (0.2 प्रतिशत) का पानी में घोल बनाकर सिंचाई करें।
- *राइजोक्टोनिया सोलेनाई* से होने वाले पाद विगलन को रोकने के लिए बीजों को कवकनाशी जैसे क्लोरोथेलोनिल या कैप्टान द्वारा उपचारित करें।

2. सर्कोस्पोरा पर्ण चित्ती (Cercospora leaf spot)

लक्षण

इस रोग के लक्षणों में पत्तियों पर दिसंबर–जनवरी में नियमित से अनियमित आकार के हल्के रंग के धब्बे दिखाई देते हैं। इन धब्बों का मध्य भाग धूसर होता है। बाद में रोगी पत्तियाँ पीली पड़कर गिर जाती हैं। फलों की ऊपरी सतह पर सूक्ष्म आकार के भूरे-काले रंग के धब्बे दिखाई देते हैं, जो पकते हुए फलों काफी स्पष्ट दिखाई देते हैं एवं धीर-धीरे बढ़कर लगभग 3 मि.मी. व्यास के हो जाते हैं। इन धब्बों के नीचे के ऊतक फटे होने के कारण फल की शक्ल खराब हो जाती है तथा ये बाजार के लिए अनुपयुक्त हो जाते है। पकते हुए फलों पर ये धब्बे काफी साफ दिखाई देते हैं।

रोगकारक एवं रोग-अनुकूल परिवेष

यह रोग *सर्कोस्पोरा पपायी* (*Cercospora papayae*) नामक कवक से होता है। यह रोगकारक संक्रमित पत्तियों पर उत्तरजीवी होता है। इस रोग के विकास के लिए 20-27° सेल्सियस तापमान तथा पत्तियों पर ओस या वर्षा के पानी की उपस्थिति अनुकूल होती है। रोग का फैलाव कीट एवं हवा द्वारा होता है।

रोग-प्रबंधन

इस रोग का प्रबंधन निम्नलिखित प्रकार से किया जा सकता है:

- पपीते के बाग से संक्रमित पौधों के गिरे अवशेषों जैसे पत्तियों तथा फलों को इकट्ठा करके नष्ट कर दें।
- कवकनाशी दवाओं जैसे टॉप्सीन एम, (0.1 प्रतिशत), क्लोरे थैलोनिल (0.2 प्रतिशत), मैंकोजेब, जिनेब (0.2-0.25 प्रतिशत) का पानी में घोल बनाकर 15-20 दिन के अंतराल पर पौधों पर छिड़काव करें।

3. ष्यामव्रण (Anthracnose)

लक्षण

इस रोग के लक्षण पर्णवृंत, तने एवं फलों पर दिखाई देते हैं। पर्णवृंत एवं तने पर, भूरे रंग के, लंबे धब्बे दिखाई देते हैं। संक्रमित पत्तियाँ गिर कर नष्ट हो जाती हैं। अधपके या पकते हुए फलों पर छोटे, गोल, जलीय तथा कुछ धंसे हुए धब्बे दिखाई देते हैं। पेड़ पर लगे फल पर बने इन धब्बों का आकार भी बढ़ता जाता है। बाद में, इन धब्बों के आपस में मिलने पर इनका आकार अनियमित हो जाता है। धब्बों के किनारे का रंग गहरा और बीच का हिस्सा भूरा या काला होता है। अनुकूल वातावरण मिलने पर, धब्बों के बीच में कवक की बढ़वार हल्की गुलाबी या नारंगी रंग की हो जाती है। रोग की तीव्रता बढ़ने पर संक्रमित फल सड़ने लगते हैं। फलों का मीठापन भी कम हो जाता है।

रोगकारक एवं रोग-अनुकूल परिवेश

यह रोग *कोलेटोट्राइकम ग्लीयोस्पोरीआइडीज (Colletotrichum gloeosporioides)* नामक कवक से होता है। यह कवक रोगी पेड़ों पर उत्तरजीवी बना रहता है। रोग वृद्धि के लिए नम वातावरण अनुकूल होता है। फल की सड़न 30° सेल्सियस तापमान पर अधिक होती है। रोग का फैलाव हवा एवं कीटों द्वारा होता है।

रोग-प्रबंधन

इस रोग का प्रबंधन निम्नलिखित प्रकार से किया जा सकता है :

- पपीते के बाग से संक्रमित पत्तियों, तनों तथा फलों का इकट्ठा करके नष्ट कर दें।
- कवकनाशी दवाओं जैसे मैंकोजेब, जिनेब (0.2 प्रतिशत), कार्बेन्डाजिम (0.1 प्रतिशत), डैकोनिल (0.2 प्रतिशत) या कॉपर ऑक्सीक्लोराइड (0.3 प्रतिशत) का पानी में घोल बनाकर पौधों पर 5–6 छिड़काव करे। पहला छिड़काव फल लगने के 30 दिन बाद शुरू करें तथा उसके बाद 15 से 20 दिन के अंतराल पर छिडकाव करते रहें।

4. पर्ण–कुंचन (Leaf curl)

लक्षण

पर्ण–कुंचन रोग के लक्षण प्रमुख रूप में केवल पत्तियों पर दिखाई पड़ते हैं। संक्रमित पत्तियाँ छोटी एवं झुर्रीदार हो जाती हैं। पत्तियों की शिराएं पीली पड़ जाती हैं। संक्रमित पत्तियाँ नीचे की तरफ मुड़ जाती हैं तथा उल्टे प्याले के अनुरूप दिखाई देती हैं। पत्तियां मोटी भंगुर और ऊपरी सतह पर अतिवृद्धि के कारण खुरदरी शिराएं तथा शिरिकाएँ नीचे से मोटी एवं गहरे रंग की होती हैं। पर्णवृंत ऐंठे एवं टेढ़े–मेढ़े हो जाते हैं। रोगी

पौधों में कम फूल आते हैं। रोग की तीव्रता में पत्तियां गिर जाती हैं और पौधों की बढ़वार रुक जाती है।

रोगकारक एवं रोग-अनुकूल परिवेश

यह रोग पपाया पर्णकुंचल विषाणु (*Papaya leaf curl virus*) द्वारा होता है। पपीते के पौधे बहुवर्षी होने के कारण इस रोग के विषाणु इन पर सरलता-पूर्वक उत्तरजीवी बने रहते हैं। यह विषाणु पपीते के अलावा इसके अन्य परपोषी पौधों जैसे तम्बाकू, टमाटर, पिटूनिया, जीनिया, सनई, मिर्च तथा धतूरे आदि को भी संक्रमित करते हैं। बगीचों में रोग का फैलाव, रोगवाहक सफेद मक्खी बीमिसिया टैबेसी (*Bemisia tabaci*) द्वारा होता है। यह मक्खी संक्रमित पत्तियों से रस–चूषते समय विषाणुओं को भी प्राप्त कर लेती है और स्वस्थ पत्तियों से रस–चूषते समय उनमें विषाणुओं को संचारित कर देती है।

5. पपीते का वलय–चित्ती रोग (Ring spot)

लक्षण

पपीते के वलय–चित्ती रोग को कई अन्य नामों जैसे पपीते की मोजेक, विकृति मोजेक, वलय-चित्ती, पर्ण-न्यूनीकरण, पर्ण कुंचन तथा विकृति पर्ण आदि से भी जाना जाता है। इस रोग के लक्षण पौधे की ऊपर की मुलायम पत्तियों पर दिखाई देते हैं। संक्रमित पत्तियाँ छोटी, चितकबरी जिनकी उपरी सतह खुरदरी हो जाती है। इन पर गहरे हरे रंग के फफोले से बन जाते हैं। पर्णवृंत छोटे तथा ऊपर की पत्तियां खड़ी होती हैं। पुरानी पत्तियों के समय से पूर्व गिरने से पेड़ के सिरे पर छोटी पत्तियों का एक समूह सा बना रहता है। पौधों में नई निकलने वाली पत्तियों पर पीला मोजेक तथा गहरे रंग के क्षेत्र बनते हैं। ऐसी पत्तियाँ नीचे की तरफ ऐंठ जाती हैं तथा उनका आकार धागे के समान हो जाता है। पर्णवृंत एवं तनों पर गहरे हरे रंग के धब्बे और लंबी धारियाँ दिखाई देती हैं। फलों पर गोल जलीय

धब्बे बनते हैं। ये धब्बे फल पकने के समय भूरे रंग के हो जाते हैं। इस प्रकार ये वलय धब्बे मुख्यत: फल के बाहरी सतह पर पाए जाते हैं।

रोगकारक एवं रोग-अनुकूल परिवेश

यह रोग पपीते वलय चित्ती विषाणु (*Papaya ring spot virus*) द्वारा होता हैं। यह विषाणु पौधों में 21 कुलों के 49 सदस्यों को संक्रमित करता है। इनमें से मुख्य चिचिंडा, काशीफल, खीरा तथा तरोई आदि प्रमुख हैं। इस विषाणु का संचरण रोगवाहक कीटों द्वारा होता है जिनमें से *ऐफिस गॉसीपाई, ऐफिस नेराई* और *माइजस पर्सिकी* आदि कीट रोगवाहक का काम करते हैं। इसके अलावा अमरबेल तथा पक्षियों के द्वारा भी इस रोग का फैलाव होता है।

6. मोजेक (Mosaic)

लक्षण

इस रोग के लक्षण, पत्तियों पर हरित कर्बुरण के रूप में दिखाई देते हैं। लेकिन पत्तियाँ में विकृत वलय चित्ती रोग की भांति विकृति नहीं होती हैं। इस रोग के शेष लक्षण पपीते के वलय चित्ती रोग के लक्षण से काफी मिलते जुलते हैं।

रोगकारक एवं रोग-अनुकूल परिवेश

यह रोग पपीते के मोजेक विषाणु (Papaya mosaic virus) द्वारा होता है। यह विषाणु रस-संचरणशील है। जो विकृति वलय चित्ती विषाणु की भांति ही पेड़ तथा अन्य परपोषियों पर उत्तरजीवी बना रहता है। रोग का फैलाव रोगवाहक कीट माहू की कई जातियों द्वारा होता है।

विषाणु-जनित रोगों का प्रबंधन

पपीते में विषाणुओं द्वारा होने वाले तीनों रोगों का प्रबंधन करना आसान नहीं होता। फिर भी निम्नलिखित उपायों को अपनाकर रोग के प्रभाव को कम किया जा सकता है:

- संक्रमित पौधों को बाग से निकाल कर नष्ट कर दें।
- बागों की सफाई रखें तथा संक्रमित पौधे के अवशेषों को इकट्ठा करके नष्ट कर दें।
- नए बाग लगाने के लिए पौधशाला से स्वस्थ तथा रोगरहित पौद का चुनाव करें।
- रोगवाहक कीटों की रोकथाम के लिए मेटासिस्टॉक्स (0.1 प्रतिशत) या मूंगफली के तेल का एक प्रतिशत का घोल बनाकर 10–12 दिनों के अंतराल पर छिड़काव करने से लाभ होता है। बाग के समीप के अन्य बगीचों तथा टमाटार एवं तम्बाकू की फसल पर भी कीटनाशी दवा का छिड़काव करें।
- बागों की देखरेख करते रहें। आवश्यकतानुसार सिंचाई करें, संतुलित उर्वरक तथा पोषक पदार्थों का समय पर प्रयोग करें।
- रोग प्रतिरोधी किस्मों जैसे प्राइमा, प्रिसिल्ला, मैकफ्री, लिबर्टी, कूप–12, रेडफ्री और सरप्राइज का बाग लगाने पर इस रोग से बचा जा सकता है।

अध्याय – 7

अनार के रोग (Diseases of pomegranate)

अनार एक ऐसा फल है जिसे विभिन्न प्रकार की जलवायु व मिट्टी की दशाओं में उगाया जा सकता है तदापि उपोष्ण एवं शुष्क जलवायु वाले क्षेत्रों में उगाए जाने वाले फलों में अनार का विशिष्ट स्थान है। इन क्षेत्रों में पैदा होने वाले अनार आर्द्र एवं शीतोष्ण क्षेत्रों में पैदा होने वाले अनार से कई गुणा अच्छे होते हैं। आकर्षक स्वाद व ताजगी के कारण एवं विभिन्न प्रकार की मिट्टियों में भली भांति अच्छी तरह फूलने व फलने की क्षमता के कारण भारत में इसकी बागबानी काफी लोकप्रिय हो रही है। यही कारण है कि इस फल के अंर्तगत का क्षेत्रफल दिन–प्रतिदिन बढ़ता जा रहा है। अनार के प्रमुख रोगों का विवरण निम्नलिखित है:

1. पर्ण चित्ती एवं फल-विगलन (Leaf spot and fruit rot)

लक्षण

इस रोग के लक्षण पत्तियों पर छोटे-छोटे, हल्के बैंगनी से काले रंग के धब्बों के रूप में दिखाई देते हैं। इन धब्बों के चारों

तरफ हल्का पीला क्षेत्र बन जाता है। बाद में यह धीरे-धीरे आकार में बढ़ने से पत्ती के अधिकांश भाग पर फैल जाता है। रोग की तीव्रता बढ़ने पर पत्तियां गिर जाती हैं। फल पर ये धब्बे निचले हिस्से से या किनारे से शुरू होते हैं। बाद में, संक्रमित भाग भूरे या काले रंग के होकर फल के अधिकांश भाग पर फैल जाते हैं। ऐसे फल संक्रमण के एक सप्ताह के अंदर ही मुलायम पड़कर सड़ने लगते हैं।

रोगकारक एवं रोग-अनुकूल परिवेश

यह रोग *कोलेटोट्राइकम ग्लीयोस्पोराइडीज* (*Colletotrichum gloeosporiodes*) नामक कवक से होता है। यह रोगकारक संक्रमित पेड़ों की पत्तियों तथा फलों पर उत्तरजीवी रहता है।

रोग-प्रबंधन

इस रोग का प्रबंधन निम्नलिखित विधियों को अपनाकर किया जा सकता है:

- संक्रमित पौधों के अवशेषों को बाग से इकट्ठा करके नष्ट कर दें।
- कवकनाशी दवाइयों जैसे कार्बेन्डाजिम (0.2 प्रतिशत) या थायोफिनेट मेथिल (0.2 प्रतिशत) या कैप्टॉन (0.3 प्रतिशत) का घोल बनाकर पेड़ों पर आवश्यकतानुसार छिड़काव करें।

2. कैंकर और शीर्षारंभी क्षय (Canker and dieback)

लक्षण

इस रोग के लक्षण टहनियों पर बड़े वृत्ताकार, काले रंग के धब्बों के रूप में दिखाई देते हैं। बाद में, संक्रमित भाग चपटा, बीच का भाग दबा हुआ और किनारे उठे हुए हो जाते हैं। रोगग्रस्त स्थान की छाल सूखकर फट जाती है जिससे नीचे की काष्ठ गाढ़े भूरे या काले रंग की दिखाई देती है। संक्रमित भाग

से ऊपर की टहनियां सूखने लगती हैं तथा रोग की तीव्रता बढ़ने पर पूरा पेड़ सूख जाता हैं।

रोगकारक एवं रोग-अनुकूल परिवेश

इस रोग *सिंथोस्पोरा फिलोस्टिक्टा (Centhospora phyllosticta)* नामक कवक द्वारा होता होता है। यह रोगकारक रोगी पेड़ पर उत्तरजीवी बना रहता हैं।

रोग-प्रबंधन

इस रोग का प्रबंधन निम्नलिखित रोग-नियंत्रण विधियों से किया जा सकता है:

- पेड़ से रोगी टहनियों को काट–छांट कर नष्ट कर दें तथा कटे भागों पर बोर्डो पेस्ट लगाएं।
- कवकनाशी दवा मैंकोजेब (0.3 प्रतिशत) का घोल बनाकर समय-समय पर आवश्यकतानुसार छिड़काव करते रहें।

3. जीवणुज पर्णचित्ती (Bacterial leaf spot)

लक्षण

पत्तियों पर छोटे–छोटे अनियमित आकार (2.5 मि.मि व्यास) के जलीय धब्बे बहुतायत में दिखाई देते हैं। धब्बों के केंद्र का भाग विक्षत होता है। ऐसे धब्बे को प्रकाश के सामने देखने पर वे पारदर्शी दिखाई देते हैं। धब्बे का रंग हल्का भूरा या गहरे भूरा या गहरे भूरे रंग के तथा ये धब्बे जलीय किनारे से घिरे रहते है। ये धब्बे आपस में मिलकर बड़े संक्रमण का बड़ा क्षेत्र बनाते हैं। रोग की तीव्रता बढ़ने पर पत्तियां पीली पड़ कर आसानी से गिर जाती हैं। पौधों की वृद्धि रुक जाती है और पौधा बौना लगने लगता है। इस रोग के लक्षण तने, शाखाओं तथा फलों पर भी दिखाई देते हैं। भूरे से लेकर काले से धब्बे फलों पर 'L' और 'Y' आकार के दिखाई देते हैं।

रोगकारक एवं रोग-अनुकूल परिवेश

अनार का यह रोग *जैन्थेमोनास ऐक्सोनोपोडिस पैथेवार प्यूनिकी* (*Xanthomonas axonopodis* pv. *punicae*) नामक जीवाणु से होता है। यह जीवाणु गिरी हुई संक्रमित पत्तियों, शाखाओं और फलों पर या जीवित पेड़ों पर उत्तरजीवी बना रहता है। इस जीवाणु के विकास के लिए अधिक तापमान (30° सेल्सियस) तथा कम आपेक्षित आर्द्रता अनुकूल होती है। मार्च से जुलाई तक रोग अधिक फैलता है। इस रोग का फैलाव रोगी पौधे से स्वस्थ पौधों में वर्षा के झोंके तक नए क्षेत्र में संक्रमित हुए नर्सरी के पाधों द्वारा होता है।

रोग-प्रबंधन

इस रोग का प्रबंधन निम्नलिखित विधियों से किया जा सकता है:

- संक्रमित पौधों के अवशेषों जैसे टहनियों, पत्तियों तथा फलों को बाग से इकट्ठा करके नष्ट कर दें। बाग की सफाई का विशेष ध्यान दें।
- नए बाग लगाने के लिए स्वस्थ पौध का चुनाव करें।
- स्ट्रेप्टोसाइक्लिन (0.05 प्रतिशत) + कॉपर ऑक्सीक्लोराइड (0.2 प्रतिशत) के घोल के मिश्रण के दो छिड़काव 15 दिन के अंतराल पर पेड़ों पर करें।

अध्याय – 8

अनन्नास के रोग (Diseases of pineapple)

अनन्नास विश्व का एक महत्त्वपूर्ण फल है। इसकी बागवानी उष्णकटिबंधीय तथा उपोष्ण कटिबंधीय देशों में की जाती है। यह थाईलैंड, चीन, ब्राजील, भारत, हवाई द्वीप समूह, मेक्सिको, दक्षिणी अफ्रीका तथा फिलीपीन्स का एक महत्वपूर्ण व्यावसायिक फल है। अनन्नास के फलों का उपयोग खाने तथा प्रसंस्करण के लिए किया जाता है। इसके फलों का प्रयोग पपीते तथा केले के साथ सलाद के रूप में भी किया जाता है। अनन्नास के प्रमुख रोगों का विवरण निम्नलिखित है:

1. अंतःविगलन या तना विगलन (Heart rot or stem rot)

लक्षण

इस रोग का संक्रमण पौधों में किसी भी अवस्थाओं में हो सकता हैं। प्रारंभ में, संक्रमित पौधों की पत्तियां सामान्य हरे से पीले हरे रंग की हो जाती हैं, तथा उनके शीर्षारंभी का रंग भूरा हो जाता है। संक्रमित पौधों की मध्य शीर्षस्थ पत्तियों को खींचने पर वे आसानी से समूह में बाहर आ जाती हैं। पत्तियों पर पीला–सफेद सड़ा क्षेत्र बन जाता हैं, जिसके भूरे किनारे हरे क्षेत्र से शुरू होते हैं। सड़े हुए भाग से एक विशेष प्रकार की दुर्गंध

आती है। यह सड़न पौधे के तने में फैल जाती हैं एवं मृदु-विगलन उत्पन्न हो जाता है। अनुकूल वातावरण मिलने पर, पौधे लगाने के 6 सप्ताह के अंदर वे अंतर्विगलन के कारण मर जाते हैं। भारी वर्षा के बाद इस रोग की तीव्रता बढ़ जाती है और पौधे अचानक मरने लगते हैं।

एकवर्षी या द्विवर्षी पौधों में म्लानि रोग के लक्षण दिखाई देते हैं। रोगी पौधों की पत्तियाँ बादामी रंग की हो जाती हैं और मुरझाकर लटक जाती हैं। अपरिपक्व फलों का विकास रुक जाता है तथा उनका रंग बिना पके ही बदल जाता है। फल स्पंजी एवं स्वाद में लगभग अम्लीय हो जाते हैं। इस प्रकार के फलों का बाजार मूल्य कम हो जाता है।

रोगकारक एवं रोग-अनुकूल परिवेश

यह रोग *फाइटोफ्थोरा पैरासिटिका* (*Phytophthora parasitica*) नामक कवक से होता है। यह रोगकारक भूमि में काफी समय तक उत्तरजीवी बना रहता है। कृषि-संबंधी क्रियाओं एवं हवा के झोंकों, तथा दूषित मृदा के साथ रोगकारक पर्ण-कक्षों तक पहुँच जाता है तथा वहाँ पर संक्रमण हो जाता है। अधिक नमी एवं तापमान इस रोग के विकास एवं प्रसार के लिए अनुकूल होते हैं। भूमि में जल–निकास का समुचित प्रबंधन न होने तथा मिट्टी के क्षारीय होने पर पर यह रोग अधिक होता है।

रोग-प्रबंधन

इस रोग का प्रबंधन निम्नलिखित रोग–नियंत्रण विधियों से किया जा सकता है:

- भूमि में जल-निकास का समुचित प्रबंधन करें तथा जहाँ तक हो सके क्षारीय मिट्टी में खेती न करें।
- रोपण सामग्री को रोपाई से पहले, कॉपर ऑक्सीक्लाराइड (0.3 प्रतिशत) के घोल में डुबाकर उपचारित करें।

- कृषि–कार्य सावधानी पूर्वक करें जिससे पौधों के ऊपर मिट्टी न जाए।
- अनन्नास की खेती के लिए रोगरोधी किस्मों का चुनाव करें।

2. काला विगलन (Black rot)

लक्षण

इस रोग को काली विगलन के अलावा अन्य नामों जैसे आधार विगलन, फल विगलन एवं पर्ण विगलन, मृदु विगलन, ढेपी विगलन के नाम से जाना जाता है। पर्ण विगलन में पत्तियों पर पीले सफेद धब्बे या चौड़ी धारियां दिखाई देती हैं। रोपाई के लिए प्रयोग होने वाले पौधों का आधार सड़ने लगता है। फलों का विगलन, प्रायः पके फलों की तुड़ाई के बाद, भंडारण के समय होता है। रोग की शुरूआत ढ़ेपी पर बने घावों से होती है। प्रारंभ में ये छोटे, गोल, मुलायम जलीय धब्बे के रूप में दिखाई देते हैं, जो बाद में बढ़कर आपस में मिल कर एक बड़ा क्षेत्र बना लेते हैं। अंततः संक्रमण पूरे फल पर फैल जाता है। फल के अंदर का गूदा काफी मुलायम, काला व जलीय होता है। काली विगलन रोगकारक के काले बीजाणुओं के पैदा होने के कारण होती है। सड़े हुए फलों से एक प्रकार की दुर्गंध आती है।

रोगकारक एवं रोग-अनुकूल परिवेश

यह रोग *सेरैटोयोसिस्टिस पैराडॉक्सा (Ceratosystic paradoxa)* नामक कवक द्वारा होता है। यह रोगकारक संक्रमिक पौधों पर परजीवी होता है तथा मृदा में उत्तरजीवी बना रहता है, जो इस रोग का प्रारंभिक स्रोत है। बाद में रोग का फैलाव वायु द्वारा होता है। रोपाई के लिए खोदे पौधों का संक्रमण कटे घावों से होता है। खड़े पौधों में संक्रमण, कृषि की कार्यविधियों को करते समय उसमें हुए घावों के द्वारा होता है। तेज हवा या अन्य कृषि क्रियाओं द्वारा पत्तियों पर घाव बन जाते हैं। पत्तियों में

संक्रमण प्रायः तूफानी वर्षा के बाद होता है। यह रोग प्रायः ठंडे एवं आर्द्र मौसम में, खेतों में देर से रोपे हुए पौधों में अधिक होता है।

रोग-प्रबंधन

इस रोग का प्रबंधन निम्नलिखित विधियों से किया जा सकता है:

- फलों की तुड़ाई, परिवहन एवं भंडारण के समय उन्हे चोट लगने से बचाएं।
- रोपाई के लिए पौधों को परिवहन से पहले अच्छी तरह सुखा लें।
- पौधों के बंडलों को ढीला बांधे जिससे उनमें वायु संचार होता रहे।
- भंडारण व परिवहन के लिए पैंकिग करने से पहले, रोगी फलों को छाँट कर अलग करें।
- तुड़ाई के तुरंत बाद फलों को थायोबेन्डाजोल (0.1 प्रतिशत) के घोल में डुबाकर उपचारित करें।
- फलों का भंडारण 8 सेल्सियस तापमान पर अच्छे शीतगृहों या ठंडे स्थानों पर करने से इनका जीवन काल बढ़ाया जा सकता है।

3. विषाणु-जनित म्लानि (Viral wilt)

लक्षण

इस रोग में पत्तियां ऊपर से नीचे की तरफ मुरझाने तथा सूखने लगती हैं। संक्रमित पौधे लालिमा लिए हुए पीले हो जाते हैं। अनन्नास के पौधों में रोग की चार अवस्थाएं पायी जाती है। प्रथम अवस्था में पौधे छोटे रह जाते हैं। द्वितीय अवस्था में पत्तियां गुलाबी से पीले रंग की होकर मुरझाने लगती हैं। पत्तियों के शीर्ष भूरे रंग के, कुंचित हो जाते हैं और उनमें विक्षति होती हैं। तृतीय अवस्था में 3–4 पत्तियाँ बिखरे पीले या तो

गुलाबी रंग की हो जाती है तथा उनके शीर्ष भाग कुंचित हो जाते हैं। प्रभावित पौधे स्वस्थ पौधे की अपेक्षा छोटे रह जाते हैं। चतुर्थ अवस्था में, केंद्रीय क्रिल भाग ऊपर की तरफ तथा पत्ती का शीर्ष भाग पीछे की तरफ कुचित, भूरा तथा मुरझाया हुआ होता है। जड़ पूर्ण रूप से सड़ जाती है। अंत में पौधे मुरझाकर मर जाते है।

रोगकारक तथा रोग-अनुकूल परिवेश

यह रोग अनन्नास म्लानि विषाणु *(Pineapple wilt virus)* के द्वारा होता है। यह विषाणु *डिस्मीकॉकस ब्रेवीपेस (Dysmicoccus brevipes)* या *चूर्णी मत्कुण* (मीली बग) कीट के द्वारा स्थानांतरित होता है। यह विषाणु यान्त्रिक विधि से स्थानांतरित नहीं होता।

रोग-प्रबंधन

इस रोग का प्रबधंन करना कठिन होता है। फिर भी निम्नलिखित विधियों से रोग के प्रभाव को कम किया जा सकता है:

- चूर्णी मत्कुण (मीली बग) *डिस्मीकॉक्स ब्रेवीपेस* एवं चींटी के नियंत्रण के लिए आर्गेनोफॉस्फोरस कीटनाशी दवाओं का पौधों पर छिड़काव करें। चींटी को नियन्त्रित करने के लिए क्लोरीनेटेड हाइड्रोकार्बन एवं हेप्टाक्लोर का प्रयोग करें।
- रोपण के लिए विषाणु–रहित पौधों का चुनाव करें।
- रोपण में प्रयोग होने वाले पौधों को गर्मजल (50° सेल्सियस तापमान) में 1 मिनट तक डुबाकर रखें या 55° सेल्सियस पर गरम हवों से 1 घंटे तक उपचारित करें।

अध्याय – 9

बेर के रोग (Diseases of ber)

शुष्क क्षेत्रों में उगाए जाने वाले फलों में बेर का विशेष स्थान है। यह भारत में उगाए जाने वाले फलों में काफी प्राचीन फल है। विभिन्न प्रकार की मिट्टियों एवं जलवायु के प्रति सहनशीलता के कारण यह फल दिन प्रतिदिन भारतीयों के दिलों पर राज करता आ रहा है। इस फल को 'गरीबों का फल' कहकर भी पुकारा जाता है। आजकल तो बेर की सुधरी किस्में अन्य कई फलों से उंचे दामों पर बिकती हैं, अतः अब बेर को गरीबों का फल कहना उचित नहीं लगता है। भारत के उत्तरी राज्यों विशेषकर हरियाणा, राजस्थान एवं पंजाब में इसकी बागवानी व्यावसायिक स्तर पर की जाती है। यह उन शुष्क व अर्ध-शुष्क क्षेत्रों हेतु अति उपयुक्त फल है जहां अन्य फल ठीक से नहीं उग पाते। कारण यह है कि इसे मई व जून के महीनों में अन्य फलों की अपेक्षा बहुत ही कम पानी की आवश्यकता होती है क्योंकि इन दिनों यह सुषप्तावस्था में होता है और इसकी पत्तियां झड़ जाती हैं। भारत में बेर को कुछ रोग क्षति पहुंचाते हैं, जिनका विवरण निम्नलिखित है:

1. चूर्णिल आसिता (Powdery mildew)

लक्षण

इस रोग के लक्षण, पत्तियों एवं फलों पर अक्टूबर से नवंबर तक दिखाई देते हैं। इसमें पत्तियों और फूलों पर समान रूप से सफेद धब्बे दिखाई देते हैं। फलों पर छोटे-छोटे सफेद चूर्ण के धब्बे उत्पन्न होते हैं, जो बाद में पूरे फलों पर फैल जाते हैं। इस सफेद चूर्ण में रोगकारक की कोनिडियम और कवकजाल होती हैं। रोगी फल कुरूप हो जाते हैं एवं अंत में पेड़ से नीचे गिर जाते हैं।

रोगकारक एवं रोग-अनुकूल परिवेश

यह रोग *आइडियम एरीसाइफोइडीज* उपजाति *जिजिफी* (*Oidium erysiphoides* f. sp. *zizyphi*) नामक कवक से होता है। यह कवक पोषक पौधों की कलियों पर उत्तरजीवी बना रहता है। रोग का फैलाव हवा द्वारा होता है।

रोग-प्रबंधन

इस रोग का प्रबंधन निम्नलिखित विधियों से किया जा सकता है:

- संक्रमित पौधों के अवशेषों को बाग से इकट्ठा करके नष्ट करें।
- बागों की सफाई का विशेष ध्यान रखें।
- छुहारा, नाजूक, सनोर-1, पठानी, कक्रोल गोले, काले गोले एवं जेड जी 2, 3, 5 रोग प्रतिरोधी किस्मों के बाग लगाएं।
- कवकनाशी दवाइओं जैसे कार्बेन्डाजिम (0.1 प्रतिशत), डिनोकैप (0.1 प्रतिशत), कैराथेन (0.1 प्रतिशत), सल्फेक्स (0.2 प्रतिशत) का पानी में घोल बनाकर छिड़काव करें। इन दवाओं का पहला छिड़काव फल की छोटी अवस्था से ही शुरू करें तथा 10-15 दिन के अंतराल पर कुल 3-4 छिड़काव आवश्यकतानुसार करें।

- आसमान में बादल जाने हाने पर या बूंदा-बांदी होने पर, कैराथेन (0.2 प्रतिशत) का छिड़काव करने से रोग के संक्रमण से बचा जा सकता है।

2. काली पर्ण-चित्ति (Black leaf spot)

लक्षण

पत्तियों की निचली सतह पर काले रंग के गोल या अनियमित आकार के धब्बे दिखाई देते हैं। संक्रमित भाग पर काले रंग की कवक की बढ़वार समूहों में होती है। बाद में काले धब्बे धीरे–धीरे फैलकर पूरी सतह पर छा जाते हैं। रोग की तीव्रता बढ़ने पर, पत्तियों की निचली सतह पूरी मुड़ जाती है और ऊपरी सतह का रंग पीला–भूरा हो जाता है। अंत में संक्रमित पत्तियाँ झड़कर गिर जाती हैं।

रोगकारक एवं रोग-अनुकूल परिवेश

यह रोग *इसारिऑप्सिस इंडिका* उपजाति *जिजिफी* (*Isariopsis indica* var. *zizyphi*), नामक कवक द्वारा होता है। यह कवक नीचे गिरी पत्तियों या शाखाओं पर चिपकी पत्तियों और कटी छाल पर उत्तरजीवी बना रहता है जो इस रोग के लिए प्राथमिक स्रोत का कार्य करता है और द्वितीय संक्रमण पौधों में करता है। तापमान एवं आर्द्रता इस रोग को अधिक प्रभावित करते हैं और इस रोग के विकास में सहायक हैं। रोग का फैलाव हवा के झोंकों से होता है।

रोग-प्रबंधन

इस रोग का प्रबंधन निम्नलिखित प्रकार से किया जा सकता है:

- संक्रमित पत्तियों के अवशेषों को बाग से निकाल कर नष्ट कर दें।
- कार्बेन्डाजिम या डाइफोलाटान (0.2 प्रतिशत) कवकनाशी का पानी में घोल बनाकर पेड़ों पर आवश्यकतानुसार छिड़काव करें।

अध्याय – 10

आंवले के रोग (Diseases of aonla)

आंवला हमारे देश का प्राचीनतम फल है। गौण फल होने के बावजूद इसका व्यावसायिक महत्त्व अधिक है। यह बहुत ही जलवायु–सह फलवृक्ष है जो बहुत कम प्रबंधन व्यवस्था में भी अच्छा लाभ देता है। औषधीय गुण होने के कारण पूरे विश्व में इसकी अत्यधिक मांग है। यह शुष्क क्षेत्रों में उगाने के लिए सर्वोत्तम फलवृक्ष है। आंवले के प्रमुख रोगों का विवरण निम्नलिखित है:

1. किट्ट रोग (Rust)

लक्षण

प्रारंभ में पत्तियों और फलों पर गोल एवं अंडाकार, लाल भूरे रंग के धब्बे (फफोले) दिखाई देते हैं जो बाद में गहरे भूरे या काले रंग के हो जाते हैं। ये फफोले आपस में मिलकर पत्तियों एवं फलों के बड़े क्षेत्र को ढ़क लेते हैं। रोग की तीव्रता बढ़ने पर अपरिपक्व अवस्था में गिर जाते हैं। कभी–कभी फलों पर रोग की तीव्रता होने पर भी पत्ती पर इस कवक के लक्षण नहीं दिखाई

पड़ते हैं। इसी प्रकार कभी–कभी पत्तियों के संक्रमित होने पर फल पर लक्षण प्रकट नहीं होते हैं। फल स्वस्थ दिखाई देते हैं। कागजनुमा सतह के फटने पर इस कवक के काले बीजाणु बाहर आ जाते हैं। प्रभावित पेड़ों की पैदावार घट जाती है।

रोगकारक

यह रोग *रैविनेलिया एमब्लिकी (Ravenelia emblicae)* नामक कवक द्वारा होता है।

रोग-प्रबंधन

इस रोग का प्रबंधन निम्नलिखित विधियों को अपनाकर किया जा सकता है :

- संक्रमित पत्तियों एवं फलों को बाग से इकट्ठा करके नष्ट कर दें।
- जिनेब या मेंकोजेब (0.25 प्रतिशत) आदि कवकनाशी का छिड़काव जुलाई से सितंबर माह में, 30 दिन के अंतराल पर करें।

2. श्यामव्रण (Anthracnose)

लक्षण

प्रारंभ में रोग के लक्षण पत्तियों एवं फलों पर उत्पन्न होते हैं, जो शुरू में सूक्ष्म गोल, भूरे या धूसर रंग के होते हैं। ये धब्बे पीले रंग के किनारे से घिरे होते हैं। बाद में इन धब्बों के बीचों–बीच छोटे–छोटे बिंदु आकार के गाढ़े रंग के कवक की फलनकाय की संरचना (एसरबुलस) बनती है जो छल्ले की तरह दिखाई पड़ती है। फलों पर धब्बे कुछ दबे हुए होते हैं जो बाद में बदलकर गाढ़े रंग के हो जाते हैं। रोग की तीव्रता में फल सिकुड़ कर सड़ जाते हैं।

रोगकारक

यह रोग *ग्लोमेरेला सिंगुलेटा (Glomerella cingulata)* नामक कवक द्वारा होता है।

रोग-प्रबंधन

इस रोग का प्रबंधन निम्नलिखित विधियों से किया जा सकता है :

- संक्रमित पौधों के अवशेषों जैसे पत्तियाँ, शाखाओं तथा फलों को बगीचे से इकट्ठा करके नष्ट कर दें।
- रोगी वृक्षों की टहनियों को काटकर निकाल दें।
- पेड़ के नीचे गिरी पत्तियों व सूखे फलों को इकट्ठा करके नष्ट कर दें।
- काट–छाँट के बाद बने घावों पर बोर्डो पेस्ट का लेप लगाएं।
- कार्बेन्डाजिम (0.1 प्रतिशत) व क्लोरोथैलोनिल (0.2 प्रतिशत) का पानी में घोल बनाकर 15–20 दिन के अंतराल पर पेड़ों पर कुल 2-3 छिड़काव करें।

अध्याय – 11

सेब एवं नाशपाती के रोग

(Diseases of apple and pear)

विश्व में शीतोष्ण जलवायु में उगाए जाने वाले फलों में सेब एवं नाशपती का प्रमुख स्थान है। यह संसार में उगाया जाने वाले अतिविशिष्ट फल हैं जिनका 80 प्रतिशत से भी अधिक अत्पादल यूरोप में होता है। यह उन शीतोष्ण क्षेत्रों में अधिक फूलता व फलता है जहां के दिन बड़े, सामान्यतः गर्म व सूर्य की किरणें तेज हों, रातें छोटी व ठंडी और आर्द्रता कम हो। आर्थिक दृष्टि से सेब की बागवानी बहुत लाभप्रद है। सेब की विशेषता यह है कि इसके फल साधारण तापमान पर भी कई महीनों तक रखे जा सकते हैं। सेब व नाशपती को कई कवक, जीवाणु व विषाणु रोग–ग्रसित करते हैं, जिससे इसे काफी क्षति पहुंचाती हैं। प्रमुख रोगों के लक्षणों एवं नियंत्रण के उपायों की जानकारी निम्नलिखित है:

1. चूर्णिल आसिता (Powdery mildew)

लक्षण

इस रोग के लक्षण पौधे के एक वर्ष पुराने प्ररोहों, टहनियों,

पत्तियों, फूलों एवं फलों पर दिखाई देते हैं। पत्तियों की निचली सतह पर सफेद रंग के छोटे–छोटे धब्बे दिखाई देते हैं। बाद में, ये धब्बे फैलकर पत्ती की संपूर्ण सतह पर फैल जाते हैं और पत्तियों की ऊपरी सतह पर सफेद आटे की तरह बिखरे हुए चुर्ण जैसे दिखाई देते हैं। इस सफेद चूर्ण में रोगकारक के कवकजाल तथा चूर्णिल बीजाणु होते हैं। संक्रमित पत्तियाँ सख्त, भंगुर एवं मुड़ी हुई होती हैं तथा कभी-कभी मर भी जाती हैं। संक्रमित भाग का रंग बदलने लगता है, जिसमें काले रंग के छोटे बिंदु आकार के कवक के फलनकाय बनते हैं। संक्रमित टहनियों पर नई पत्तियाँ एवं कलिकाएं बैंगनी-लाल रंग की होती हैं तथा लंबी होकर गुच्छित हो जाती हैं। पुष्पीय भाग झुलसकर सिकुड़ जाते हैं और उन पर फल नही लगते। नए फलों पर रोग लगने से वे छोटे रह जाते हैं, जबकि बाद में रोगी फलों पर रूक्ष शल्क के लक्षण दिखाई देते हैं। फल का संक्रमित भाग सख्त होकर फट जाता है।

रोगकारक एवं रोग-अनुकूल परिवेश

यह रोग *पॉडोस्फीरा ल्यूकोट्रिका (Podosphaera leucotricha)* नामक कवक द्वारा होता है। यह रोगकारक एक अविकल्पी परजीवी है जो कवकजाल के रूप में कलिकाओं में प्रसुप्तास्था में उत्तरजीवी बना रहता है। वसंत ऋतु में इन कलिकाओं के खिलते ही कवकजाल सक्रिय होकर बढ़ने लगते हैं। रोग का फैलाव वायु के द्वारा होता हैं। रोग के आक्रमण के लिए वातावरण में आपेक्षित आर्द्रता 90 प्रतिशत से अधिक तथा 19°-22° सेल्सियस तापमान अनुकूल होते हैं। सूखे मौसम में यह रोग तेजी से फैलता है जबकि नम वातावरण में रोग का विकास रूक जाता है।

रोग-प्रबंधन

इस रोग का प्रबंधन निम्नलिखित प्रकार से किया जा सकता है:

- पेड़ों के प्रभावित हिस्सों की काट–छांट कर उन्हें नष्ट कर दें। शीत तथा वसंत ऋतु में पेड़ों की काट-छांट करें।
- कवकनाशी डाइनोकैप (0.05 प्रतिशत), कार्बेन्डाजिम (0.1 प्रतिशत), सल्फेक्स (0.2 प्रतिशत), कैलिक्सिन (0.1 प्रतिशत), वेलेटान (0.1 प्रतिशत) का पानी में घोल बनाकर पेड़ों पर छिड़काव करें। पहला छिड़काव प्रष्पुप्तासुवस्था में, दूसरा कलियाँ निकलने पर, तीसरा पंखुडियाँ गिरने पर तथा चौथा छिड़काव 20 दिन बाद आवश्यकतानुसार करें।
- पेड़ों पर पुष्पन काल से पहले एवं कुछ समय बाद अति महीन सल्फर (20–25 कि.ग्रां/हैक्टर) का छिड़काव करें। लेकिन यदि मौसम अधिक गर्म हो तो यह छिड़काव ने करें।
- नए बाग लगाने के लिए रोग प्रतिरोधी किस्मों का चयन करें।

2. मार्सोनिना पर्ण–चित्ति (Marssonina leaf spot)

लक्षण

इस रोग के लक्षण पुरानी पत्तियों के ऊपरी सतह पर छोटे भूरे रंग के धब्बे दिखाई देते हैं जो बाद में बढ़कर 5-10 मि.मी. व्यास एवं गहरे भूरे रंग के हो जाते हैं। संक्रमित स्थानों पर कवक के छोटे-छोटे बिंदु के समान फलनकाय बनते हैं। रोग की तीव्रता बढ़ने पर, ये धब्बे आपस में मिलकर बड़े-बड़े धब्बे का रूप ग्रहण कर लेते हैं, तथा पत्तियाँ पीली होकर असमय ही गिर जाती हैं। पेड़ों पर सिर्फ सेब के फल अपरिक्व होने की अवस्था में लटके

हुउ दिखाई देते हैं। फलों पर भूरे रंग के धब्बो बनते हैं, जो आकार में 4-5 मि.मी. व्यास के होते हैं। बाद में ये धब्बे दबे हुए और गहरे भूरे रंग के हो जाते हैं। फल की परिपक्व अवस्था में इनका रंग काला हो जाता है। इस रोग के प्रभाव से फसल की पैदावार कम हो जाती है। रोगी पेड़ के फल छोटे तथा कुरूप हो जाने से उनका बाजार मूल्य घट जाता है।

रोगकारक एवं रोग-अनुकूल परिवेश

यह रोग *मार्सोनिना कोरोनेरिया (Marssonina coronaria)* नामक कवक के कारण होता है। यह रोगकारक गिरी हुई पत्तियों पर उत्तरजीवी बना रहता है। रोग का फैलाव हवा एवं पानी के द्वारा होता है। रोग की शुरूआत जून से होती है। रोग के संक्रमण तथा विकास के लिए 20°-25° सेल्सियस तापमान अनुकूल होता है। रोग के आक्रमण के 15 दिन बाद पत्तियों का झड़ना आरंभ हो जाता है।

रोग-प्रबंधन

इस रोग का प्रबंधन निम्नलिखित विधियों से किया जा सकता है :

- सेब एवं नाशपाती के बागों की उचित देखभाल करते रहें। गिरी हुई पत्तियों को बाग से इकट्ठा करके नष्ट कर दें।
- पेड़ों की समय पर काट–छांट करते रहें।
- गिरी हुई पत्तियों पर यूरिया का 5 प्रतिशत का घोल बनाकर छिड़काव करने से पत्तियाँ शीघ्र ही गलकर नष्ट हो जाती हैं।

3. कच्छुया स्कैब (Scab)

लक्षण

इस रोग के लक्षण पत्तियों एवं फलों पर दिखाई देते हैं। पत्तियों पर, हल्के से जैतूनी हरे रंग के धब्बे बनते हैं, जो बाद में

गहरे रंग के हो जाते हैं तथा अंत में, विशेषतः ऊपरी सतह पर, ये काले रंग के हो जाते हैं। नई पत्तियों पर धब्बे बदरंग एवं पंखदार किनारों वाले होते हैं, जबकि पुरानी पत्तियों पर धब्बों के किनारे निश्चित आकार के होते हैं। धब्बों की सतह ऊतकों के स्थूल होने पर ऊपर की ओर उभर आती हैं एवं पत्ती की निचली सतह प्याले के समान दब जाती हैं। रोग की तीव्रता बढ़ने पर, पत्तियों के पटल कुंचित, बौने एवं विकृत हो जाते हैं। पर्णवृंतों पर कुछ लंबे आकार के धब्बे पाए जाते हैं। पर्णवृंत पर अधिक धब्बों के बनने से पत्तियां पीली होकर गिर जाती हैं। धब्बों के मरे हुए ऊतकों पर काले रंग की कवक की बढ़वार दिखाई देती है। टहनियों पर फफोले के समान छोटे धब्बे बनते हैं जिससे संक्रमित टहनियों की छाल फट जाती है।

फलों पर पत्तियों की अपेक्षा छोटे एवं हल्के, जैतूनी, गहरे भूरे या काले रंग के धब्बे बनते हैं। प्रारंभ में धब्बे फल की उपत्वचा से ढके होने के कारण धूसर रंग के दिखाई पड़ते हैं। कुछ फलों में धब्बे एवं मस्सेदार सूजन के नीच कॉर्की परत बन जाने से फल बुरी तरह से विकृत हो जाते हैं। रोग की तीव्रता बढ़ने पर, फल की संपूर्ण सतह कॉर्क के समान हो जाती है तथा उसमें गहरी दरारें पड़ जाती हैं।

रोगकारक एवं रोग-अनुकूल परिवेश

यह रोग *वेन्टूरिया इनेक्वलिस (Venturia inaequalis)* नामक कवक के द्वारा होता है। यह रोगकारक गिरी हुई संक्रमित पत्तियों पर, वसंत ऋतु के अंत तक मृतजीवी अवस्था में रहता है। शुष्क एवं गरम मौसम में संक्रमण कम होता है, किंतु बसंत ऋतु के आरंभ में कम तापमान एवं नम मौसम होने के कारण यह रोग महामारी के रूप में फैलता है। रोग के संक्रमण के लिए 15° से 20° सेल्सियस तापमान एवं भारी ओस अनुकूल होती है।

रोग-प्रबंधन

इस रोग का प्रबंधन निम्नलिखित प्रकार से किया जा सकता है:

- पेड़ की नीचे गिरी संक्रमित या अन्य पत्तियों को इकट्ठा करके नष्ट कर दें। झड़ी पत्तियों पर 5 प्रतिशत यूरिया या बिनोमिल (0.05 प्रतिशत) का अच्छी प्रकार से छिड़काव करें। अन्य कवकनाशी दवा जैसे कैप्टान (2 प्रतिशत), मैंकोजेब (0.25 प्रतिशत), कार्बेन्डाजिम (0. 05 प्रतिशत) का छिड़काव गिरी हुई पत्तियों पर करें।
- बगीचों की समय पर जुताई करें जिससे गिरी हुई पत्तियाँ मृदा में दबकर सड़कर नष्ट हो जाएं।
- भूमि की सतह के पास तने के चारों तरफ कॉपर ऑक्सीक्लोराइड (0.3 प्रतिशत), कैलिक्सीन, टॉप्सीन–एम (0.1 प्रतिशत), का छिड़काव जून–जुलाई और अगस्त में करें।
- कच्छुया स्कैब रोग के प्रबंधन के लिए पेड़ों पर कवकनाशियों के छिड़काव की मात्रा निम्नलिखित सारणी के दी गई:
- सेब की रोग-प्रतिरोधी किस्में उगाएं।
- आर्द्रपतन रोग की रोकथाम के लिए निम्नलिखित उपायों को अपनाएं :

(i) पौधशाला की क्यारी भूमि की सतह से कुछ ऊपर उठी हुई होनी चाहिए। मृदा हल्की बलुई होनी चाहिए। यदि मृदा कुछ भारी हो तो उसमें बालू या लकड़ी का बुरादा मिल लें।

(ii) पौधशाला में जल-निकास का उचित प्रबंध हो जिससे कि वहां अधिक देर तक पानी जमा न हो सके।

(iii) बीज की बुआई घनी न करें।

सारणी : सेब एवं नाशपती के कच्छुया स्कैब रोग की रोकथाम हेतु मानकीकृत कवकनाशियों का विवरण :

पेड़ की अवस्था	कवकनाशी मात्रा (प्रति 100 लीटर पानी)
रजत शीर्ष से हरी अवस्था	क्लोरोथैलानिल (400 ग्रा0) या कैप्टान (300 ग्रा0), या मैंकोजेब (400 ग्रा0)
गुलाबी कली से पंखुडियाँ गिरने की अवस्था	मैंकोजेब (300 ग्रा0) + गंधक कार्बेन्डाजिम (50 ग्रा0)
फल बनने की अवस्था (मटर का आकार)	मैंकोजेब या कैप्टान (300 ग्रा0)
फल विकास (मटर का आकार के बीस दिन बाद)	कार्बेन्डाजिम (50 ग्रा0) या थायोफिनेट मेथिल (25 ग्रा0) + मैंकोजेब (250 ग्रा0) या कैप्टॉन (300 ग्रा0)
फल विकास (5 वें छिड़काव के 20 दिन बाद)	कार्बेन्डाजिम (50 ग्रा0) या मैंकोजेब या कैप्टान (300 ग्रा0)
फल तुड़ाई के 20–25 दिन पहले	मैंकोजेब या कैप्टान 300 ग्रा:
पतझड़ के पहले	यूरिया 5 कि. ग्रा:

इसके अतिरिक्त, पौधशाला की मृदा का उपचार निम्नलिखित विधियों से करें:

(i) पौधशाला की मिट्टी में थीरम या कैप्टान (3 ग्रा0/वर्ग मीटर की दर से) मिलाएं।

(ii) पौधशाला की क्यारी में फार्मेलीन (एक भाग फार्मेलीन + 50 भाग पानी) का घोल बनाकर मृदा को खूब अच्छी तरह भिगोएं तथा एक सप्ताह तक के लिए पॉलिथीन से ढककर छोड़ दें। यह कार्य बोआई के एक सप्ताह पूर्व करना चाहिए।

(iii) पौधशाला की मृदा में लकड़ी, सरकंडे या घास–फूस को जलाकर भी मृदा का उपचार किया जाता है।

(iv) मृदा की सौर्यन सफेद पारदर्शी पॉलिथीन की मोटी (लगभग 200 गेज) चादर को मिट्टी की सतह पर बिछाकर लगभग 45-60 दिनों के लिए ढककर रखें। पॉलिथीन चादर से ढ़कने के पूर्व मृदा की हल्की सिंचाई कर दें। यह कार्य अप्रेल से जून के मध्य में करें।

- बुआई से पहले बीज को किसी कवकनाशी जैसे कैप्टान, थीरम (2.5 ग्राम) या कॉपर ऑक्सीकलोराइड (3 ग्राम प्रति किलोग्राम बीज की दर से) से उपचारित करें।
- पौध उगने के बाद थीरम या कैप्टान (2.5 ग्रा0 लिटर पानी की दर से) का पानी में घोल बनाकर पौधशाला की क्यारियों में डालें।

4. कैंकर (Canker)

लक्षण

इस रोग के लक्षण पौधों में पर्णचित्ती फल विगलन (काला विगलन) एवं कैंकर अंगमारी के रूप में दिखाई देते हैं। पत्तियों पर छोटे, बैंगनी रंग के धब्बे दिखाई देते हैं, जो बाद में बढ़कर गोल, 4-5 मि. मी व्यास तक हो जाते हैं। इन धब्बों का किनारा बैंगनी तथा अंदर का हिस्सा भूरे रंग का होता है। रोग की तीव्रता बढ़ने पर पत्तियाँ पीली होकर गिर जाती हैं। सेब की टहनियों एवं शाखाओं पर छोटे, गोल जलीय धब्बे बनते हैं जो बाद में

बैंगनी रंग के कैंकर बन जाते हैं। संक्रमित भाग की छाल गिर जाने से श्लेषी परत दिखाई देने लगती है। अगली बसंत ऋतु में कवक के पिक्नीडिया बनने से, धब्बे की सतह पर कुछ उठे हुए क्षेत्र बन जाते हैं। फलों पर छोटे, लाल रंग के धब्बे दिखाई देते हैं, जो बाद में बैगनी रंग के फफोले के रूप में हो जाते हैं। संक्रमित भाग अनियमित, काला तथा लाल रंग से घिरा होता है। धब्बों के काले–भूरे रंग के क्रमानुसार छल्ले बनते हैं। रोगी फल ममीभूत होकर, पेड़ पर ही लटके रहते हैं। रोगी फलों का विकास रूक जाता है एवं वे स्वस्थ फलों की अपेक्षा पहले ही पक जाते हैं, तथा फल का गुदा लसलसा हो जाता है।

रोगकारक एवं रोग-अनुकूल परिवेश

यह रोग *बोट्रियोस्फीरिया राइबिस (Botryosphaeria ribis)* नामक कवक के द्वारा होता हैं। यह रोगकारक प्रसुप्त कवकजाल के रूप में तथा बीजाणु के रूप में कैंकर, ममीभूत फल एवं मृत वृक्ष की काष्ठ पर उत्तरजीवी बना रहता है। रोगकारक के बीजाणु बरसात के समय अधिक पैदा होते हैं। रोग का फैलाव पानी की बूँदों तथा हवा द्वारा होता है। रोग के विकास के लिए अधिक आपेक्षिक आर्द्रता (96-100 प्रतिशत) तथा 20-22° सेल्सियस तापमान अनुकूल होता है। नाइट्रोजन की अधिक मात्रा तथा बोरॉन तथा मैंगनीज की कमी से पेड़ रोगग्रसित हो जाते हैं, जबकि फॉस्फोरस तथा पोटाश से रोग की तीव्रता में कमी आ जाती है। इसके अलावा फल का काला विगलन रोग अधिक होता है। सेब की रेड डिलिसियस तथा विंटर डिलिसियस किस्मों में यह रोग अधिक लगता है। इस रोग के लिए गैलिया ब्यूटी और रस्पीपियन रोगरोधी किस्में हैं।

रोग–प्रबंधन

इस रोग का प्रबंधन निम्नलिखित प्रकार से किया जा सकता है :

- संक्रमित टहनियों को संक्रमित स्थान से लगभग 15 से. मी. नीचे से काटकर नष्ट कर दें तथा कटे हुए भाग पर चौबटिया पेस्ट का लेप लगाएं।
- बाग से संक्रमित पेड़ों के अवशेषों को इकाट्ठा करके नष्ट कर दें।
- बाग में कैप्टान (0.2 प्रतिशत) या कॉपर ऑक्सीक्लोराइड़ (0.3 प्रतिशत) घोल का छिड़काव पेड़ों पर करें।

5. ग्रीवा विगलन (Collar rot)

लक्षण

जमीन सतह के पास तने की छाल मर जाती है तथा उस स्थान से नम रिसाव दिखाई देता है। छाल स्पंजी हो जाती है, सड़ने लगती है तथा कैंकर क्षेत्र बन जाता है। कैंकर प्रायः अंडाकार या अनियमित आकार के दिखाई देते हैं और पेड़ के चारों ओर कत्थई से लेकर लाल रंग की मेखला बना देते हैं। तना गल जाने के कारण, पूरा पेड़ 1–2 साल में मर जाता है।

रोगकारक एवं रोग-अनुकूल परिवेश

यह रोग *फाइटोफ्थोरा कैक्टोरम (Phytophthora cactorum)* नामक कवक द्वारा होता है। यह रोगकारक मृदा में पाया जाता है जो भूमि में कवकजाल अथवा निषिक्तांड के रूप में अनिश्चित समय तक उत्तरजीवी बना रहता है। रोग का फैलाव हवा तथा पानी के छींटों द्वारा होता है। कवक पेड़ की जमीनी सतह के पास वाली छाल पर घाव, खरोंच से प्रवेश करता है। इस रोग के संक्रमण तथा वृद्धि के लिए 20°-25° सेल्सियस तापमान अनुकूल होता है। भूमि ग्रीवा के पास अधिक नमी का होना, रोग फैलने के लिए अनुकूल परिस्थिति होती है।

रोग-प्रबंधन

ग्रीवा विगलन रोग का प्रबंध निम्नलिखित प्रकार से किया जा सकता है :

- बाग से संक्रमित पेड़ों के अवशेषों को इकट्ठा करके नष्ट कर दें।
- बाग में जल–निकास का उचित प्रबंध करें।
- ग्रीवा के पास के भाग को घाव तथा खरोंच से बचाएं।
- बाग में, ढालों पर मेंड़ बनाएं, जिससे वर्षा का पानी रोगी वृक्ष से स्वस्थ पेड़ों तक बहकर न जा सके।
- रोग–प्रतिरोधी मूलवृंतों जैसे एम–2, एम एम 110, 114, 115 एवं क्रैब सेब का प्रयोग करें।
- संक्रमित छाल को चाकू से छील कर, उस स्थान पर चौबटिया पेस्ट, बोर्डो पेस्ट या कॉपर पेस्ट या मेटालेक्ज़िल पेस्ट का लेप लगाएं।
- कवकनाशी दवाओं जैसे मैंकोजेब (0.25 प्रतिशत), कॉपर ऑक्सीक्लोराइड (0.3 प्रतिशत), या रीडोमिल (0.25 प्रतिशत) का घोल बनाकर मुख्य तने के चारों ओर डालें।

6. श्वेत मूल विगलन (White root rot)

लक्षण

श्वेत मूल विगलन रोग पौधशाला एवं बागों का बहुत हानिकारक रोग है। संक्रमित जड़ों पर सफेद रोएंदार कवक की बढ़वार दिखाई देती है। मृत छाल दारु के ऊपर असंख्य छोटे–छोटे काले रंग के कवक की स्क्लेरोशिया पाई जाती हैं। मूल विगलन के फलस्वरूप पेड़ कमजोर हो जाते हैं। पेड़ों की बढ़वार रुक जाती है। रोगी पेड़ पर कम पत्तियाँ लगती हैं तथा वे पीली पड़कर असमय ही गिर जाती हैं। फलों की संख्या कम तथा आकार भी छोटा होता है। संक्रमित पेड़ों की धीरे–धीरे मृत्यु हो जाती है।

रोगकारक एवं रोग-अनुकूल परिवेश

यह रोग *रोजेलिनिया निकैट्रिक्स (Roselinia necatrix)* नामक कवक से होता है। यह रोगकारक संक्रमित जड़ों के अवशेषों पर उत्तरजीवी बना रहता है। इस रोग का फैलाव मिट्टी और वर्षा के पानी के द्वारा होता है। पेड़ से पेड़ में रोग का संक्रमण सिंचाई के जल द्वारा फैलता है। पुराने पेड़ों पर रोग का संक्रमण होने के 2 से 3 वर्ष बाद वायव लक्षण दिखाई देने लगते हैं। पाँच से बीस वर्ष तक की आयु के पेड़ अत्यधिक रोगग्राही होते हैं। इस रोग के लिए जलाक्रांत एवं अम्लीय मृदा (6.1 से 6.5 पी. एच) अत्यंत अनुकूल दशाएं होती हैं।

रोग–प्रबंधन

इस रोग का प्रबंधन निम्नलिखित विधियों से किया जा सकता है:

- मूल वृंत जैसे एम.एम 109, और एम.एम 104 कम रोगग्राही पाए गए हैं।
- नर्सरी एवं बागों में जल-निकास का उचित प्रबंधन करें।
- नए बाग लगाने के लिए रोग-रहित क्षेत्र का चुनाव करें।
- संक्रमित पौधों को उखाड़कर नष्ट करें। प्रभावित जड़ों की छंटाई कर कटे भाग पर चौबटिया लेप लगा दें।
- नर्सरी की मृदा को सोर्यन। द्वारा अच्छी तरह सुखा लें।
- रोपण के पहले पौध की जड़ों को कार्बेन्डाजिम (0.1 प्रतिशत) के घोल में डुबाकर उपचारित करें।
- भूमि में नीम की खली (25 क्विंटल प्रति हेक्टर) मिलाएं।
- बुरी तरह संक्रमित पेड़ों को उखाड़कर उनको मूल के समस्त अवशेषों सहित जला दें।
- पौधों में संक्रमण होने पर कार्बेन्डाजिम (0.1 प्रतिशत) का घोल बनाकर पेड़ों की जड़ों के पास 15–20 से. मी.

गहरा छेद बनाकर डालें। यह उपचार वर्षा के समय प्रत्येक वर्ष 3–4 बार करना चाहिए। इसके अलावा आरियोफन्जिन (0.02 प्रतिशत) + कॉपर सल्फेट (0.02 प्रतिशत) से मिट्टी को भिगोकर रोग को नियंत्रित कर सकते हैं।

- इस रोग के नियंत्रण के लिए, जैव नियंत्रक जैसे ट्राइकोडर्मा *हारजिएनम एवं ट्रा. विरिडी* के प्रयोग उपयोगी पाए गए हैं।

7. पौध अंगमारी (Seedling blight)

लक्षण

यह पौधशाला में लगने वाला रोग है जिसके लक्षण 2–3 वर्ष पुराने पौधों पर दिखाई देते हैं। संक्रमित पौधों की पत्तियाँ लाल या धूसर–बैंगनी रंग की होकर सूखने लगती हैं। बाद में पौध के सभी वायव भाग झुलस जाते हैं। मृत पौध की जड़ों पर सरसों के बीज के समान भूरे रंग की संरचना बनती है, जिसकी उपस्थिति इस रोग के होने को सत्यापित करती है।

रोगकारक एवं रोग-अनुकूल परिवेश

यह रोग *स्क्लेरोशियम रोल्फसाई (Sclerotium rolfsii)* नामक कवक द्वारा होता है। यह कवक मिट्टी में उत्तरजीवी बना रहता है। रोग वुद्धि के लिए 30°-33° सेल्सियम तापमान, अम्लीय मृदा (6 पी.एच) और मृदा की 38 प्रतिशत से अधिक नमी अनुकूल होती है। बलुई दोमट और चिकनी दुमट मृदा में रोग कम लगता है। जबकि बलुई दुमट मिट्टी इस रोग के विकास में सहायक होती है।

रोग-प्रबंधन

इस रोग का प्रबंधन निम्नलिखित प्रकार से किया जा सकता है:

- पौधशाला में जल–निकास का उचित प्रबंधन रखें, जिससे वहाँ पर पानी अधिक समय तक न रूके।

- पौधशाला के लिए दुमट मृदा का प्रयोग करें।
- पौधशाला की जगह कम से कम 4–5 वर्ष के बाद बदल देनी चाहिए।
- मृदा को सौर्यन (सौरीकरण) विधि से उपचारित करें।
- पौधशाला की मृदा को पुनः प्रयोग में लाने से पूर्व कम से कम 4-5 वर्ष तक मक्का अवश्य लगाए।
- रोगी पौधे को पौधशाला में कवकनाशी दवा थीरम (0.2 प्रतिशत) का घोल बनाकर जड़ों के पास डाल कर उपचारित करें।

8. कटु विगलन (Bitter rot)

लक्षण

फलों पर छोटे–छोटे गोलाकार हल्के भूरे रंग के धब्बे दिखाई देते हैं। बाद में ये धब्बे आकार में बढ़कर बीच में दबे हुए निश्चित गोलाकार धब्बों में बदल जाते हैं। अनुकूल वातावरण मिलने पर इन धब्बों के बीच, गुलाबी रंग के कवक की बढ़वार दिखाई देती है। धब्बों के पुराने हो जाने पर उनका रंग गहरा भूरा या काला, कुछ झुर्रीदार, तथा दबा हुआ होता है। संक्रमित भाग के नीचे गूदे का कुछ हिस्सा सड़ जाता है, जो धीरे–धीरे क्रोड़ की ओर बढ़ता है। सड़ा हुआ गूदा काफी मुलायम तथा स्वाद में कड़वा हो जाता है। संक्रमित फल अपरिपक्व अवस्था में पक जाते हैं एवं झड़ने लगते हैं। शाखाओं पर सड़े एवं सूखे फल लटके हुए दिखाई देते हैं।

इस रोग के लक्षण शाखाओं पर कैंकर के रूप में दिखाई देते हैं। संक्रमित छाल अंडाकार रूप में थोड़ी दबी हुई होती है तथा उनके नीचे के हिस्से का दारु सूखकर मर जाता है। पुराने कैंकर में उनके किनारों के समांतर दरारें बन जाती हैं, जिससे मृत छाल में मंडल बन जाता है। कैंकर के चारों तरफ कैलस की परत बन जाती है, जो कैंकर की वृद्धि को रोक लेती है।

रोगकारक एवं रोग-अनुकूल परिवेश

यह रोग *ग्लोमेरेला सिंगुलेटा* (*Glomerella cingulata*) नामक कवक द्वारा होता है। यह रोगकारक सड़े-सूखे फलों की शाखाओं पर बने कैंकरों अथवा मृत छाल में बनी दरारों या अन्य सुरक्षित स्थानों में मृतजीवी की भांति उत्तीजीवी बना रहता है। रोग का फैलाव पानी, हवा, कीटों एवं पक्षियों द्वारा होता है। रोग का संक्रमण फलों के पकते समय, जुलाई के मध्य में आरंभ होकर अगस्त एवं सितंबर में फैलता है। रोग की वृद्धि के लिए 25° सेल्सियस तापमान एवं 80 प्रतिशत आपेक्षिक आर्द्रता अनुकूल होती हैं।

रोग-प्रबंधन

इस रोग का प्रबंधन निम्नलिखित प्रकार से किया जा सकता है:

- बाग की सफाई पर विशेष ध्यान रखें। सभी सड़े-सूखे फलों एवं झुलसी हुई टहनियों को इकट्ठा करके नष्ट कर दें।
- जुलाई माह से फलों की तुड़ाई तक मैंकोजेब (0.25 प्रतिशत) या कैप्टान (0.2 प्रतिशत) का पानी में घोल बनाकर 10–15 दिन के अंतर पर पेड़ों पर छिड़काव करें।
- फलों का भंडारण से पहले ट्राइसोडियम फॉस्फेट (2.0 प्रतिशत) के घोल में डुबाकर ही भंडारित करें।
- फलों का भंडारण शीत गृहों में कम तापमान (0-2° सेल्सियस) पर करें।

अध्याय – 12

गुठलीदार फलों के रोग

(Diseases of stone fruits)

हमारे देश में कई गुठलीदार फल उगाए जाते हैं। जिनमें आड़ू, आलूबुखारा, खुबानी आदि का विशेष महत्व है। भारत में इन फलों की व्यावसायिक बागवानी पहाड़ी क्षेत्रों के अतिरिक्त उत्तरी भारत के मैदानी भागों में भी सफलतापूर्वक की जा रही है। इन फलों में कई रोग लगते हैं। इन फलों में लगने वाले प्रमुख रोगों का विवरण निम्नलिखित है :

1. पर्ण कुंचन (Leaf curl)

लक्षण

इस रोग के लक्षण, पौधों पर बसंत ऋतु प्रारंभ होने पर दिखाई देने लगते हैं। कली से निकलते ही कुछ पत्तियाँ मुड़ी हुई, मोटी, झुर्रीदार, नीचे की तरफ कुंचित तथा विकृत हो जाती हैं। शुरू में रोगी पत्तियों का रंग पीताभ-हरा या पीला होता है, और बाद में पत्तियों के कुछ भाग लाल–बैंगनी रंग के हो जाते हैं। नई शाखाएं फूली हुई एवं विकृत दिखाई देती हैं। रोग की

तीव्रता बढ़ने पर, पत्तियाँ, फूल तथा फल रोगी होने के कारण नीचे गिर जाते हैं। संक्रमित शाखाओं से गोंद जैसा पदार्थ निकलता है। इस रोग का प्रकोप कई वर्षो तक बने रहने से संक्रमित पौधों का जीवन–काल कम हो जाता है।

रोगकारक एवं रोग-अनुकूल परिवेश

यह रोग *टैफरीना डिफॉर्मेन्स (Taphrina deformans)* नामक कवक से होता है। यह रोगकारक पेड़ों की शाखाओं एवं अन्य सतंहों पर तथा मृदा में उत्तरजीवी बना रहता है। बसंत ऋतु प्रारम्भ होने पर, कलियों के फूलते ही रोगकारक सक्रिय हो जाता है और निकलने वाली नई पत्तियों को संक्रमित कर देता है। इस रोग का फैलाव हवा द्वारा होता हैं। इस रोग के विकास के लिए ठंडा तथा नम वातावरण अनुकूल होता है। इस रोग के संक्रमण के लिए वर्षा का होना आवश्यक है। फरवरी के द्वितीय सप्ताह से मार्च में वातावरण का तापमान 15-20° सेल्सियस हो तथा नमी की अधिकता हो तो इस रोग की तीव्रता बढ़ जाती है।

रोग-प्रबंधन

इस रोग का प्रबंधन निम्नलिखित विधियों से किया जा सकता है:

- संक्रमित, गिरी हुई पत्तियों को बाग से निकाल कर नष्ट कर दें तथा बाग की सफाई पर विशेष ध्यान दें।
- कवकनाशी दवाइयाँ जैसे कॉपर ऑक्सीक्लोराइड (0.3 प्रतिशत), कार्बेन्डाजिम (0.1 प्रतिशत), जीरम (0.2 प्रतिशत), क्लोरोथैलोनिल (0.2 प्रतिशत), कैप्टान (0.2 प्रतिशत) का पानी में घोल बनाकर कलियों के फूलने से पहले पौधों पर छिड़काव करें।

2. चूर्णिल आसिता (Powdery mildew)

लक्षण

इस रोग के लक्षण, पेड़ की नई शाखाओं, पत्तियों और फलों पर दिखाई देते हैं। नई पत्तियों पर धूसर सफेद रंग की कवकीय चूर्णिल वृद्धि पूरी तरह से फैल जाती है। आकार बढ़ने के साथ ही पत्तियाँ कुंचित और पतली हो जाती हैं। पुरानी पत्तियों पर धूसर सफेद छोटे–बड़े धब्बे दिखाई देते हैं। हरी नई कलिकाओं पर सफेद रंग के धब्बे पाए जाते हैं। संक्रमित कलियाँ या तो खुलती ही नहीं या असमान रूप से खुलती हैं। खिलते हुए फलों का आकार छोटा हो जाता है तथा फूल बदरंग होकर सूख जाते हैं। फलों पर गोल तथा सफेद धब्बे दिखाई देते हैं जो बाद में, बढ़कर पूरे फल या उसके एक बड़े भाग पर फैल जाते हैं। फल गुलाबी या गहरा–भूरा हो जाते हैं और उनकी बाहरी त्वचा चीमड़ और कड़ी हो जाती है। कभी–कभी फलों में दरारें भी दिखाई देती हैं। फलों में छोटे–छोटे ऊतकक्षयी स्थान बन जाते हैं और पके फल गंदे दिखाई देते हैं जिससे ऐसे फलों का बाजार मूल्य घट जाता है।

रोगकारक एवं रोग-अनुकूल परिवेश

ये रोग *पोडोस्फीरा क्लैन्डेस्टिना (Podosphaera clandestina), पो.ट्राइडेक्टिला (P. tridactyla), पो. ल्यूकोट्राइका (P. leucotricha)* एवं *स्फीरोथिका पैनोसा (Sphaerothica pannosa),* नामक कवकों के द्वारा होता है। ये रोगकारक अविकल्पी परजीवी हैं जो कवकजाल या क्लिस्टोथिसिया के रूप में कलियों पर या परपोषी पौधों के अवशेषों पर उत्तरजीवी बने रहते हैं। ये कवक दूसरे कई परपोषी पौधों जैसे गुलाब पर भी पाए जाते फैलता हैं। ये रोग उष्ण तथा आर्द्र मौसम में अधिक तीव्रता के साथ फैलता है। इस रोग के बीजाणु हवा द्वारा फैलते है। इस

रोग के लिए 21°- 27° सेल्सियस तापमान और 80—90 प्रतिशत नमी अनुकूल होती है। यह रोग पुरानी पत्तियों और फलों पर कम लगता हैं।

रोग-प्रबंधन

इस रोग का प्रबंधन निम्नलिखित प्रकार से किया जा सकता है:

- रोगी पौधों के अवशेषों को इकट्ठा करके नष्ट कर दे तथा बागों की सफाई समय-समय पर करते रहें।
- कवकनाशी दवाएं जैसे कार्बेन्डाजिम (0.1 प्रतिशत), थायोफिनेट मेथिल (0.2 प्रतिशत), ट्राइडिमिकोन (0.1 प्रतिशत), टैब्यूकोनेजोल (0.1 प्रतिशत) का पानी में घोल बनाकर पौधों पर तीन छिड़काव करें। पहला छिड़काव फूल खिलने के पूर्व, दूसरा छिड़काव बाह्य दल गिरने पर तथा अंतिम छिड़काव 15 दिन के बाद करें।

3. भूरी विगलन (Brown rot)

लक्षण

इस रोग के लक्षण फूलों, कलियों एवं फलों पर दिखाई देते हैं। संक्रमित फूलों के पुंकेसर और उनकी पंखुड़ियां सूख जाती हैं तथा वर्तिकाग्र और बाह्यदल मुरझा जाते हैं। इनका रंग धूसर से गाढ़ा—भूरा हो जाता है। इस रोग के प्रभाव से टहनियाँ सूखने लगती हैं। शाखाओं और पतली टहनियों पर लंबे, प्रायः धंसे हुए और भूरे रंग के कैंकर दिखाई देते हैं, जिन से वर्षाकाल में गोंदीय पदार्थ निकलता है। फलों पर छोटे, गोल और भूरे रंग के धब्बे दिखाई देते हैं। ये धब्बे प्रायः कीटों द्वारा बनाए गए घावों के स्थानों से शुरू होकर फलो में पहुंच जाते हैं। इन धब्बों की सतह चिकनी तथा इनके नीचे सड़ा हुआ गूदा मुलायम हो जाता है। अनुकूल मौसम में, संक्रमित भाग राख के रंग जैसा हो जाता है

जिसमें कवक की बढ़वार (कवकजाल तथा बीजाणु) पाई जाती है। फल पूर्णतः सड़ जाने के बाद भी या तो गिर जाते हैं या पेड़ पर ही धीरे–धीरे सूखकर ठोस ममी के समान बन जाते हैं। इस रोग का प्रभाव फलों के भंडारण तथा परिवहन के पर भी होता है।

रोगकारक एवं रोग-अनुकूल परिवेश

यह रोग *मोनिलिनिया फ्रक्टीकोला* (*Monilinia fructicola*) या *मोनिलिनिया फ्रक्टीजीना* (*M. fructigena*) नामक कवकों के द्वारा होता है। ये रोगकारक पेड़ या मृदा में पड़े हुए ममीभूत फलों तथा संक्रमित टहनियों पर उत्तरजीवी रहते है। इस रोग का फैलाव हवा, वर्षा के पानी, पानी के छीटों व कीटों द्वारा होता है। भूरा विगलन के लिए गर्म, नम वातावरण अनुकूल होता है। रोग के संक्रमण के लिए 20° सेल्सियस तापमान तथा पौधे की सतह जहाँ संक्रमण हो उसे कम से कम 3–5 घंटे के लिए गीला रहना अनुकूल होता हैं। संक्रमण के बाद फल में विगलन शीर्घ होता है। फल विगलन की गति तापमान और फल की परिपक्वता पर निर्भर करती हैं जबकि नमी, फल सड़न के लिए उतना महत्वपूर्ण नहीं होता है।

रोग-प्रबंधन

इस रोग का प्रबंधन निम्नलिखित विधियों से किया जा सकता है:

- खेत से संक्रमित पौधों के अवशेषों को निकाल कर नष्ट कर दें, तथा खेत की सफाई पर विशेष ध्यान दें।
- 2–3 साल का फसल-चक्र अपनाएं।
- गर्मियों के दिनों में खेत की गहरी जुताई करके उसे सूखने के लिए खुला छोड़ दें। हरी खाद का अधिक प्रयोग करें।

- ममीभूत फलों तथा रोगी टहनियों को तुरंत काट–छांट करके जला दें।
- बगीचों में वृक्षों के थालों के आस-पास सफाई तथा निराई–गुड़ाई करें।
- पेड़ों की कांट–छांट समय–समय पर करें।
- कवकनाशी दवाएं जैसे कार्बेन्डाजिम (0.1 प्रतिशत), थायोफिनेट मेथिल (0.2 प्रतिशत), या क्लोरोथैलोनिल (0.2 प्रतिशत) का पानी में घोल बनाकर पेड़ों पर चार छिड़काव (कलियों के गुलाबी होने से लेकर बाह्यदल गिरने तक) समय से करने से रोग से बचा जा सकता है।
- फलों की तुड़ाई के कुछ सप्ताह पहले से लेकर तुड़ाई के समय तक कवकनाशी दवा का छिड़काव करने से भंडारण एवं परिवहन के समय यह रोग कम लगता है।
- फलों की तुड़ाई सावधानी से करें ताकि फलों को चोट ना लगे। रोगी फलों की छंटाई करके संक्रमित, अनियमित आकार के फलों को छांट कर अलग करें।
- फलों के भंडारण के पूर्व कार्बेन्डाजिम या थायोफिनेट मेथिल (0.1–0.05 प्रतिशत) का पानी का घोल बनाकर उन्हें उपचारित करें।

4. सर्कोस्पोरा पर्ण–चित्ती (Cercospora leaf spot)

लक्षण

पत्तियों पर गोल, 4–5 मि.मी. व्यास के सूखे, लाल-भूरे रंग के धब्बे प्रारंभ में पत्तियों की दोनों सतहों पर दिखाई देते हैं। इन धब्बों का केंद्रीय भाग हल्का भूरा तथा किनारे का रंग भूरा-लाल होता है। रोग की तीव्रता बढ़ने पर, धब्बों के आकार बढ़ने पर ये आपस में मिल जाते हैं और वहाँ एक बड़ा सूखा क्षेत्र बन जाता

है। संक्रमित भाग सूखकर नीचे गिर जाता है, जिससे पत्तियों में छिद्र बन जाता है। रोग की तीव्रता बढ़ने पर, रोगी पत्तियाँ गिर जाती हैं। अपरिपक्व पत्तियों के गिरने से दूसरी नई पत्तियाँ निकलते ही संक्रमित होकर गिरने लगती हैं और पौधों की बढ़वार रुक जाती है।

रोगकारक एवं रोग-अनुकूल परिवेश

यह रोग *सर्कोस्पोरा रूब्रोटिन्कटा (Cercospora rubrotincta)* नामक कवक के द्वारा होता है। यह रोगकारक नीचे गिरी हुई रोगी पत्तियों पर उत्तरजीवी बना रहता है। इस रोग के विकास के लिए, अधिक आपेक्षिक आर्द्रता, 20°-25° सेल्सियस तापमान, वर्षा और ओस आदि दशाएं आवश्यक होती हैं। इस रोग का फैलाव हवा एवं पानी की बूँदों के द्वारा होता है।

रोग-प्रबंधन

इस रोग का प्रबंधन, निम्नलिखित विधियों से किया जा सकता है :

- बाग से नीचे गिरी हुई संक्रमित पत्तियों को इकट्ठा करके जला कर नष्ट कर दें। बाग की सफाई पर विशेष ध्यान दें।
- रोग के लक्षण दिखाई देने पर थायोबेन्डाजोल (0.1 प्रतिशत), जिनेब, मैंकोजेब, कैप्टान (0.2 – 0.25 प्रतिशत) आदि कवकनाशियों का पानी में घोल बनाकर पेड़ों पर छिड़काव करें। इसके अलावा कवकनाशी का छिड़काव पत्तियां फूटने की अवस्था से शुरू करें तथा एक महीने के अंतराल पर अवश्य दोहराते रहें। पत्तियों के गिरने के बाद भी एक छिड़काव अवश्य करें।

5. शिखर पिटिका (Crown gall)

लक्षण

इस रोग के लक्षण के रूप में पौधों में जमीन की सतह के पास तने और जड़ों पर छोटे, गोल, सफेद, मुलायम, अतिवृद्धि दिखाई देती है। इस अतिवृद्धि के कारण संक्रमित भाग पर अनेक गोल एवं मुलायम पिटिकाएं बन जाती हैं। बाद में इनकी सतह संवलित तथा सफेद रंग या मांसवर्णी होती है जो बाद में गहरे–भूरे या काले रंग की हो जाती है। पिटिकाएं पुरानी होने पर वे घुंडीनुमा या गांठदार तथा कड़ी हो जाती हैं। कुछ पौधों में पिटिकाओं का बाहरी भाग, कॉर्क के समान और भीतरी ऊतक काष्ठीय हो जाता है। एवं पत्तियाँ छोटी तथा पीली हो जाती है। रोगी पौधों क़ी बढ़वार रूक जाती है।

रोगकारक एवं रोग-अनुकूल परिवेश

यह रोग *राइजोबियम रैडियोबेक्टर* (*Rhizobium radiobacter*) नामक जीवाणु से होता है। यह जीवाणु मृदा में कई वर्षो तक उत्तरजीवी बना रहता है। यह जीवाणु केवल घावों द्वारा संक्रमण करने की क्षमता रखता है। गहरे घाव संक्रमण के लिए अधिक सुविधाजनक होते हैं, जिसके कारण बड़े अर्बुद बनते हैं। इस रोग के संक्रमण के लिए नमी का होना, मृदा का क्षारीय होना, जल–निकास का न होना आदि अनुकूल दशाएं होती हैं अबुर्द का निर्माण 20° सेल्सियस तापमान तथा 60 प्रतिशत नमी पर अधिक होता है। जीवाणु पौधों की सतह पर या ऊतकों के अंदर काफी दूर तक फैल जाते हैं। अबुर्द की सतह पर भी जीवाणु कोशिकाएं अत्यधिक संख्या में पाई जाती हैं जो पानी द्वारा दूर तक स्थानांतरित हो जाती हैं । रोग का फैलाव चर्वण द्वारा भी एक पेड़ से दूसरे पेड़ तक हो जाता है।

रोग-प्रबंधन

इस रोग का प्रबंधन निम्नलिखित प्रकार से किया जा सकता है:

- संक्रमित पौधों को पौधशाला से निकाल कर नष्ट कर दें।
- स्वस्थ तथा रोगरहित पौधों को ही लगाने के लिए चुनें।
- पौध तैयार करने के लिए पौधशाला लगाने वाले क्षेत्र में कई वर्षों के फसल–चक्र के अनुसार अनाजवाली फसल या अन्य फसल के साथ अपनाएं।
- कृषि क्रियाएं या गुड़ाई करते समय जड़ों को व सिरों को घाव व खरोंच लगने से बचाएं।
- नई पौध तैयार करने के लिए कलम बाँधने के स्थान पर चश्मा चढ़ाना लाभदायक होता है।

6. जीवाणुज चित्ती (Bacterial spot)

लक्षण

पौधों की पत्तियों, तनों तथा फलों पर रोग के लक्षण दिखाई देते हैं। पत्तियों पर गोल या अनियमित आकार के जलीय, गहरे रंग के धब्बे दिखाई देते हैं, जो बाद में गहरे बैंगनी या भूरे या काले रंग के हो जाते हैं। इन धब्बों के किनारो पर पत्ती का रंग पीला होता है। नम वातावरण में धब्बों के ठीक नीचे, पत्ती की निचली सतह पर जीवाणु के श्राव बीजाणु फैले हुए होते हैं तथा सूखने पर काँच जैसे दिखाई देते हैं। शुष्क मौसम में धब्बों के चारों तरफ दरारें बन जाती हैं। पत्तियों में, संक्रमित ऊतकों के गिर जाने के कारण छोटे बन जाते हैं। रोगी पत्तियाँ पीली पड़कर नीचे गिर जाती हैं। नई शाखाओं पर गहरे बैंगनी रंग के जलीय धब्बे बनते हैं, जो बाद में भूरे या काले, धंसे हुए, गोल या लंबे हो जाते हैं। इस संक्रमण से शीर्षारंभी क्षय रोग के

लक्षण उत्पन्न होते हैं। पुरानी शाखाओं एवं तने पर भी गहरे भूरे रंग के धब्बे पाए जाते हैं। फलों पर, जलीय, छोटे, गोल, हल्के भूरे तथा कुछ दबे हुए धब्बे दिखाई देते हैं तथा बाद में ये धब्बे गहरे या काले रंग के हो जाते हैं। इन धब्बों में दरारें पड़ जाती हैं। नम मौसम में इनमें से एक गोंद–जैसा पदार्थ निकलता है।

रोगकारक एवं रोग-अनुकूल परिवेश

यह रोग *जैन्थोमोनास आर्बोरिकोला* पैथोवार *प्रूनी* (*Xanthomonas arboricola* pv. *pruni*) नामक जीवाणु से होता है। यह जीवाणु संक्रमित टहनियों तथा कलिकाओं पर उत्तरजीवी बना रहता है। इस रोग का फैलाव वर्षा की बूँदों, वायु या कीट द्वारा होता है। नए रोग का आक्रमण बसंत और ग्रीष्म ऋतु में होता हैं। गर्म और नम जलवायु जिसमें बार-बार हल्की वर्षा, तेज हवा, तथा अधिक ओस पड़ने, इस रोग का फैलाव अधिक होता है। इसके अलावा इस रोग का प्रकोप कमजोर पेड़ में अधिक होता है। बलुई या बलुई दोमट मृदा, भारी मृदा की अपेक्षा इस रोग के प्रति अधिक रोगग्राही होती हैं। पेड़ों में अधिक नाइट्रोजन और कम पोटाश रोग–ग्राहिता को बढ़ा देते हैं।

रोग-प्रबंधन

इस रोग का प्रबंधन निम्नलिखित प्रकार से किया जा सकता है:

- पौधशाला और बगीचों की सफाई का विशेष ध्यान रखें। संक्रमित शाखाओं, पत्तियों एवं फलों को बाग से इकट्ठा करके नष्ट कर दें।
- पेड़ों को उचित मात्रा में संतुलित खाद, उर्वरक तथा पानी समय पर दें।
- स्ट्रेप्टोसाइक्लिन (0.01 प्रतिशत) + कॉपर ऑक्सीक्लोराइड (0.3 प्रतिशत) का घोल बनाकर पेड़ों पर 10–15 दिन के अंतराल पर चार छिड़काव करें।

7. जीवाणुज कैंकर (Bacterial canker)

इस रोग को जीवाणुज कैंकर के अलावा गोंदार्ति, शीर्षारंभी क्षय, दलपुट अंगमारी, टहनी अंगमारी, आदि के नामों से भी जाना जाता है। इस रोग के लक्षण तनों और शाखाओं पर कैंकर तथा पत्तियों पर धब्बों के रूप में दिखाई देते हैं। शुरू में, दलपुट के आधार के पास कैंकर बनता है, जो सामान्यतः ऊपर की ओर बढ़ता है। कैंकर वाला भाग गहरा तथा कुछ दबा हुआ होता है जिससे चिपचिपा जीवाणुज स्राव निकलता है, जिसमें जीवाणु के बीजाणु होते हैं जो इस रोग की खास पहचान है। बाद में, कैंकर वाला भाग सूख जाता है। ये कैंकर बढ़कर तने या शाखा को चारों ओर से घेर लेते हैं। स्वस्थ तथा रोगी छाल के बीच का भाग फट जाता है। अंत में संक्रमित शाखा के कैंकर ऊपरी भाग नष्ट हो जाता है। पुष्प अंगमारी रोग के लक्षण आड़ू में अधिक दिखाई देते हैं। पत्तियों पर जलीय, गोल या कोणीय धब्बे हरीमाहीन प्रभामंडल से घिरे दिखाई देते है। बाद में ये धब्बे भूरे हो जाते हैं एवं सूखकर गिर जाते हैं। रोगी फूल, जलीय और भूरे होकर मुरझा जाते हैं और टहनी पर लटके रहते हैं। फलों पर गोल, चपटे, गहरे भूरे या काले, दबे हुए एवं खुरदरे विक्षत बनते हैं। रोगी फलों के नीचे के ऊतक गोंदीय या स्पंजी हो जाते हैं।

रोगकारक एवं रोग-अनुकूल परिवेश

यह रोग *स्यूडोमोनास सिरिंजी* पैथोवार *सिरिंजी (Pseudomonas syringae* pv. *syringae)* नामक जीवाणु द्वारा होता है। इस जीवाणु की एक दूसरी उपजाति मॉरस्प्रनोरम pv. *morsprunorum)* है जो सिर्फ आड़ू को ही प्रभाबित करती है। ये रोगकारक रोगी शाखाओं की छाल, वृक्ष की पत्तियों एवं हरे भागों पर ऊतरजीवी बना रहता है। पौधों में ये जीवाणु तने और शाखाओं पर बनी

दरारों प्रवेश करते हैं। रोगजनक जीव–विष उत्पन्न करते हैं जिनसे रोग के लक्षण उत्पन्न होते हैं। रोग का फैलाव वर्षा के झोंकों या आर्द्र जलवायु में अधिक होता हैं। बसंत ऋतु में तुषारपात होने से घाव हो जाने के कारण, फूलों पर संक्रमण अधिक होता है। कैंकर की वृद्धि के लिए 21 - 24 सेल्सियस तापमान अनुकूल होता है।

रोग-प्रबंधन

इस रोग का प्रबंधन निम्नलिखित प्रकार से किया जा सकता है :

- पौधशाला तथा बाग की हमेशा सफाई रखें तथा संक्रमित पौधों के अवशेषों को वहां से निकाल कर नष्ट कर दें।
- नई पौध तैयार करने के लिए रोग–प्रतिरोधी मूलवृंत तथा स्वस्थ कलिकाएं ही प्रयोग में लाएं।
- नए बाग लगाने के लिए ना पाले से प्रभावित होने वाला क्षेत्र न चूने। जल-निकास का प्रबंधन अच्छा होना चाहिए। अधिक समय तक सूखा नही पड़ता हो।
- स्ट्रेप्टोसाइक्लिन (0.02 प्रतिशत) + कॉपर ऑक्सीक्लोराइड (0.2 प्रतिशत) के मिश्रण का घोल बनाकर पेड़ों एवं नर्सरी के पौधों पर छिड़काव करें। पहला छिड़काव रोग–लक्षण दिखाई देने पर शुरू करें तथा बाद में 10–15 दिन के अंतराल पर चार छिड़काव करें।

अध्याय – 13

स्ट्रॉबरी के रोग (Diseases of strawberry)

विश्व में उगाए जाने वाले फलों में स्ट्रॉबेरी एक मजेदार, मनमोहक एवं नाजुक फल है। विश्व में स्ट्रॉबेरी को मुख्यतः शीतोष्ण जलवायु में ही उगाया जाता है। हमारे देश में भी इस फल को उगाने का क्षेत्रफल धीरे–धीरे बढ़ रहा है। पहाड़ी क्षेत्रों के किसान स्ट्रॉबेरी की फसल के बजाय इसके पौधे तैयार करते हैं क्योंकि इससे उन्हें काफी पैसा मिलता है। स्ट्रॉबेरी में कई रोग लगते हैं। इनकी रोकथाम की विधियों का वर्णन निम्नलिखित हैं:

1. पर्ण चित्ती (Leaf spot)

लक्षण

नई पत्तियों पर छोटे, गोल तथा बैंगनी रंग के धब्बे दिखाई देते हैं। पुराने धब्बे गोल तथा 2.5-3.0 मि.मी. व्यास के हो जाते हैं। धब्बे का केंद्रीय भाग धूसर या सफेद तथा किनारा रक्ताभ–बैंगनी होता है। रोग की तीव्रता बढ़ने पर, कई धब्बे आपस में मिल जाते हैं, और एक बड़ा सा क्षेत्र बन जाता है। पत्तियाँ झुलसी हुई दिखाई देती हैं तथा संक्रमित पौधों की पत्तियाँ गिर जाती हैं। तनों, पर्णवृंत तथा फलवृंत पर लंबे आकार के धब्बे पाए जाते हैं।

फलों पर काले रंग के धब्बे बनते हैं, जिनसे फलों का बाजार भाव घट जाता है।

रोगकारक एवं रोग-अनुकूल परिवेश

यह रोग *रैमुलेरिया टुलास्नेआई (Ramularia tulasnei)* नामक कवक द्वारा होता है। यह कवक संक्रमित पौधों पर एवं मिट्टी में उत्तरजीवी बना रहता है। इस रोग का फैलाव हवा तथा पानी के द्वारा होता है। इस रोग के संक्रमण एवं विकास के लिए ठंड तथा बसंत ऋतु में नमी का अधिक समय तक बना रहना अनुकूल होता है। अप्रेल के माह में लगातार वर्षा होने पर यह रोग काफी उग्र रूप ले लेता है।

रोग-प्रबंधन

इस रोग का प्रबंधन निम्नलिखित उपायों से किया जा सकता है:

- संक्रमित पौधों के अवशेषों को खेत से हटाकर जला दें।
- खेत में जल–निकास की उचित व्यवस्था करें।
- कवकनाशी दवाओं जैसे कैप्टान (0.2 प्रतिशत), जिप्सम (0.2 प्रतिशत), कार्बेन्डाजिम (0.1 प्रतिशत), थायोफिनेट मेथिल (0.2 प्रतिशत), या क्लोरोथैलोनिल (0.2 प्रतिशत) आदि का पानी में घोल बनाकर पौधों पर कम से कम एक छिड़काव पौद लगाने के पूर्व नर्सरी में ही करें।
- रोग–प्रतिरोधी किस्मों का प्रयोग लाभदायक होता है।

2. पर्ण अंगमारी एवं शुष्क वृंत विगलन (Leaf blight and dry penducle rot)

लक्षण

इस रोग के लक्षण पौधों के सभी भागों पर सितंबर से अक्टूबर में दिखाई देते हैं। पत्तियों पर लगभग गोल धब्बे हो जाते हैं जिनका केंद्रीय भाग राख या धूसर रंग का तथा किनारा गहरे बैंगनी रंग का होता है। बाद में, ये धब्बे अंडाकार या अनियमित आकार के हो जाते हैं। पुराने पौधों की पत्तियाँ कुंचित

होकर झड़ जाती हैं। संक्रमित पौधों के उपरिभूस्तारी एवं उनके वृंत गहरे भूरे काले रंग के हो जाते हैं तथा इन पर भी अनियमित आकार के विक्षत (धब्बे) पाए जाते हैं। संक्रमित पौधों की बाह्य वृद्धि कम हो जाती है। नई जड़ें कम विकसित होती हैं तथा पुरानी जड़ों के दूरस्थ भाग चिथड़े जैसे लगते हैं।

रोगकारक एवं रोग-अनुकूल परिवेश

यह रोग *राइजोक्टोनिया बटाटीकोला (Rhizoctonia bataticola)* नामक कवक के द्वारा होता है। यह रोगकारक संक्रमित पौधों के अवशेषों तथा मृदा में उत्तरजीवी बना रहता है। इस रोग का फैलाव सिंचाई के जल एवं मृदा से होता है।

रोग-प्रबंधन

इस रोग का प्रबंधन निम्नलिखित प्रकार से किया जा सकता है:

- खेत से संक्रमित पौधों के अवशेषों को निकाल कर नष्ट कर दें, तथा खेत की सफाई पर विशेष ध्यान दें।
- 2–3 साल का फसल-चक्र अपनाएं।
- गर्मियों के दिनों में खेत की गहरी जुताई करके उसे सूखने के लिए खुला छोड़ दें। हरी खाद का अधिक प्रयोग करें।

3. लाल विगलन (Red rot)

लक्षण

स्ट्राबेरी के इस रोग को लाल विगलन एवं अलग–अलग नामों जैसे मूल विगलन, भूरी एवं काली विगलन एवं फाइटोफ्थोरा रोग से भी जाना जाता है। इस रोग के लक्षण पौधों के वायव भागों पर दिखाई देते हैं। संक्रमित पौधों की बढ़वार रूक जाती है तथा पुरानी पत्तियाँ मुरझाकर सूख जाती हैं तथा नई पत्तियाँ छोटी हो जाती हैं जो छोटे पर्णवृंत पर पाई जाती हैं। पत्तियों का रंग नील हरित दिखाई है और पुरानी पत्तियो में पीले, लाल एवं

भूरे रंग की आभा मिलती है। रोग की तीव्रता बढ़ने पर पौधों पर फल नहीं लगते और यदि लग भी जाएं तो आकार में छोटे रहते हैं और पकने से पहले ही सूख जाते हैं। जल निकास की समुचित व्यवस्था न होने पर, पानी रूके स्थान पर पौधा मर जाता है।

संक्रमित पौधों की रोमिल जड़ें झड़कर नष्ट हो जाती हैं। नई निकलने वाली शिखर जड़ों पर ऊपरी सिरा कला पड़कर मर जाता है। रोग का आक्रमण मोटी जड़ों में ऊपर की ओर केन्द्रीय रंभ में बढ़ता है। रंभ के संक्रमित होने पर ऊतकों का रंग रक्ताभ भूरा हो जाता है। रोगग्रस्त रंभ का यह लाल एवं भूरा रंग चारों ओर के स्वस्थ सफेद वल्कुट–ऊतक से अलग पहचाना जा सकता है। रोगी जड़ों के नीचे के सारे भाग भूरे या काले रंग के हो जाते हैं।

रोगकारक एवं रोग-अनुकूल परिवेश

यह रोग *फाइटोफ्थोरा फ्रगेरी (Phytophthora fragariae)* नामक कवक के द्वारा होता है। यह रोगकारक संक्रमित पौधों की जड़ों तथा मिट्ठी में उत्तरजीवी बना रहता है। इस कवक का विकास 15°-20° सेल्सियस तापमान पर अच्छा होता है। इस रोग का फैलाव पौधे से पौधे तथा एवं रोगी जड़ों से स्वस्थ जड़ों तक संचरण चल बीजाणुओं के द्वारा होता है। एक खेत से दूसरे खेत या क्षेत्र में रोग का प्रवेश संक्रमित उपरिभूस्तारियों के लगाने से होता है। अधिक वर्षा, बार–बार सिंचाई करना या पानी रूकने की दशा में इस रोग की तीव्रता बढ़ जाती है।

रोग-प्रबंधन

इस रोग का प्रबंधन निम्नलिखित विधियों से किया जा सकता है :

- स्वस्थ तथा रोग–रहित खेतों से प्राप्त उपरिभूस्तारियों को ही लगाएं।

- खेत में जल–निकास का समुचित प्रबंधन करें।
- संक्रमित पौधों के अवशेषों को खेत से निकालकर नष्ट कर दें। खेत की सफाई रखें।
- तीन से चार वर्ष का फसल-चक्र अपनाएं।
- गर्मी के दिनों में खेत की जुताई करके उसे खुला छोड़ दें। सौर्यन (सौरीकरण) द्वारा मृदा का उपचार करने से लाभ होता है।
- रोग–प्रतिरोधी किस्मों को लगाएं।

4. धूसर फफूँद फल विगलन (Grey mould fruit rot)

लक्षण

इस रोग का संक्रमण फल–विकास की किसी भी अवस्था में हो सकता है। फलों के अलावा इस रोग के लक्षण फूल, बाह्य दलपुंज, फलवृंत एवं पत्तियों पर भी पाए जाते है। फल पर हल्के भूरे रंग का मुलायम क्षेत्र बन जाता हैं। बाद में यह विगलन शीघ्र ही पूरे फल पर फैल जाता है। फल सूखने लगता है तथा बाद में फल कठोर हो जाते हैं। संक्रमित भाग पर हरे या धूसर रंग के रोगकारक कवक की वृद्धि दिखाई देती है।

रोगकारक एवं रोग-अनुकूल परिवेश

यह रोग *बोट्राइटिस सिनेरिया (Botrytis cinerea)* कवक के द्वारा होता है। यह रोगकारक अन्य कई परपोषी पौधों पर भी पाया जाता है। यह कवक मृत पौधों के अवशेषों पर उत्तरजीवी बना रहता है। अनुकूल वातावरण में, यह पहले स्ट्रॉबेरी के पौधों पर मृतजीवी की तरह रहता है। बाद में यह फलों के विभिन्न भागों एवं फूलों पर परजीवी हो जाता है। इस रोग का फैलाव हवा, वर्षा और अन्य साधनों – जैसे फल तोड़ने वाले मनुष्यों या उपकरणों द्वारा भी होता है। अधिक नम वातावरण, इस रोग के प्रकोप के लिए उपयुक्त है। कई दिनों तक लगातार वर्षा होने पर इस रोग का प्रकोप बढ़ जाता है। रोग के विकास के लिए

15°-20° सेल्सियस तापमान तथा 90 प्रतिशत से अधिक आपेक्षित आर्द्रता अनुकूलतम होती है। तापमान के 25° से अधिक तथा 15° सेल्सियस से कम एवं नम वातावरण होने पर, फूल और फलों पर रोग का प्रभाव कम हो जाता है।

रोग-प्रबंधन

इस रोग का प्रबंधन निम्नलिख़ित विधियों से किया जा सकता है:–

- खेत से संक्रमित पौधों के अवशेषों को निकाल कर नष्ट कर दें।
- खेत में जल–निकास का उचित प्रबंधन करें।
- पौधों के बीच में उचित दूरी रखें जिससे वायु का प्रवाह बना रहे।
- उन किस्मों का चयन करना चाहिए जिनकी बढ़वार ऊपर की ओर व सीधी हो तथा फल पौधे के वितान के बाहर लगते हों।
- पौधों की पंक्तियों के बीच सूखी घास, पुआल या भूसा आदि की परत बिछा देने से फलों की सड़न कम हो जाती है।
- संक्रमित फलों को भंडारण व परिवहन से पहले ही छांट लें, जिससे स्वस्थ फल संक्रमित न हो।
- केप्टान (0.2 प्रतिशत) या थायोफिनेट मेथिल (0.2 प्रतिशत) का घोल बना कर पहला छिड़काव पुष्पपुंज के खुलने के समय तथा उसके बाद दो अन्य छिड़काव फल के रंग आने तक करने से लाभ होता है।
- फलों का भंडारण 5° सेल्सियस या उससे कम तापमान पर करना चाहिए।

5. राइजोपस फल विगलन (Rhizopus fruit rot)

लक्षण

इस रोग से संक्रमित फल मुलायम और जलीय तथा हल्के

भूरे रंग के होकर फट जाते हैं। रोग की व्यापकता बढ़ने पर उनमें से रस निकलने लगता है। पेटियों या पनेट्स में रखे हुए सड़े फलों के ऊपर सफेद, उभरे हुए कवकजाल के तंतु पाए जाते हैं जो पूरे फल को ढ़के रहते हैं। इन सफेद तंतुओं पर काले शीर्ष वाले बीजाणुधानीधरों एवं बीजाणुओं के बनने पर यह कवक-वृद्धि प्रायः काली दिखाई देती है।

रोगकारक एवं रोग-अनुकूल परिवेश

यह रोग *राइजोपस निग्रीकैंस (Rhizopus nigricans)* नामक कवक से होता है। यह एक मृतजीवी कवक है, जो मृदा में प्रायः रोगग्रस्त पौधों के अवशेषों तथा अन्य जैव पदार्थों पर कवकजाल के रूप में पाया जाता हैं। सड़ने–योग्य पदार्थ पर इस रोगकारक की वृद्धि होती रहती है। आर्द्र एवं उष्ण मौसम में इसकी वृद्धि अधिक होती है। फलों पर बने घाव व खरोंच द्वारा ही कवक उनमें प्रवेश करते हैं तथा फल को संक्रमित कर देते हैं।

रोग-प्रबंधन

इस रोग का प्रबंधन निम्नलिखित विधियों से किया जा सकता है:

- संक्रमित फलों को भंडारण व परिवहन से पहले ही छांटकर अलग कर दें।
- अधिक पके हुए फलों का भंडारण या उनकी डिब्बाबंदी न करें।
- परिवहन से पहले फलों को 7°-10° सेल्सियस तापमान पर ठंडा करें। परिवहन के समय भी वाहनों का तापमान 10° सेल्सियस से अधिक न हो। इससे इस रोग की संभावना बहुत कम हो जाती है।

खंड – 2

सब्जियों के रोग

(Diseases of Vegetables)

अध्याय – 14

आलू के रोग (Diseases of potato)

आलू (*सोलेनम ट्युबेरोसम* एल. – *Solanum tuberosum* L.) सब्जियों वाली महत्वपूर्ण फसल है। भारत में इस फसल की खेती लगभग एक मिलियन हैक्टेयर में की जाती है जिसका उत्पादल 3.6 मिलियन टन होता है। भारत में आलू मुख्यत: उत्तर प्रदेश, पश्चिमी बंगाल, बिहार, असम, हिमाचल प्रदेश, मध्य प्रदेश, पंजाब तथा कर्नाटक राज्यों में उगाया जाता है। आलू मुख्यत: कार्बोहाइड्रेट का प्रमुख स्रोत है, जिसमें स्टार्च की मात्रा अधिक होती है। इसके अलावा, इसमें विटामिनों एवं खनिज लवण, कैरोटिनाइड एवं प्राकृतिक फीनोल कम मात्रा में पाए जाते हैं। आलू के उत्पादन को प्रभावित करने वाले बहुत से कारकों में, रोगों का योगदान अत्यधिक है, जो कि कवकों, जीवाणुओं, विषाणुओं तथा सूत्रकृमियों के द्वारा होते हैं। इस अध्याय में आलू के प्रमुख रोगों के लक्षण, रोगकारकों, रोग-अनुकूल परिवेश तथा प्रभावी प्रबंधन का वर्णन संक्षेप में किया गया है।

1. पछेती अंगमारी (Late blight)

लक्षण

इस रोग के लक्षण पत्तियों, तनों तथा कंदों पर दिखाई देते हैं। प्रारंभ में पत्तियों के किनारों पर छोटी जलीय विक्षतियां दिखाई देती है जो बाद में भूरी, बैंगनी, काली ऊतकक्षयी विक्षति में बदल जाती हैं। सुबह के समय पत्तियों की निचली सतह पर रोगकारक की सफेद मृदुरोमिल वृद्धि दिखाई देती है, जिस पर बीजाणुधर तथा बीजाणुओं के झुंड विक्षति के किनारों पर देखे जा सकते हैं। अनुकूल वातावरण मिलने पर पूरी फसल 3–4 दिनों में ही झुलस जाती हैं। तने तथा पर्णवृंतों पर हल्की भूरी से गहरी भूरी विक्षतियां दिखाई देती हैं, जो लंबी होकर प्रभावित भाग को घेर लेती हैं जिससे पौधा कमजोर होकर गिर जाता है और विक्षति से पौधे का ऊपरी भाग मर जाता है। कंद संक्रमित होकर अनयिमित छोटे–बड़े, हल्के, धंसे हुए भूरे बैंगनी दिखता है जो फैलकर कंद के अंदरूनी ऊतकों को प्रभावित करता है। रोगी कंद खेत या भंडार में सड़ने लगते हैं।

रोगकारक एवं रोग-अनुकूल परिवेश

पछेती अंगमारी रोग *फाइटोफ्थोरा इन्फेस्टैन्स (Phytophthora infestans)* नामक कवक से होता है। यह कवक विषमजालिक है। लैगिक प्रजनन के लिए संगम के दो प्रकार $ए_1$ और $ए_2$ की आवश्यकता होती है। भारत में $ए_1$ संगम प्रकार की बहुतायत पाई जाती है, जबकि $ए_2$ संगम प्रकार शिमला में पाया गया है। जब $ए_1$ और $ए_2$ संगम प्रकार एक दूसरे के नजदीक आते हैं तो एन्थीरिडिया और ओगोनिया पैदा होते हैं। यह रोगकारक संक्रमित कंदों में सुसुप्त कवकजाल के रूप में भंडारण गृह में रहता है, जो इस रोग के प्राथमिक स्रोत हैं। आलू के स्वतः उगे पौधे तथा

संक्रमित छोटे आलू भी इस रोग को फैलाने में सहायता करते हैं। द्वितक संक्रमण के बहुत चक्र होते हैं और एक चक्र पूरा करने के लिए 5-7 दिनों की आवश्यकता होती है। यदि तापमान 10° सेल्सियस से कम हो तो एक चक्र को पूरा करने के लिए 10-12 दिनों का समय लगता है। बीजाणुओं के अंकुरण तथा संक्रमण के लिए पत्तियों को कम से कम 4 घंटे तक भीगा होना चाहिए। बीजाणु पत्तियों पर गिरते हैं और स्वतंत्र जल की उपस्थिति में जीव बीजाणु पैदा होते हैं जो जल्दी से पुटीभूत होकर अंकुरित होते हैं और रंध्र द्वारा स्वस्थ पौधों को संक्रमित करते हैं।

रोग-प्रबंधन

इस रोग के प्रबधन के लिए निम्नलिखित उपाय करने से रोग के प्रभाव को कम किया जा सकता है:

- रोगी पौधों के अवशेषों को खेत से निकाल कर नष्ट कर दें।
- बुआई के लिए स्वस्थ एवं प्रमाणित कंदों का प्रयोग करें।
- आलू की खुदाई बिलंब से करें।
- रोग–प्रतिरोधी किस्मों जैसे कुफरी बादशाह, कुफरी जवाहर, कुफरी गिरिराज, चिप्सोना–1 और चिप्सोना–2 आदि को लगाएं।
- कवकनाशी दवाओं जैसे मैंकोजेब या रिडोमिल एम. जेड. – 72 की 2.5 ग्राम/लिटर की दर से छिड़काव रोग लगने से संभावित समय से एक सप्ताह पूर्व पौधों पर करें। कल्ला अंकुरित कंदों को मेटालेक्सिल के 0.1 प्रतिशत घोल में 30 मिनट तक डुबाएं। साथ ही

अन्य कवकनाशियों जैसे ओफुरेस + मैंकोजेब, सीड्रमोक्सानील + मैंकोजेब, डाइमेथोमार्क + क्लोरोथैलोनिल डाइमेथोमार्क + मैंकोजेब, ओक्साडिक्सिल + मैंकोजेब, ऑक्साडिक्सिल + कॉपर ऑक्सीक्लोराइड, बेनालेक्सिल + मैंकोजेब, एजोक्सीस्ट्रोबीन + मैंकोजेब, फेलामिडान + मैंकोजेब, फेमोक्साडान + मैंकोजेब, आइप्रोवेलीकार्ब + मैंकोजेब तथा मेफेनोक्साम + मैंकोजेब आदि का मिश्रित रूप में छिड़काव करें।

2. अगेती अंगमारी (Early blight)

लक्षण

प्रारंभ में पत्तियों पर छोटे–छोटे बिखरे हुए, हल्के–भूरे रंग के धब्बे बनते हैं जो बाद में बढ़कर गोलाकार, अंडाकार या कोणीय हो जाते हैं। पुराने धब्बों के मध्य में चांदमारी जैसा निशान दिखाई देता है। रोगी पत्तियां पीली पड़ने लगती हैं और अंत में मुरझाकर गिर जाती हैं। कंदो का आकार छोटा हो जाता है तथा रोगी कंद सड़ने लगते हैं जिससे फसल की उपज काफी प्रभावित होती है। कंदों पर गहरे रंग के धंसे हुए गोल से अनियमित आकार की विक्षतियां पाई जाती हैं जो कि उठी हुई किनारियों से घिरी होती हैं एवं सूखकर ये पपड़ी की तरह दिखाई देती हैं।

रोगकारक एवं रोग-अनुकूल परिवेश

यह रोग *एल्टरनेरिया सोलेनी (Alternaria solani)* नामक कवक से होता है। संक्रमित पौधों के अवशेषों में रोगकारक जीवित रहता है तथा निवेश द्रव्य के प्राथमिक संरोप का स्रोत है। रोगकारक कोनिडिया या कवकजाल के रूप में मृदा के अंदर सूखी संक्रमित पत्तियों पर रहते हैं और नए कोनिडियाधर तथा

कोनिडियम पैदा करते हैं। ये रोगकारक दूसरे पोषक पौधों जैसे टमाटर तथा शिमला मिर्च आदि पर जीवित रहते हैं। प्रारंभ में संक्रमण पौधों की निचली पत्तियों पर होता है। वहां से कोनिडिया हवा, जल तथा वर्षा के छीटों से फैलकर दूसरे पौधों या पत्तियों पर पहुचते हैं और द्वितीयक संक्रमण करके रोग को फैलाते हैं। कोनिडिया अंकुरित होकर सीधे या रंध्र द्वारा पौधों में प्रवेश करते हैं। संक्रमण के 3–4 दिनों बाद गहरे भूरे धब्बे दिखाई देते हैं। गर्म एवं आर्द्र जलवायु के साथ बार–बार बरसात के बाद सूखा इस रोग की वृद्धि के लिए अनुकूल दशाएं होती हैं। रोग की विकास के लिए 26°-28° सेल्सियस तापमान के साथ 70–80 प्रतिशत सापेक्षिक आर्द्रता अनुकूल होती है।

रोग-प्रबंधन

इस रोग के नियंत्रण के लिए निम्नलिखित उपाय करने चाहिए:

- फसल के अवशेषों को खेत से इकट्ठा करके नष्ट कर दें।
- संतुलित खादों एवं उर्वरकों का प्रयोग करें।
- कंदों को खेत में ही परिपक्व होने के लिए छोड़ दें। खुदाई के समय कंदों को चोट से बचाएं।
- कम से कम दो वर्ष का फसल-चक्र अपनाएं।
- रोग प्रतिरोधी किस्मों जैसे कुफरी नवीन, कुफरी सिंदूरी तथा कुफरी जीवन की बुआई करें।
- कवकनाशी दवाओं जैसे मैंकाजेब, जिनेव या क्लोरोथैलोनिल (2.5 ग्राम/लिटर पानी) का पानी में

घोल बनाकर छिड़काव करें। अन्य नए विकसित कवकनाशियों जैसे टेबुकोनाज़ाल, एजोक्सीस्ट्रोवीन का भी प्रयोग छिड़काव के लिए किया जा सकता है।

3. किणक या मस्सा रोग (Wart disease)

लक्षण

जड़ को छोड़कर पौधे के मृदा के नीचे का भाग जैसे कंद, तना और भूस्तारी किणक या मस्सा रोग से प्रभावित होते हैं। संक्रमित भाग में पौधों की कोशिकाएं जल्दी से बढ़ती हैं और अतिवृद्धि के कारण ऊतक का झुंड पैदा करती हैं, जिसके परिणामस्वरूप कंदों पर मस्से की तरह के लक्षण दिखाई देते हैं। ये मस्से सामान्यतः मुलायम, गूदेदार, गोलाकार तथा कंद के रंग के होते हैं। सूर्य की रोशनी में इनका रंग हरा हो जाता है। कभी–कभी मस्से पूरे कंद को ढक लेते हैं। जब कभी दूसरे सूक्ष्मजीव इन मस्सा ऊतकों पर आक्रमण करते हैं तो वहां अपघटन होने लगता है।

रोगकारक एवं रोग-अनुकूल परिवेश

आलू का मस्सा रोग, *सिंकाइट्रियम एन्डोबायोटिकम (Synchytrium endobiotichum)* नामक कवक द्वारा होता है। मस्से के विच्छेदन से रोगकारक मृदा में सुप्त बीजाणु छोड़ता है और कई सालों तक सुसुप्तावस्था में पड़ा रहता है। अगले बसंत ऋतु में, जब मृदा वर्षा या सिंचाई से नम हो जाती है, तो सुप्त बीजाणु अंकुरित होते हैं और ताजा संक्रमण करते हैं। सुप्त बीजाणु कितने समय तक मृदा में जीवित रहेंगे, यह मृदा के प्रकार, फसल–चक्र, मृदा की पी. एच एवं नमी तथा संक्रमण प्रक्रिया आदि द्वारा प्रभावित होता है। सुप्त बीजाणु तथा बीजाणुधानी

के अंकुरण के लिए स्वतंत्र जल की सतह की आवश्यकता होती है। इस रोग के संक्रमण के लिए 21° सेल्सियस तापमान अनुकूल होता है। तथापि संक्रमण 10-24° सेल्सियस पर भी होता है। हल्की अम्लीय मृदा में रोग का संक्रमण काफी गंभीर होता है।

रोग-प्रबंधन

मृदा-जनित आलू के मस्सा रोग का नियंत्रण करना कठिन होता है, फिर भी निम्नलिखित विधियों से इसका प्रबंधन किया जा सकता है:

- पूर्णतः घरेलू संगरोधी किस्मों का चयन करें।
- 8-10 वर्ष का फसल-चक्र अपनाना चाहिए।
- रोगरोधी किस्मों जैसे कुफरी ज्योति, कुफरी शेरपा, कुफरी जीवन तथा कुफरी मुथुन को लगाएं।

4. भूरा विगलन या जीवाणुज म्लानि (Brown rot or Bacterial wilt)

लक्षण

रोगी पौधा अचानक मुरझाकर एक या दो दिन में सूख जाता है। रोगी पौधे के तने के भीतरी भाग भूरे रंग के दिखाई देते हैं। बहुत से संक्रमित पौधे के तनों में मृदा की सतह पर विगलन हो जाता है। कंदों को काटने पर संवहनी छल्ले स्पष्ट भूरे रंग के हो जाते हैं। इस कटे हुए भाग को थोड़ा दबाने पर संवहनी छल्ले से धूसर सफेद जीवाणुविक अवपंक बाहर निकलता है जो इस रोग की मुख्य पहचान है। यदि रोगी पौधों के तनों एवं कंदों को काटकर गिलास के साफ पानी में कुछ मिनट के लिए छोड़ दिया

जाए तो उसमें से सफेद या मटमैला दूधिया चिपचिपा पदार्थ निकलता है जिससे गिलास का पानी दूधिया हो जाता है जिसमें इस रोग के जीवाणु होते हैं।

रोगकारक एवं रोग-अनुकूल परिवेश

यह रोग जीवाणु *रालस्टोनिया सोलेनेसियेरम रेस* 1 और 3 *(Ralstonia solanacearum race 1 & 3)* द्वारा होता है। *रा. सोलेनेसियेरम* मृदा एवं कंद जनित रोग है। यह रोगकारक संक्रमित फसल अवशेषों, कंदों, जंगली पोषक पौधों तथा खरपतवरों पर जीवित रहता है। संक्रमित मृदा तथा बीज-कंद इस रोग के प्राथमिक संरोप के प्रमुख स्रोत हैं। रोगकारक 450 से अधिक पौधों की जातियों को संक्रमित करता है। यह आलू में 8 महीने तक 10-15° सेल्सियस पर जीवित रह सकता है। यह टमाटर, बैंगन एवं मिर्च के पौधों में भी जीवित रह सकता है। अधिक तापमान (28-30° सेल्सियस) तथा मृदा में नमी होने पर यह रोग अधिक फैलता है तथा जुलाई–अगस्त में अधिक होता है।

रोग-प्रबंधन

इस रोग का प्रबंधन करना बहुत कठिन होता है। फिर भी निम्नलिखित विधियों से इस रोग के दुष्प्रभाव को कम किया जा सकता है:

- बीज-कंदों का चुनाव उन क्षेत्रों से करें जहां इस रोग का संक्रमण न हो।
- ब्लीचिंग पाउडर का 12–15 किग्रा./हेक्टेयर की दर से मृदा में प्रयोग करने पर रोग कम लगता है।
- बीज-कंदो का उपचार उन्हें स्ट्रेप्टोसाइक्लिन (0.02 प्रतिशत) के घोल में 3. मिनट तक डुबाकर करें।

- खेत में जल–निकास का उचित प्रबंध करें।
- दो वर्ष का फसल-चक्र (गेहूं-मक्का या गेहूं-खाली) खेत को अपनाने से लाभ होता है।

5. काली मेखला एवं जीवाणुज मृदु विगलन (Black leg and bacterial soft rot)

लक्षण

यह रोग आलू के पौधों को किसी भी अवस्था में संक्रमित कर सकता है। काली मेखला के लक्षण खड़ी फसल में दिखाई देते हैं। जहां बीज कंद से जुड़ा होता है वहां पर काले विक्षति दिखाई देते हैं। यह विक्षति थोड़े या पूरे तनों पर फैल जाती है। रोग से प्रभावित पौधे बौने तथा सीधे होते हैं। पत्तियां मुड़कर पीली–हरी हो जाती हैं। यदि तापमान एवं आर्द्रता अधिक हो तो भूमिगत कंदों में मृदु विगलन अधिक होता है। कंदों का भीतरी भाग सड़कर मुलायम हो जाता है। सड़े हुए आलू से गंध भी आने लगती है। यदि रोगी पौधे के कंद को काटकर थोड़े समय के लिए रख दिया जाए तो, सड़ा हुआ भाग पहले गुलाबी लाल फिर भूरा लाल और अंत में भूरा काला हो जाता है।

रोगकारक एवं रोग-अनुकूल परिवेश

यह रोग दो प्रकार के जीवाणुओं, *इर्वीनिया कैरोटोवोरा उपजाति कैरोटोवोरा* तथा *ई0 कैरोटोवोरा* उपजाति *एट्रोसेप्टिका* (*Erwinia carotovora* subsp. *corotovora* and *E. carotovora* subsp. *atroseptica*) के द्वारा होता है। भंडारण के समय *इ. क्राइसेन्थेमी (E. chrysanthemi)* नामक जीवाणु भी मृदु विगलन के लिए उत्तरदायी होता है। रोगकारक जीवाणु कंदों के वाररंध्रों में रहता है। इसके अतिरिक्त यह जीवाणु मृतजीवी रूप

में पौधों के अवशेषों तथा खुदाई के बाद खेत में छोड़े गए संक्रमित कंदों पर जीवित रहता है। जीवाणु गर्म वातावरण की अपेक्षा नम एवं ठंडे वातावरण में अधिक समय तक जीवित रहता है। ये जीवाणु कुछ खरपतवारों के मूल परिवेशी होते हैं। प्रसुप्त संक्रमित कंद या मृदा इस जीवाणु के फैलने में सहायता करते हैं और पौधे को संक्रमित करते हैं। ये जीवाणु प्ररोह को संक्रमित करते हैं। यदि ये संवहनी ऊतक में पहुंचते हैं तो तने एवं संतति कंदों को संक्रमित करते हैं। ऐसे संक्रमित कंद भंडारण के समय मृदु विगलन के प्रमुख स्रोत होते हैं। बीज-कंदों में संक्रमण के लिए नमीयुक्त मृदा तथा 18-19° सेल्सियस से कम तापमान अनुकूल होता है।

रोग-प्रबंधन

इस रोग का प्रबंधन निम्नलिखित उपायों से किया जा सकता है:

- बोआई के लिए स्वस्थ एवं प्रमाणित आलू के बीजों का प्रयोग करें।
- बीज-कंदों का रोपण कम गहराई पर करें।
- नाइट्रोजन उर्वरकों की उचित मात्रा का प्रयोग करें।
- विभिन्न कर्षण क्रियाओं के दौरान कंदों को घाव से बचाएं।
- भंडारण के पहले रोगी कंदों को छांटकर अलग कर दें।
- खोदे गए कंदों को खेत में लगभग 16° सेल्सियस तापमान तथा 80 प्रतिशत आपेक्षिक आर्द्रता पर 10 दिन तक सुखाएं।

- मृदा में ब्लीचिंग पाउडर (12 - 15 किग्रा./हेक्टेयर की दर से) मिलाने से रोग कम लगता है।

6. मोजेक (Mosaic)

लक्षण

इस रोग के कारण आलू की पत्तियां चितकबरी तथा छोटी हो जाती हैं। पत्तियों पर हल्के तथा गहरे हरे चकते दिखाई देते हैं तथा प्रभावित पौधे छोटे रह जाते है। पोटेटो वायरस – 7 के संक्रमण से शिराएं ऊतकक्षयी हो जाती हैं और पत्तियां नीचे की तरफ मुड जाती हैं।

रोगकारक

मोजेक रोग 'पोटेटो वायरस एक्स' तथा 'पोटेटो वायरस वाई' रोगकारकों के द्वारा होता है। पोटेटो वायरस वाई का संचरण माहू *(माइजस परसीकी, एफिस गोसीपी)* कीटों से होता है।

रोग-प्रबंधन

इस रोग का प्रबधंन बहुत कठिन होता है। फिर भी रोगी पौधों को खेत से निकालकर नष्ट करने से रोग के प्रभाव को कम किया जा सकता है।

7. कृष्ण क्रोड (Black heart)

लक्षण

आलू के कंद को काटने पर उसका मध्य भाग गाढ़ा भूरा, बैंगनी या काला दिखाई देता है जबकि स्वस्थ कंद का मध्य भाग सफेद या गुलाबी होता है। रोग की तीव्रता बढ़ने पर कंद के

भीतरी ऊतकों के सूखने से भीतर की तरफ एक गड्ढा सा बन जाता है। आलू के बड़े कंदों में यह रोग अधिक लगता है।

रोगकारक

यह रोग आलू में किसी जीव से न होकर भंडारण में उच्च तापमान तथा ऑक्सीजन की कमी के कारण होता है।

रोग-प्रबंधन

भंडारण के दौरान तापमान एवं आक्सीजन को नियंत्रित करके इस रोग को कम किया जा सकता है।

अध्याय – 15

टमाटर के रोग (Diseases of tomato)

टमाटर *(सोलेनम लाइकोपर्सिकम* मिल - *Solanum lycopersicium* Mill) पूरे विश्व में उगाई जाने वाली सब्जी की फसल है। इसके फल को सलाद, चटनी, सूप, सब्जियों तथा अचार के रूप में प्रयोग में लाया जाता है। इसका पका हुआ फल एस्कार्बिक अम्ल (14 मिग्रा./100 फल) तथा खनिज लवणों का अच्छा स्रोत है। टमाटर में कैरोटीन तथा लाइकोपीन पाया जाता है जो प्राकृतिक प्रतिआक्सीकारक का काम करता है। भारत का टमाटर उत्पादन में विश्व में चीन तथा अमेरिका के बाद तीसरा स्थान है जो लगभग 11.97 मिलियन टन है। मैदानी क्षेत्रों में इसकी खेती अगस्त से अप्रैल तक, पहाड़ी क्षेत्रों जैसे हिमाचल प्रदेश, उत्तराखंड तथा कर्नाटक के पहाड़ी भागों में गर्मियों तथा वर्षा ऋतु में की जाती है, जिससे भारत में हमेशा ताजे फल की उपलब्धता पूरे साल बनी रहती है। अधिक तापमान एवं नमी की उपस्थिति में, इस फसल में बहुत से रोग कवकों, जीवाणुओं, विषाणुओं एवं सूत्रकृमियों के द्वारा होते है, जो फसल के उत्पादन को बहुत गंभीर रूप से प्रभावित करते हैं। इस अध्याय में प्रमुख

रोगों के लक्षण, रोगकारक, अनुकूल पर्यावरण एवं समुचित रोग-प्रबंधन के विषय में बताया गया है।

1. आर्द्रपतन (Damping off)

लक्षण

आर्द्र पतन रोग टमाटर के पौधों में दो अवस्थाओं में पाया जाता है: (1) पौधों के मृदा से बाहर निकलने के पहले, तथा (2) पौधों को भूमि से बाहर निकलने के बाद। रोग की प्रथम अवस्था में, पौद भूमि से ऊपर नहीं निकलती है, क्योंकि बीज या तो सड़ जाता है या अंकुरित होने के बाद भूमि से निकलने के पहले सड़ जाता है। आर्द्रपतन की द्वितीय अवस्था में, संक्रमित भूमि से ऊपर आने पर, पौद किसी भी समय में संक्रमित होकर लुढ़क जाती है। संक्रमित भाग के ऊतक जलीय एवं मुलायम हो जाते हैं। तने संक्रमित जगह से सिकुड़ जाते हैं, जिससे पौधा गिर जाता है। तने का वह भाग जो भूमि के निकट रहता है, जलीय तथा मुलायम हो जाता है, जिसके फलस्वरूप निर्बल स्तंभ, पौधे का भार वहन नहीं कर पाते और पौधा उसी स्थान से मुड़कर धराशायी हो जाता हैं।

रोगकारक एवं रोग-अनुकूल परिवेश

टमाटर में आर्द्रपतन रोग बहुत से कवकों के द्वारा होता है जिसमें *पीथियम* जातियां *(Pythium* sp.*)* *फाइटोपथोरा जाति* *(phytophthora* sp.*)* *राइजोक्टोनिया* जातियां *(Rhizoctonia* spp.*)* *स्केलेरोशियम* जाति *(Seleroltium* spp.*)*, *फ्यूजेरियम* जातियां *(Fusarium* spp.*)* *फोमा* प्रजातियां *(Foma* spp.*)*, *आल्टरनेरिया* जाति *(Alternaria* spp.*)* आदि हैं। ये सभी कवक बीज–जनित या मृदा-जनित होते है। इनमें से पीथियम जाति प्रायः इस रोग को पैदा करती हैं तथा ये जातियां मृदा में कवकजाल या

निषिक्तांडों के रूप में जीवित रहती हैं। अनुकूल परिस्थिति होने पर अंकुरित होती हैं और जीवबीजणुधानी बनाती हैं। ये जीवबीजाणधानी जीवबीजाणु पैदा करते है। कुछ समय तक जल में तैरते हैं तथा बाद में फ्लेजला जीव बीजाणु से अलग हो जाता है। इस प्रकार बीजाणु पौद को मृदा सतह के पास या पौद के मृदा से लगे हुए भाग में संक्रमित करते हैं। कवकजाल रोगी ऊतकों में बढ़ता है और रोग के लक्षण दिखाई देने पर पौद का ऊपरी भाग भूमि पर गिर जाता है। अनुकूल परिस्थिति में बहुत से बीजाणु बीजाणुधानी से पैदा होते है तथा ये बीजाणु, पौद में द्वितीयक संक्रमण करते हैं। जब वातावरण प्रतिकूल होता है तो यह कवक लैंगिक प्रजनन के द्वारा निषिक्तांडों का निर्माण करता है, जो प्रतिकूल परिस्थिति में मृदा में जीवित रहता है।

राइजोक्टोनिया सोलेनी मृदा में स्कलेरोशिया के रूप में कई सालों तक उत्तरजीवी बना रहता है। *फ्युजेरियम* जातियां मृदा-जीवन होती हैं तथा यहां पर यह कवक क्लोइडोस्पार के रूप में जीवित शेष रहता है। अनुकूल परिस्थिति होने पर क्लेमाइडोस्पोर अंकुरित होते हैं और सूक्ष्म तथा बृहत् कोनिडियम पैदा होते हैं। इस प्रकार के कोनिडियम अंकुरित होकर जनन–नलिका बनाते हैं और नई पौद में संक्रमण करते हैं। ये रोगकारक मृदा में एक या एक से अधिक वर्ष तक जीवित रहते हैं। मृदा नमी लगभग संतृप्त अवस्था में होने पर कवक के कवकजाल की वृद्धि और अलैंगिक प्रजनन को बढ़ाते है। पौद में चोट लगने पर संक्रमण होने का अवसर बढ़ जाता है। अधिक मृदा नमी, पीएच 6.0 और भारी मृदा इस रोग के बढ़ने में सहायता करती है। पौद के मृदा से निकलने के पहले आर्द्रपतन के लिए 20-25° सेल्सियस तापमान तथा पौद निकलने के बाद के आर्द्रपतन के लिए 30-40° सेल्सियस तापमान अधिक अनुकूल होता है।

रोग–प्रबंधन

इस रोग के प्रबंध के लिए कृषिक, रासायनिक एवं जैविक विधियों का प्रयोग करके इनसे बचाव किया जा सकता है।

- पौधशाला बनाने के लिए खेत की मिट्टी, बालू तथा सड़ी हुई गोबर की खाद को मिलाकर उठी हुई क्यारी में उगाने पर पौद स्वस्थ रहती है।
- पौधशाला को सौर्यन (सौरीकरण) से उपचारित करने के लिए पहले पौधशाला की सिंचाई करें। उसके बाद पारदर्शी सफेद पॉलिथीन से 40 दिन तक (मई–जून में) ढ़ककर रखने से इस रोग से बचाया जा सकता है।
- कैप्टान या थीरम (2.5 ग्राम) या *ट्राइकोडर्मा हार्जिएनम* + वीटावैक्स (3:1) के 4.0 ग्राम प्रति किग्रा. की दर से बीज को उपचारित करें।
- पौधशाला की मिट्टी हल्की हो तथा उसमें उचित मात्रा में सड़ी हुई गोबर की खाद हो। नाइट्रोजन उर्वरक का प्रयोग कम करें। कैप्टान या ब्लाइटॉक्स – 50 (2.5 ग्राम प्रति लिटर पानी) का आवश्यकतानुसार नर्सरी में छिड़काव करें।
- बीजशैया में जल–निकास का उचित प्रबंध करें तथा बीज घने नहीं बोएं।

2. पछेती झुलसा (Late blight)

लक्षण

पछेती अंगमारी रोग के लक्षण पत्तियों, तने तथा फलों पर दिखाई देते हैं। पत्तियों के किनारों पर हल्के जलीय धब्बे दिखाई देते हैं तथा ये नमीयुक्त मौसम में, पत्ती पर तेजी से बढ़कर पूरी

पत्ती को आक्रांत कर लेते हैं, जिससे पत्तियों पर गहरे, भूरे या काले रंग के चितकबरे क्षेत्र बन जाते हैं। पत्तियों की निचली सतह पर कवक की सफेद वद्धि उतकों के मरे हुए भाग के चारों तरफ दिखाई देती है जो कि सुबह के समय अधिक होती है। तने पर भूरे रंग की पट्टी दिखाई देती। टमाटर के फलों पर गहरे जैतूनी रंग के चिकनाई युक्त धब्बे बनते हैं, जो बढ़कर पूरे फल पर फैल जाते हैं।

रोगकारक एवं रोग-अनुकूल परिवेश

यह रोग *फाइटोफ्थोरा इनफेस्टान्स (Phytophthora infestans)* नामक कवक से होता है। यह कवक संक्रमित आलू के बीज-कंद पर जीवित बना रहता है। इसके अतिरिक्त यह टमाटर एवं आलू के संक्रमित पौधों के अवशेषों, कंदों तथा फलों आदि पर भी जीवित रहता है जो इस रोग के प्राथमिक स्रोत हैं। अनुकूल परिस्थिति में, रोगकारक अवशेषों पर बीजाणु बनाता है तथा हवा के द्वारा फैलकर दूसरे स्वस्थ पौधों पर पहुंचता है और प्राथमिक संक्रमण करता है। द्वितीयक संक्रमण के लिए यह इस स्थान से हवा या वर्षा के झोकों के द्वारा दूसरे स्थान पर पहुंचता है और पौधों को संक्रमित करता है। सफल संक्रमण के लिए जरूरी है कि बीजाणु नम पत्तियों पर पहुंचे, मुलायम शाखाएं हो, हरे फल हो तथा तापमान 10-25° सेल्सियस के मध्य हो।

रोग-प्रबंधन

यह एक गंभीर रोग है। इस रोग का प्रबंधन निम्नलिखित प्रकार से करके फसल को बचाया जा सकता है :

- रोगी फलों को खेत से इकट्ठा करके गड्ढे में दबा दें।
- टमाटर की खेती आलू के खेत के पास न करें।

- जल–निकास की उचित व्यवस्था करें तथा खेत को खरपतवारों से मुक्त रखें।
- टमाटर की फसल एक ही खेत में बार–बार न उगाएं।
- जिस खेत मे टमाटर की खेती करनी हो, उस खेत की गर्मियों में गहरी जुताई करें।
- इस रोग का प्रकोप ज्यादा होने पर डायथेन एम–45, जिनेब (2–2.5 किग्रा./1000 लीटर पानी/हैं) का छिड़काव करें। रिडोमिल एस–जेड, रिडोमिल–45, करजेट एम–8 नामक कवकनाशियों का 0.2-0.25 प्रतिशत का घोल पानी में बनाकर आवश्यकतानुसार छिड़काव करने से भी टमाटर को इस रोग से बचाया जा सकता है।

3. फल विगलन या मृगनयन विगलन (Fruit rot or Buckeye)

लक्षण

टमाटर के फलों पर रोग का आरंभ पीताभ–भूरे, वलययुक्त धब्बों के रूप में होता है। संक्रमण होने पर छोटे व हरे फल सूखकर सिकुड़ जाते हैं। यह रोग अपरिपक्व तथा हरे रंग के फलों में अधिक होता है। भूमि पर या भूमि के पास लगे हुए फल, इस रोग से अधिक प्रभावित होते हैं। रोगी फल पौधों से गिर जाते हैं तथा दूसरे सूक्ष्मजीवों के आक्रमण से जल्दी सड़ने लगते हैं।

रोगकारक एवं रोग-अनुकूल परिवेश

टमाटर में यह रोग *फाइटोफ्थोरा निकोटियानी वैर. पैरासिटिका (Phytophthora nicotianae* var. *parasitica)* नामक कवक से

होता है। यह रोगकारक निषिक्तांडों या क्लैमाइडोस्पोरों के रूप में मृदा में एक वर्ष तक (रोगग्राही पौधों की अनुपस्थिति में) जीवित रहता है। रोगकारक आंतरिक बीज जनित है तथा बीज के अन्दर डेढ वर्ष तक जीवित रह सकता है। इस रोग का प्रभाव एक ही खेत में टमाटर की खेती लगातार करने पर अधिक होता है। रोगकारक बीज तथा भूमि में दो या दो से अधिक वर्षों तक जीवित रहता है। मृदा में अधिक नमी की उपस्थिति तथा 20-25° सेल्सियस तापमान होने पर निषिक्तांड या क्लैमाइडोस्पोर अंकुरित होकर कवकजाल और बीजाणुधानी बनाते हैं जिसमें दो कशाभी जीवबीजाणु बनते है जो जल्दी ही जीवबीजाणु से अलग हो जाते हैं। कशाभी रहित जीवबीजाणु प्राथमिक संक्रमण पौधों में करते है। संक्रमण के 3–4 दिन बाद, फलों में रोग के लक्षण दिखाई देने लगते हैं। कोई भी बीजाणुधानी पोषक पौधों पर ऊतक के भीतर पैदा नहीं होता। ये बीजाणुधानियां वर्षा के झोंके के द्वारा एक स्थान से दूसरे स्थान पर पहुंचते हैं और फलों में द्वितीयक संक्रमण करते है। रोगकारक की इष्टतम वृद्धि 25-30° सेल्सियस तापमान तथा 60 प्रतिशत से अधिक सापेक्षिक आर्द्रता एवं अधिक वर्षा होने पर होता है। नाइट्रोजन उर्वरक की अधिक मात्रा देने पर, फलों में रोग अधिक लगता है जबकि फॉस्फोरस की मात्रा बढ़ाने पर रोग का प्रभाव कम हो जाता है।

रोग-प्रबंधन

इस रोग के प्रभाव से फल की पैदावार तथा उसके बाजार–मूल्य प्रभावित होते हैं। इस रोग का प्रबंधन निम्नलिखित प्रकार से किया जा सकता है :

- टमाटर की खेती लगातार एक ही खेत में न करें तथा इसे सोलानेसी कुल की अन्य सब्जियों के साथ लगाएं।
- खरपतवारों का नियंत्रण और पानी का अच्छा निकास इस रोग की रोकथाम के लिए आवश्यक है।

- आवश्यकतानुसार सिंचाई हल्की करें।
- पौधे से पौधे की दूरी अधिक रखें।
- पत्तियों तथा फलों को भूमि से 30 सेमी. ऊपर रखें, जिससे पौधे के पास कमी कम रहें।
- खड़ी फसल में कैप्टाफॉल, मैंकोजेब तथा कॉपर ऑक्सीक्लोराइड (0.2-0.25 प्रतिशत) का रोपाई के क्रमशः 40, 55 तथा 70 दिनों के अंतराल पर छिड़काव करने से, इस रोग के संक्रमण को कम किया जा सकता है।

4. फ्यूजेरियम म्लानि (Fusarium wilt)

लक्षण

इस रोग के प्रभाव से रोगग्रस्त पौधों के नीचे की पत्तियां पीली पड़ने लगती हैं। यह पीलापन धीरे–धीरे पौधों के ऊपरी भाग तक बढ़ जाता है। नई पत्तियों की शिराओं का गहरा रंग हल्का हो जाता है तथा पत्तियां नीचे की ओर झुक जाती हैं। अंततः पौधा सूख जाता है। रोगी पौधों के तने को फाड़कर देखने पर, तने का भीतरी भाग भूरे रंग का दिखाई देता है। पौधों की जड़े काली हो जाती हैं और बाद में सड़नें लगती हैं। नम मौसम में भूमि के पास रोगी तने पर रोगकारक के लाल गुलाबी रंग के कवकजाल की बढ़वार दिखाई देती है।

रोगकारक एवं रोग-अनुकूल परिवेश

टमाटर में फ्यूजेरियम म्लानि रोग *फ्यूजेरियम ऑक्सीस्पोरम* फा. स्पी. *लाइकोपर्सिकी (Fusarium oxysporum* f. sp. *lycopersici)* नामक कवक से होता है। रोगकारक मृदा से उत्पन्न प्रकृति का होता है और संक्रमित पौधों के अवशेषों तथा मृदा में कवकजाल

तथा क्लेमाइडोस्पोर के रूप में जीवित बना रहता है। एक खेत से दूसरे खेत में इसका फैलाव सिंचाई जल, संदूषण, औजारों तथा संक्रमित पौद या मृदा के द्वारा होता है। खेत के *फ्यूजेरियम* कवक से एक बार ग्रसित हो जाने पर, इसको खेत से निकालना कठिन हो जाता है। जब स्वस्थ पौधे इस प्रकार की मृदा में रोपित किए जाते हैं तो बीजाणु की जननलिका या कवकजाल जड़ के अग्र भाग को बेधते हैं तथा कवकजाल बढ़कर जड़ वल्कुट से होकर जाइलम वाहिकाओं में पहुंच जाता है और यहीं पर रहकर, ऊपर तथा नीचे की तरफ बढ़ता रहता हैं, जबकि वाहिकाओं में रोगकारक बृहत्त् कोनिडियम पैदा करता है जो अलग होकर रस के साथ ऊपर की तरफ बढ़ता है तथा बृहत् कोनिडियम उस स्थान पर अंकुरित होता है जहां पर उसका भ्रमण बंद हो जाता है। कवकजाल जाइलम वाहिकाओं को वेधता है और बृहत्त् कोनिडियम दूसरी वाहिकाओं में पैदा करता है। कवकजाल गर्तो के द्वारा दूसरी सटी हुई वाहिकाओं को वेधते हैं। जिससे वाहिकाओं में रस का बहाव कवकजाल, कोनिडियम जेल्स गोंद के द्वारा रुक जाता है।

मृदा में रोगकारक कई सालों तक जीवित रहता है। इसकी वृद्धि के लिए 28° सेल्सियस तापमान इष्टतम होता है। इस रोग की वृद्धि के लिए 25-30° सेल्सियस तापमान इष्टतम होता है जिससे तुरंत म्लानि हो जाती है। गर्म, सूखा मौसम, इस रोग की वृद्धि के लिए आवश्यक है। यह रोग अम्लीय मृदा में क्षारीय मृदा की अपेक्षा अधिक होता है। रोगकारक की वृद्धि तथा रोग की वृद्धि के लिए मृदा 4–4.5 पीएच की सहायक होती है।

रोग-प्रबंधन

इस रोग का प्रबंध करना कठिन होता है फिर भी निम्नलिखित विधियों से फसल को बचाया जा सकता है :

- रोगी पौधों को जड़-सहित खेत से उखाड़कर नष्ट कर दें।
- गर्मियों में खेत की गहरी जुताई करें।
- पारदर्शी सफेद पॉलिथीन चादर से मृदा का मल्च (पलवार) करने से यह रोग कम लगता है।
- खेत में जल-निकास की उचित व्यवस्था करें।
- नाइट्रोजन उर्वरकों का प्रयोग कम मात्रा में करें तथा फॉस्फोरस उर्वरक का सुपर फॉस्फेट के रूप में प्रयोग करें।
- बीजों को कार्बेन्डाजिम (2.5 ग्राम प्रति किग्रा. बीज की दर) से उपचारित करें।
- रोगरोधी किस्में जैसे मीनाक्षी, पंत बहार आदि लगाएं।

4. जीवाणुज म्लानि (Bacterial wilt)

लक्षण

पौधे की म्लानि के पहले ही नीचे की पत्तियां मुरझाने लगती हैं। ऐसे पौधों के संवहनी ऊतक भूरे हो जाते हैं। तने से अपस्थनिक जड़ों का निकलना बढ़ जाता है। रोगग्रस्त तने को काटकर पानी में रखने से दूधिया स्राव निकलने लगता है। अत्यधिक फूल आने के समय पौधे पीला हुए बिना अचानक मुरझा जाना इसका मुख्य लक्षण है। साधारणतः संक्रमित पौधे की

जड़ें स्वस्थ दिखाई देती हैं और प्रायः अच्छी तरह से विकसित होती हैं।

रोगकारक एवं रोग-अनुकूल परिवेश

टमाटर में जीवाणुज म्लानि रोग, *रालस्टोनिया सोलेनेसिएरम* रेस 1 बायोवार 3 तथा 4 (*Ralstonia solanacearum* race 1 biovar 3 & 4) नामक जीवाणु से होता है। यह जीवाणु पाधों की लगभग 450 किस्मों, जिसमें घासें, झाड़ियां और पेड़ आदि है, को संक्रमित करता है। यह तम्बाकू, बैंगन, धतूरा, आलू, मिर्च, अदरक, कपास, जूट, जीरा, तिल आदि फसलों को भी संक्रमित करता है। यह रोगकारक मृदा से उत्पन्न है तथा मृदा में किसी पोषक पाधों की उपस्थिति के बिना भी कम से कम 2 वर्ष तक जीवित बना रहता है। कभी–कभी म्लानियुक्त पौधे के बीज को मृदा में बोने से भी यह रोग पौधों में हो जाता है। जीवाणु पौधों की जड़ों में घाव लगे स्थान, जो रोपण के समय, उगाते समय, कीड़ों या सूत्रकृमि या प्राकृतिक घाव से हुए हों (जहां से द्वितीयक जड़ें निकलती हैं) प्रवेश करता है। यह जीवाणु संवहनी ऊतकों, जिसमें जाइलम कोशिकाएं में बहुत तेजी से गुणन करके तथा इसके अपवंक भर जाता है। म्लानि के लक्षण संक्रमण के 5–6 दिन के बाद दिखाई देते हैं। ये जीवाणु संक्रमित पौधों की जड़ों तथा सड़े हुए पौधों के अवशेषों से मृदा में पहुंचते हैं। इस रोगकारकों के मृदा से उत्पन्न होने के कारण इनका एक स्थान से दूसरे स्थान पर फैलाव सिंचाई जल, मृदा पारगमन, औजारों तथा संक्रमित पौद से होता है। म्लाति रोग लाल दोमट की अपेक्षा दोमट बलुई मृदा में अधिक होता है। जीवाणु की वृद्धि के लिए 35-37° सेल्सियस तापमान इष्टतम होता है जबकि 15° सेल्सियस से कम तापमान पर रोग की वृद्धि नहीं होती। लेकिन 37° सेल्सियस पर सबसे अधिक रोग

का विकास बहुत जल्दी हो जाता है। 50 प्रतिशत से कम मृदा नमी होने पर इस रोग का संक्रमण नहीं होता। इस रोग की वृद्धि मृदा के पीएच मान 6.2–6.6 पर इष्टतम होती है। अधिक अम्लीय या क्षारीय मृदा में यह रोग नहीं होता है। यह रोग लाल दोमट भूमि में उगाए गए टमाटर की अपेक्षा बलुई दोमट में उगाए टमाटर में अधिक होता है। कार्बनिक खादें इस जीवाणु की वृद्धि को बढ़ाती हैं, जबकि अकार्बनिक उर्वरक इसकी वृद्धि को कम करते हैं।

रोग-प्रबंधन

इस रोग का पूर्णतः नियंत्रण करना बहुत कठिन है। फिर भी, इस रोग का प्रबंध निम्नलिखित प्रकार से किया जा सकता है:

- खेत में गोबर की खाद प्रचुर मात्रा में लगभग 25 टन प्रति हेक्टेर या हरी खाद का प्रयोग करें।
- *स्यूडोमोनास फ्लोरोसेन्स* का मिट्टी में 5 किग्रा. प्रति हेक्टेर की दर से बुरकाव करने पर इस रोग से बचा जा सकता है।
- ब्लीचिंग पाउडर (12–15 किग्रा./है.) या करंज की खल्ली के प्रयोग से भी मिट्टी में रोगजनक की वृद्धि कम होती है।
- पौधे को हींग (1.0 ग्राम) और हल्दी के पाउडर (5 ग्राम) प्रति 10 लिटर पानी के घोल में आधा घंटा डुबाकर या प्याज के रस (5 प्रतिशत) में आधा घंटा भिगोकर खेत में रोपने पर म्लानि रोग की तीव्रता में कमी आती है।
- खेत या पौधशाला में जल–निकास की व्यवस्था समुचित होनी चाहिए।

- रोगग्रस्त पौधों को उखाड़ देना श्रेयस्कर होता है ताकि रोगी पौधे रोग को फैलाने में मदद न कर पाएं।
- जिन रोग–क्षेत्रों में रोग की प्रबल संभावना हो वहां पर प्रतिरोधी किस्मों जैसे अर्का आभा, अर्का आलोक, सोनाली, अर्का सम्राट, अर्का रक्षक तथा डी.पी.बी 38, पालम पिंक, पालम प्राइड तथा स्वर्ण संपदा को उगाया जाना चाहिए।

6. जीवाणुज पर्ण चित्ती (Bacterial leaf spot)

लक्षण

इस रोग के लक्षण पौधे के सभी ऊपरी भागों में दिखाई देते हैं। पत्तियों तथा तनों पर भूरे, गोलाकार तथा लगभग 3 मि मी. व्यास के धब्बे दिखाई देते हैं। वर्षा एवं ओस की उपस्थिति में जलीय धब्बे दिखाई देते है, जो गहरे रंग के, बिखरे हुए होते हैं। धब्बे के चारों ओर पीला घेरा नहीं बनता है। रोग के अनुकूल मौसम होने पर, ये धब्बे आपस में मिल जाते है।; पत्तियां पीली होने लगती है तथा साथ ही बहुत सी विक्षति भी बन जाती हैं। बाद में पत्तियां झुलसी हुई दिखाई देती हैं। नए फलों पर छोटे, गहरे, थोड़ा उठे हुए बिंदु दिखाई देते हैं। कभी-कभी इन धब्बों के चारों ओर पतला जलीय किनारा बन जाता है। परिपक्व फलों पर भूरे–काले, उठे हुए कच्छु (स्कैब) की तरह 2-6 मिमी. व्यास के धब्बे बनते हैं, जिनका आकार पंखे की तरह तथा किनारा अनियमित होता है।

रोगकारक एवं रोग-अनुकूल परिवेश

टमाटर में जीवाणुज पर्णचित्ती रोग, *जैन्थोमोनास वेसिकेटोरिया (Xanthomonas vesicatoria)* नामक जीवाणु से होता है। यह जीवाणु टमाटर एवं मिर्च के अतिरिक्त दूसरे खरपतवारों जैसे

मकोय, फाइजेलिस एंगुलेटा, फा. मिनिमा, अमेरेन्थस डुवियस, एकलीफा वर्जिनिका, सोलेनम अमेरीकेनम तथा लेगोशिया मोलिस को भी संक्रमित करता है। रोगकारक बीज जनित है, जो नर्सरी के पौधों को संक्रमित करता है। इसके अतिरिक्त यह संक्रमित पौधों के अवशेषों पर जीवित बना रहता है। यह जीवाणु सूखे बीज, संप्रेषिक बलुई भूमि, सूखी पत्तियां, मिर्च या दूसरे पौधों के जड़ क्षेत्र में काफी समय तक जीवित रहता है। यह रोग हवा, वर्षा के झोंके, संक्रमित बीज तथा रोपण पौधों के द्वारा फैलता है। जीवाणु पौधे के अंदर रंध्र या हवा, कीड़े या यांत्रिक साधनों से घाव लगे स्थानों से प्रवेश करता है। इस रोग की वृद्धि के लिए लगभग 28° सेल्सियस तापमान, 90 प्रतिशत से अधिक सापेक्षिक आर्द्रता तथा मृदा अधिक की नमी सहायक होते हैं।

रोग-प्रबंधन

इस रोग का प्रबंधन निम्नलिखित प्रकार से किया जा सकता है:–

- संक्रमित पौधों के अवशेषों, खरपतवारों को खेत से निकालकर नष्ट कर दें।
- बुआई के लिए रोगरहित बीजों का प्रयोग करें।
- बीज को गरम जल (50° सेल्सियस पर) में 25 मिनट तक डुबाए तथा बाहर निकालकर सुखा लें।
- लहसुन (30 ग्राम / 100 मिली. पानी) के अर्क में टमाटर के बीज को उपचारित करने पर पर्णचित्ती का प्रकोप कम हो जाता है।
- खड़ी फसल में स्ट्रेप्टोमाइसिन सल्फेट (0.01 प्रतिशत) + कॉपर कवकनाशी (0.2 प्रतिशत) और कॉपर

ऑक्सीक्लोराइड (0.2 प्रतिशत) + मैंकोजेब (0.25 प्रतिशत) का घोल बनाकर छिड़काव करें।

7. टमाटर का पर्णकुंजन (Leaf curl)

लक्षण

यह टमाटर का एक महत्त्वपूर्ण रोग है जिससे फसल को बहुत क्षति होती है। इस रोग में पत्तियां मुड़ जाती हैं। पत्तियां आकार में छोटी तथा उनकी सतह खुरदरी हो जाती है। इसके अतिरिक्त कई शाखाएं भी निकल आती हैं। पौधों की बढ़वार रूक जाती है। पौधों की गांठे तथा दो गांठों के बीच की दूरी कम हो जाती है जिससे पौधा झाड़ीनुमा दिखाई देता है। संक्रमित पौधे में फल नहीं लगते, यदि लगते भी हैं तो बहुत कम। बरसात के मौसम वाली फसल में, यह रोग फसल को बहुत अधिक क्षति पहुंचाता है।

रोगकारक एवं रोग-अनुकूल परिवेश

टमाटर का पर्णकुंजन रोग टोमाटो पीत पर्णकुजन विषाणु (Tomato yellow leaf curl virus) के द्वारा होता है। यह जिमीनी विषाणु समूह के अंतर्गत आता है। यह विषाणु सफेद मक्खी के द्वारा स्थानांतरित होता है। खरपतवार बहुवर्षीय पोषक पौधे आदि इस विषाणु के प्राथमित संचरण के लिए प्रमुख स्रोत है। मध्यम से अधिक तापमान (33-39° सेल्सियस) इस विषाणु के स्थानांतरण में सहायक होता है।

रोग-प्रबंधन

इस रोग का प्रबंधन निम्नलिखित प्रकार से किया जा सकता है:

- पौद को सफेद मक्खियों से बचाने के लिए क्यारियों पर कपड़े की मसहरी लगा देनी चाहिए।
- रोपाई से पहले प्रभावित पौद को क्यारियों से निकाल देना चाहिए।
- पौद तैयार करने के लिए पौधशाला को फ्यूराडॉन या डिस्टकस 1 किग्रा. प्रति हेक्टेयर की दर से उपचारित करने से सफेद मक्खियों की संख्या को नियंत्रित किया जा सकता है।
- साइकोलेस (200 से 500 पी. पी. एस) को नर्सरी में छिड़कने पर रोग का प्रभाव कम हो जाता है।

8. टमाटर मोजेक (Tomato mosaic)

लक्षण

इस रोग के लगने से पत्तियां चितकबरी हो जाती हैं। पत्तियों के किनारे नीचे की ओर झुक जाते हैं तथा कड़े हो जाते हैं। बाद में पत्ती के पीले धब्बों के ऊतक नष्ट हो जाते हैं और उनका रंग भूरा हो जाता है। फलों की संख्या में भी भारी कमी हो जाती है। यह विषाणु टमाटर के बीज में भी रहता है। संक्रमित बीज, पत्तियां तथा पौधों के अवशेष इस रोग के प्रमुख स्रोत हैं।

रोगकारक एवं रोग-अनुकूल परिवेश

टमाटर में मोजक रोग टोमेटो मोजेक विषाणु (Tomata mosaic virus) के द्वारा होता है जो टोबैको विषाणु समूह का सदस्य है। यह विषाणु पौधे के रस के द्वारा स्थानांतरित होता है। यह विषाणु पौधे से पौधे पर, कार्य करने वाले के हाथों, औजार या कपड़ों के संपर्क में आने पर स्थानांतरित होता है। रोग कीड़ों के द्वारा बहुत कम स्थानांतरित होता है। यह विषाणु बीज-जनित है तथा लगभग 94 प्रतिशत तक बीज इस विषाणु से संक्रमित होते हैं। यह विषाणु पत्तियों तथा जड़ों के मलवे तथा मृदा में लगभग 2 साल तक जीवित शेष रहते हैं। बीज एवं पौधे के अवशेष इस विषाणु के प्रमुख स्रोत हैं।

रोग-प्रबंधन

- बोआई के लिए स्वस्थ बीज का प्रयोग करें।
- बोने से पहले, बीज को 50° सेल्सियस गरम जल में 25 मिनट तक डुबाकर रखे तथा 20 प्रतिशत ट्राइसोडियम फॉस्फेट के घोल से धोकर शोधित करें।
- रोग–वाहक कीटों को नियंत्रित करने के लिए मेटासिस्टॉक्स व मैलाथियान (0.05 प्रतिशत) का छिड़काव 10 दिन के अंतराल पर करें।
- खेत से, संक्रमित पौधों, खरपतवारों तथा अवांछित पौधों को समय रहते निकाल कर नष्ट कर दें।
- खेत पर काम करने वालों के हाथों तथा औजारों को ट्राइसोडियम (3 प्रतिशत) के घोल से धो लें। हाथों व औजारों को साबुन तथा पानी से भी अच्छी प्रकार धोएं।

अध्याय – 16

बैंगन के रोग (Diseases of brinjal)

बैंगन *(सोलेनम मेलोंगेना एल – Solanum melongena* L) एक महत्वपूर्ण सब्जी है जिसका उत्पादन विश्व के अधिकांश भागों में किया जाता है। भारत में, इसे सभी राज्यों में उगाया जाता है। बैंगन को दालों या अन्य सब्जियों के साथ मिलाकर जैसे सांभर या डालमा, चटनी, करी या अचार के रूप में उसका प्रयोग किया जाता है। कच्ची सब्जी के रूप में इसमें केवल 15 कैलोरी प्रति 100 ग्राम पाई जाती है। लेकिन जब इसको तेल में तल कर बनाते हैं तो इसकी कैलोरी बहुत अधिक बढ़ जाती है। बैंगन के उत्पादन में भारत विश्व में चीन के बाद दूसरा देश है जो लगभग 10,563,000 टन उत्पादन हर साल करता है। बैंगन की फसल भी अनेक रोगों से प्रभावित होती हैं जो कवकों, जीवाणुओं तथा फाइटोप्लाज्मा के द्वारा होते हैं। इस फसल में लगने वाले प्रमुख रोगों के लक्षणों, रोगकारकों, रोग अनुकूल परिवेश तथा समुचित प्रबंधन के विषय में नीचे संक्षेप में वर्णन किया गया है।

1. फोमोप्सिस अंगमारी एवं फल विगलन (Phomopsis blight and fruit rot)

लक्षण

इस रोग का प्रभाव पौद में आर्द्र–पतन, तनों में कैंकर, पर्ण अंगमारी तथा फल विगलन के रूप में पौधों पर दिखाई देता है। पत्तियों एवं तनों पर गोल, मटमैले या भूरे धब्बे बनते हैं। बाद में, उन धब्बों पर काले रंग के बिंदु आकार की कवकीय संरचना (पीक्निडिया) बनती हैं। प्रभावित पत्तियां पीली होकर मर जाती हैं। तनों पर लंबवत् काली भूरी विक्षतियां दिखाई देती हैं। प्रभावित पौधों की पत्तियां छोटी होती हैं तथा सहायक कलियां प्रायः मर जाती हैं। इस रोग के संक्रमित से तने के आधार पर एक घेरा बन जाने से पौधों में म्लानि के लक्षण दिखाई देते हैं। जब पाधों पर फल लगे होते हैं तो उन पर हल्के पीले गड्ढेदार धब्बे बनते हैं जो फैलकर फल को सड़ा देते हैं। पूरा फल पीला हो जाता है तथा उस पर भूरे क्षेत्र के सकेन्द्री छल्ले बने होते हैं। इन धब्बों पर काले बिंदु के पिक्निडिया दिखाई देते हैं।

रोगकारक एवं रोग-अनुकूल परिवेश

यह रोग *फोमोप्सिस वेक्सान्स (Phomopsis vexans)* नामक कवक से होता है। रोगकारक केवल बैगन को संक्रमित करता है, लेकिन कभी–कभी विक्षत टमाटर के फलों को भी संक्रमित करता है। रोगकारक बीजों, संक्रमित पौधों के अवशेषों तथा मृदा में जीवित शेष के रूप में रहता है। बीजों के बीजावरण व भ्रूणपोषक में इस कवक के बीजाणु पाए जाते हैं। रोगकारक की वृद्धि व संक्रमण के लिए गर्म तथा आर्द्र मौसम की आवश्यकता होती है। रोग की वृद्धि के लिए अनुकूलतम तापमान लगभग 25° सेल्सियस तथा सापेक्षिक आर्द्रता 55 प्रतिशत से अधिक होती है।

रोग-प्रबंधन

इस रोग का प्रबंधन निम्नलिखित उपायों को अपनाकर किया जा सकता है:

- संक्रमित पौधे के अवशेषों को खेत से निकालकर नष्ट कर दें।
- गर्मियों में खेत की गहरी जुताई करें तथा कुछ समय (10-15 दिन) के लिए खुला छोड़ दें।
- कम से कम तीन वर्ष का फसल-चक्र अपनाएं।
- बीजोपचार के लिए 50° सेल्सियस तापमान पर गरम जल में बीजों को 30 मिनट तक डुबाए रखें तथा बाद में उन्हें सुखा कर प्रयोग में लाएं।
- बीज को केवल कार्बेन्डाजिम (2 ग्राम/किग्रा. बीज) या कार्बेन्डाजिम + थीरम (2 ग्राम/ किग्रा. बीज) के मिश्रण से उपचारित करें।
- फसल पर कार्बेन्डाजिम (2 ग्राम/लिटर पानी) या मैंकोजेब (2.5 ग्राम/लिटर पानी में) का पानी में घोल बनाकर 10–15 दिन के अंतराल पर 3–4 बार छिड़काव करें।

2. स्क्लेरोटिनिया म्लानि (Sclerotinia wilt)

लक्षण

इस रोग के लक्षण पौधों में पुष्पक्रम के पास गोलाकार से लंबवत् जलीय, विक्षतियों के रूप में दिखाई देते हैं जो बाद में जलीय मृदु विगलन की तरह दिखते हैं। संक्रमण बिंदु पर सूखे बदरंग के धब्बे विकसित होते हैं, जिनके फलस्वरूप वे ऊतकक्षयी

हो जाते हैं। यदि संक्रमण तने के आधार पर होता है तो पूरे पौधे की म्लानि हो जाती है। कभी–कभी इस रोग से कुछ शाखाएं ही प्रभावित होती हैं तो इसे आंशिक म्लानि कहते हैं। ठंडे एवं आर्द्र मौसम में, रोगकारक के कवकजाल पौधे से भूमि के ऊपरी भाग से बाहर निकलते हैं और क्रीमी रंग के स्क्लेरोशिया बनते हैं जो बाद में काले रंग के हो जाते हैं। अधिक नमी की अवस्था में पाधे के प्रभावित भाग पर सफेद कवक की वृद्धि दिखाई देती है। ये रोगकारक फलों को भी संक्रमित करते हैं। फलों के विगलन भाग पर बहुत से स्क्लेरोशिया दिखाई पड़ते हैं। संक्रमित तने को फाड़ने पर बहुत से स्क्लेरोशिया ऊतकों में दिखाई देते हैं।

रोगकारक एवं रोग-अनुकूल परिवेश

यह रोग *स्क्लेरोटिनिया स्क्लेरोशियोरम (Sclerotinia sclerotiorum)* नामक कवक से होता है। यह रोग पौधों के लगभग 64 कुलों, 225 जातियों तथा 383 किस्मों को संक्रमित करता है। यह *सोलेनेसी* कुल के अंतर्गत 10 जातियों तथा 19 किस्मों को जिसमें *सोलेनम मेलांजीना* शामिल है, संक्रमित करता है। यह कवक पौधों के अवशेषों तथा मृदा में स्क्लेरोशिया के रूप में जीवित शेष रहता है। कवक के बीजाणु तथा कवकजाल रोगग्राही पौधों को संक्रमित करते रहते हैं। ठंडे एवं नम मौसम में, पौधों की सतह पर सफेद कवकजाल की वृद्धि दिखाई देती है, जो बाद में भोजन की अनुपस्थिति में कवकजाल, स्क्लेरोशिया बनाना शुरू कर देता है। शुरू में *स्क्लेरोटिनिया* सफेद तथा बाद में काले रंग में बदल जाते हैं। रोग के संक्रमण के लिए 15-20° सेल्सियम तापमान अनुकूल होता है। अधिक नमी तथा कम तापमान संक्रमण के लिए आवश्यक है। नाइट्रोजन उर्वरकों का अधिक मात्रा में प्रयोग करने पर यह रोग बढ़ जाता है। रोगकारक

बहुत सी सब्जी वाली फसलों जैसे मटर, फूलगोभी, टमाटर, सेम वाली फसलों आदि को संक्रमित करता है जो कि रोगकारक के संरोप के बढ़ने में मदद करते हैं।

रोग–प्रबंधन

- संक्रमित पौधों के अवशेषों को खेत से निकालकर नष्ट कर दें।
- गर्मियों में खेत की गहरी जुताई करें।
- कम से कम 2–3 साल का फसल–चक्र अपनाएं, जिसमें धान एवं मक्का आदि फसलों को सम्मिलित करें।
- गोबर की सड़ी खाद का प्रयोग करें।
- कार्बेन्डाजिम (0.1 प्रतिशत) एवं थायोफेनेट मेथिल (0.2 प्रतिशत) का वैकल्पिक रूप में 10 दिन के अंतराल पर पौधों पर छिड़काव करें।

3. जीवाण्विक म्लानि (Bacterial wilt)

लक्षण

इस रोग के कारण पौधों की नई पत्तियां अचानक मुरझाकर नीचे की ओर झुक जाती हैं तथा अंत में पूरा पौधा सूख जाता है। लेकिन पत्तियां थोड़ी पीली नहीं पड़ती हैं। नए पौधों में संक्रमण होने पर वे तुरंत मर जाते हैं लेकिन पुराने पौधों में संक्रमण होने पर पहले पौधों के कुछ भाग या पूरे पौधे की पत्तियां मुरझायी हुई तथा बदरंग हो जाती हैं । प्रभावित पौधों के संवहनी तंत्र, हल्के पीले से भूरे रंग के दिखाई देते हैं। यदि ऐसे पौधों के तनों को काटकर एक शिशे की गिलास में थोड़ा साफ पानी लेकर उसमें

डाल दिया जाए, तो उसमें से सफेद–भूरा–लसदार रस निकलकर पानी को दूधिया बना देता है जो इस रोग की मुख्य पहचान है।

रोगकारक एवं रोग-अनुंकूल परिवेश

यह रोग *राल्स्टोनिया सोलेनेसिएरम* रेस 1 बायोवार 3 तथा 4 (*Ralstonia solanacearum* race 1 biovar 3 & 4) नामक जीवाणु से होता है। रोगकारक 450 से अधिक पौधों की जातियों को संक्रमित करता है जो कि 54 कुलों से संबंधित हैं। यह सब्जी वाली फसलों जैसे आलू, टमाटर, मिर्च, बैंगन के अतिरिक्त दूसरे पौधों जैसे तम्बाकू, खीरा, सेम, फ्रासबीन आदि को संक्रमित करता है। रोगकारक नम मृदा, संक्रमित पौधों के अवशेषों तथा बीजों में काफी समय तक जीवित शेष रहते हैं। ये जीवाणु पौधों में चोटिल जड़ों या दरारों से होकर प्रवेश करते हैं। सूत्रकृमि से प्रभावित मृदा में इस रोग का प्रकोप अधिक होता है। जीवाणु 15-37° सेल्सियस तापमान पर जीवित शेष रहते हैं तथा 35-37° सेल्सियस तापमान इसके प्रसारण हेतु अनुकूल होता है। रोगकारक 6.2–7.4 पी.एच. तक वृद्धि करता है लेकिन क्षारीय मृदा इस रोगकारक के लिए अनुकूल नहीं होती। जीवाणु का फैलाव सिंचाई जल, वर्षा जल, संक्रमित पौधों तथा संक्रमित बीजों से होता है।

रोग–प्रबंधन

इस रोग का प्रबंधन करना कठिन होता है। फिर भी नीचे बताए गए उपायों को अपनाकर रोग के प्रभाव को कम किया जा सकता है:

- संक्रमित पौधों के अवशेषों को खेत से निकाल कर नष्ट कर दें।

- बुआई के लिए स्वस्थ बीजों का प्रयोग करें।
- 2–3 वर्ष का फसल–चक्र अपनाएं।
- खेत में जल–निकास का उचित प्रबंध करें।
- खेत से स्वैच्छिक पौधों तथा खरपतवारों को खेत से निकालकर नष्ट कर दें।
- पौद को रोगरहित मृदा में उगाएं।
- खेत में पौद–रोपण से पहले ब्लीचिंग पाउडर (12–15 किग्रा. प्रति हेक्टेयर की दर से) का प्रयोग करें।
- रोगरोधी किस्मों जैसे सूर्या, स्वेथा, अन्नपूर्णा, बी.बी.–7, बी.बी–7, बी.बी.–13–1, बी.बी.–44, अर्का केक्षव, बी.बी. –46, चेस–243, अर्का नीलकंठ, अर्का निधि, आर.एच. आर.–12, आई.एच.आर.–21, आई.एच.आर.–54, ई. जी–191, पूसा अनुपम, हिसार श्यामल तथा सिंगनाथ आदि को उगाएं।

4. छोटी पत्ती या लघु पत्ती रोग (Little leaf disease)

लक्षण

इस रोग से पौधों की पत्तियां छोटी, पतली तथा हल्की हरी हो जाती हैं। बाद में आने वाली पत्तियों का आकार और छोटा हो जाता है। रोगी पौधे झाड़ीनुमा दिखाई पड़ते हैं और उनमें फूल नहीं बनते हैं। यदि बनते भी है तो वे हरे रंग के हो जाते हैं एवं फल बिल्कुल नहीं बनते। संक्रमण के बाद फलों की वृद्धि रुक जाती है और वे सख्त हो जाते हैं तथा पकते नहीं हैं।

रोगकारक एवं रोग-अनुकूल परिवेश

यह रोग फाइटोप्लाज्मा द्वारा होता है जो पौधों की जड़ों की पोषवाह कोशिकाओं में पाया जाता है। इस रोग का रोगवाहक कीट जैसिड *(हिसीमोनस फीसीटीस)* होता है। फाइटोप्लाज्मा बहुत से खरपतवारों जैसे धतूरा, *विन्का रोजिया* पर जीवितशेष रहता है। लगातार रोगग्राही किस्मों को लगाना, खरपतवारों, शकरकंद या टमाटर को मुख्य फसल के पास लगाने पर रोगवाहक कीटों की संख्या बढ़ जाती है, जो रोग को फैलाने में सहायक होती है।

रोग–प्रबंधन

इस रोग का प्रबंधन निम्नलिखित विधियों से किया जा सकता है:

- रोगी पौधों, खरपतवारों (धतूरा) को खेत से निकालकर नष्ट कर दें।
- रागवाहक कीटों के नियंत्रण के लिए आक्सीमेथिल डिमेटान (मेटासिस्टॉक्स), डायामेथोएट (रोगर) कीटनाशी का एक लिटर प्रति हजार लिटर पानी में घोल बनाकर प्रति हेक्टेयर की दर से फसलों पर छिड़काव करें। आवश्यकतानुसार 15–20 दिन के अंतराल पर 3–4 बार छिड़काव करें।
- रोगी–प्रतिरोधी किस्में *विंका रोजिया* जैसे पूसा पर्पिल क्लस्टर, ओसी मंजरी, गोटा, चकलासी डोली, डोली–5, सी.एच.बी.आर.–3, डी.बी.एस.आर.–44, डी.बी.एस.आर. –91–2, एन.डी.बी.एच.–8, एच.ओ.ई–414, जे.बी.–64–2, पी.बी.एस.–12–1 आदि को उगाएं।

अध्याय – 17

मिर्च के रोग (Diseases of chilli)

मिर्च की दो जातियां, लाल मिर्च (chillies) और शिमला मिर्च (Capsicum or bell pepper) के नाम से भारत में प्रसिद्ध है; जो विभिन्न राज्यों में उगाई जाती हैं। मिर्च के फलों में कैप्सीसिन (Capsicicin) नामक रसायन होने के कारण इनमें तीखापन या मसालापन होता है। इसका फल विटामिन ए (18 माइक्रोग्राम / 100 ग्राम फल) और एस्कॉर्बिक अम्ल (80 माइक्रकोग्राम / 100 ग्राम फल) का अच्छा स्रोत है। फसल उगाने के दौरान पौधों में बहुत से रोग लगते हैं जो कवकों, जीवाणुओं तथा विषाणुओं के द्वारा होते है, तथा फसल उत्पादन को गंभीर रूप से प्रभावित करते हैं। मिर्च में लगने वाले प्रमुख रोगों का संक्षिप्त वर्णन नीचे किया गया है।

1. श्यामव्रण तथा फल विगलन (Anthracnose and fruit rot)

लक्षण

मिर्च में श्यामव्रण तथा फल विगलन के लक्षण की दो अवस्थाएं होती है:– 1. पश्चमारी 2. श्यामवण्र तथा फल विगलन।

पश्चमारी के लक्षणों में मुलायम टहनियों के शीर्ष से नीचे की तरफ ऊतकक्षय भाग दिखाई देता है तथा पूरा पौधा या शाखाएं सूखने लगती हैं। टहनियां पीली हो जाती हैं तथा बहुत से काले बिन्दु (कवक के एसरवुलस) पौधे के ऊतकक्षयी भाग पर बिखरे हुए होते हैं। इस प्रकार के लक्षण तने पर भी देखे जा सकते हैं। श्यामव्रण एवं फल विगलन मिर्च के पके फलों में दिखाई देता है। फल के छिलके पर छोटे, काले, वर्तुल तथा हल्के धंसे हुए धब्बे दिखाई देते हैं। जैसे ही फल परिपक्व होता है, ये धब्बे बड़े होकर आपस में मिलकर फल के अधिकांश भाग को ढक लेते हैं। आर्द्र मौसम में ये धब्बे गुलाबी रंग के कवक के बीजाणु के झुंड से ढके होते हैं। रोग के बढ़ने से धब्बे फैल जाते हैं। संकेंद्री चिह्न के साथ काले कवक फलन (कवक के एसरवुलस) बनते हैं। जब फलों पर अधिक विक्षतियां बनती हैं तो फल अपरिपक्व अवस्था में पौधे से गिर जाता है, जिससे उत्पादन में कमी आ जाती है। जब फल को काटकर खोलते हैं तो छिलके की निचली सतह पर कवक के छोटे, उठे हुए गोलाकार काली पीठिका (स्ट्रोमा) के समूह पाए जाते हैं। बीज भी इस रोग से प्रभावित होते हैं तथा वे जंग लगे रंग के तथा सिकुड़े हुए हो जाते हैं।

रोगकारक एवं रोग-अनुकूल परिवेश

यह रोग *कोलेटोट्राइकम (Colletotrichum)* की तीन जातियों जैसे *को. कैप्सीकी (C. capsici)*, को. *ग्लीयोस्पोरायडीज (C. gloeosporioides)* और *को. पीपेरेटम (C. piperatum)* के द्वारा होता है। इनमें *को. कैप्सीकी* का प्रकोप अधिक होता है और इससे फसल को सबसे अधिक नुकसान पहुंचता है। रोगकारक कवक पौधों के अवशेषों तथा संक्रमित बीजों में जीवितशेष रहता है तथा प्राथमिक संक्रमण का मुख्य स्रोत है। द्वितीयक संक्रमण हवा वाहक कोनिडियां के द्वारा होता है। रोग की तीव्रता पूर्ण नम

मौसम में बढ़ जाती है। इस रोग की वृद्धि के लिए सामान्यतः 26° सेल्सियस तापमान तथा स्वतंत्र जल या 100 प्रतिशत आपेक्षिक आर्द्रता अनुकूलतम होती हैं।

रोग–प्रबंधन

मिर्च का यह एक प्रमुख रोग है। इससे फसल को बहुत अधिक नुकसान होता है। इस रोग का प्रबंधन निम्न प्रकार से किया जा सकता है:

- बोआई के लिए स्वस्थ एवं प्रमाणित बीज का प्रयोग करें।
- संक्रमित पौधों के अवशेषों को इकट्ठा करके नष्ट कर दें।
- एक साल के फसल–चक्र में टमाटर–वर्गीय फसलों को सम्मिलित न करें।
- कवकनाशी जैसे बेविस्टीन (0.1 प्रतिशत), मैंकोजेब (0. 25 प्रतिशत), डाइफोलेटान (0.2 प्रतिशत) का छिड़काव आवश्यकतानुसार खड़ी फसल में करने से लाभ होता हैं। इसके अतिरिक्त अन्य कवकनाशी जैसे प्रोक्लोरेज (0.125 प्रतिशत), डाइफेनोकोनाजोल (0.05 प्रतिशत) और टेबुकोनाजोल (0.05–0.1 प्रतिशत) का प्रयोग इस रोग की रोकथाम के लिए किया जा सकता है।

2. सरकोस्पोरा पर्ण चित्ती (Cercospora leaf spot)

लक्षण

इस रोग में पत्तियों, तनों व फलों पर रोग के लक्षण दिखाई देते हैं। पत्तियों पर गोल या अंडाकार, जलीय भूरे, काले फैले

हुए धब्बे (5–10 मि.मी. व्यास) दिखाई देते हैं। बाद में ये धब्बे आपस में मिलकर अंगमारी के लक्षण प्रदर्शित करते हैं। धब्बे किनारे पर भूरे रंग के तथा केंद्र में हल्के धूसर रंग के होते हैं। पत्तियां पीली होकर पड़की गिर जाती हैं। तनों एवं पर्णवृन्तों पर अनियमित आकार के धब्बे दिखाई देते हैं। इस रोग की तीव्रता बढ़ने पर, फल भी संक्रमित होते हैं तथा वे ये फल सड़ने लगते हैं। पत्तियों के गिरने से फसल को अधिक नुकसान होता है।

रोगकारक एवं रोग-अनुकूल परिवेश

यह रोग *सरकोस्पोरा कैप्सिकी (Cerocspora capsci)* नामक कवक से होता है। यह कवक संक्रमित पौधों के अवशेषों में कवकजाल या स्ट्रोमेटा के रूप में जीवितशेष रहता है। फल के संक्रमित होने पर, बीज में भी जीवित रहता है। कोनिडियमोंका विकास जीवितशेष स्ट्रोमेटा पर होता है जो कि प्राथमिक संरोप का मुख्य स्रोत है। इसका प्रसारण हवा या वर्षा के झोंकों से होता है तथा ये कोनिडियम पत्तियों की सतह पर पड़ते हैं और वहां अंकुरित होकर पौधे को संक्रमित करते हैं। पत्तियों में संक्रमण होने पर, धब्बे बनते हैं जिससे कोनिडियम बनते हैं, जो द्‌वितीयक संक्रमण के लिए उत्तरदायी होते हैं। जब तापमान 20-25° सेल्सियस के साथ आपेक्षिक आर्द्रता 95 प्रतिशत से अधिक होती है तो इस रोग की वृद्‌धि तीव्रता से होती है।

रोग-प्रबंधन

इस रोग का प्रबधंन निम्नलिखित प्रकार से किया जा सकता है:

- संक्रमित पौधे के अवशेषों को खेत से निकाल कर नष्ट कर दें।

- बुआई के लिए स्वस्थ एवं प्रमाणित बीज का प्रयोग करें।
- 3 से 4 वर्ष का फसलचक्र अपनाएं।
- बीजों को कार्बेन्डाजिम (0.1 प्रतिशत) से उपचारित करें।
- कवकनाशी जैसे बेविस्टीन (0.1 प्रतिशत), डाइफोलेटॉन (0.3 प्रतिशत), ब्लाइटॉक्स–50 (0.3 प्रतिशत) का पानी में घोल बनाकर 10–15 दिन के अंतराल पर फसल पर छिड़काव करें। इसके अतिरिक्त स्कोर (0.05 प्रतिशत), रोको (0.05 प्रतिशत) का पानी में घोल बनाकर 15 दिन के अंतराल पर भी छिड़काव कर सकते हैं।

3. चूर्णिल आसिता (Powdery mildew)

लक्षण

रोग के लक्षण पहले निचली पुरानी पत्तियों पर सफेद, हल्के धूसर रंग के धब्बों के रूप में प्रकट होते हैं। बाद में ये धब्बे ऊपरी पत्तियों तक फैल जाते हैं । ये धब्बे तनों, कलियों तथा फूलों पर भी दिखाई देते हैं। पत्तियों की निचली सतह पर सफेद–धूसर रंग के धब्बे दिखाई देते हैं तथा इसके ठीक ऊपरी सतह पर पीली विक्षति के साथ केंद्र में भूरे ऊतकक्षयी दिखते हैं प्रभावित पत्तियां ऊपर की तरफ मुड़ जाती हैं और अपरिपक्व अवस्था में पौधों से गिर जाती हैं। पौधों में पश्चमारी के लक्षण टहनियों एवं शाखाओं पर दिखाई देते हैं। पौधे की बढ़वार रूक जाती है और फल गिरने लगते हैं।

रोगकारक एवं रोग-अनुकूल परिवेश

इस रोग के लिए कवक *लेवीलुला फैरीका (Leveillula faurica)* उत्तरदायी होता है। इस रोगकारक के बहुत से पोषक पौधे जैसे टमाटर, बैंगन, धनियां, चना, ग्वार, कपास, प्याज आदि हैं। रोगकारक, धान्य फसलों तथा जंगली पोषक पौधों पर एक फसल से दूसरे फसल के आने तक जीवितशेष रहता है। कवक, हवा तथा वर्षा के झोंके से एक पौधे से दूसरे पौधों पर फैलता है। कोनिडियम पोषक पौधों की सतह पर अंकुरित होता है और उपत्वचा (क्यूटीकिल) को सीधे छेद है या रंध्र के द्वारा प्रवेश करता है। पौधों में रोग के लक्षण दिखाई देने पर कोनिडियम बनते हैं जो पौधे में द्वितीय संक्रमण करते हैं। कोनिडियम के अंकुरण के लिए 25°-30° सेल्सियस तापमान सहायक होता है। 50 प्रतिशत से कम आपेक्षिक आर्द्रता रोग के फैलने में मदद करती है। पत्तियों पर स्वतंत्र जल होने पर कवक के कोनिडियम का अंकुरण रुक जाता है।

रोग-प्रबंधन

इस रोग का नियंत्रण निम्न प्रकार से किया जा सकता है:

- पौधे को अधिक दूरी पर लगाएं।
- इस रोग से बचाव के लिए फव्वारा विधि से सिंचाई करें।
- बुआई के लिए रोग प्रतिरोधी किस्मों का चुनाव करें।
- पौधों पर छिड़काव के लिए जलीय सल्फर, कार्बेन्डाज़िम, डीसोकैप, ट्राइडेमार्क, हेक्साकोनाजोल (0.01%) आदि कवकनाशियों का प्रयोग लाभदायक होता है।

4. जीवाणुज पर्ण चित्ती (Bacterial leaf spot)

लक्षण

रोग के लक्षण पत्तियों, तनों तथा फलों पर दिखाई देते हैं। पत्तियों पर जलीय, वर्तुल या अनियमित आकार की विक्षति दिखाई देती हैं। ऊतकक्षयी का केंद्र भूरा तथा किनारे पतले एवं हरिमाहीन होते हैं। ये विक्षतियां बढ़कर 10 मि.मी. तक व्यास हो जाती हैं तथा इस प्रकार की विक्षतियां पत्तियों की ऊपरी सतह पर धसी हुई तथा निचली सतह पर उभरी होती हैं। अनुकूल वातावरण मिलने पर, ये विक्षतियां आपस में मिल जाती हैं और अंगमारी की तरह के लक्षण दिखाई देते हैं। पत्तियां पीली होकर अपरिपक्व अवस्था में ही पौधे से गिर जाती हैं। तने पर विक्षति पतली लंबवत् और उठी हुई, हल्की भूरी तथा खुरदरी होती हैं। फल पर शुरू में विक्षति के हरे धब्बे बनते हैं जो बाद में बड़े होकर भूरे हो जाते हैं। ये धब्बे उठे हुए तथा किनारों पर खुरदरे होते हैं। संक्रमित फल अधिक आपेक्षिक आर्द्रता होने पर सड़ने लगता हैं। इसी तरह के धब्बे, फूलों, बीजपत्रों तथा पर्णवृंतों पर भी दिखाई देते हैं।

रोगकारक एवं रोग-अनुकूल परिवेश

यह रोग *जैन्थोमोनास वेसिकेटोरिया (Xanthomonas vesicatoria)* नामक जीवाणु से होता है। यह मिर्च के अतिरिक्त टमाटर को भी संक्रमित करता है। रोगकारक बाह्य आंतरिक बीज–उत्पन्न प्रकृति का है। यह जीवाणु पौधों के अवशेषों पर जीवित शेष रहता है। इस जीवाणु का फैलाव बीज या पौद द्वारा होता है। जीवाणु पौधों में चोट लगे स्थान, रंध्र या हाइड्रे थोड्स से होकर प्रवेश करते हैं। इसके बाद जीवाणु लसलसी जीवाणु कोशिकाओं के झुंड रंध्रीय खोखले स्थान तथा सटे हुए अंतरकोशीय

स्थानों पर पैदा होता है। पड़ोसी कोशिकाएं फूल जाती हैं जो बाह्य त्वचा को तोड़कर विक्षति उत्पादित करती हैं। पौधों में इस जीवाणु द्वारा संक्रमण 15-35° सेल्सियस तापमान के बीच हो सकता है परंतु अनुकूलतम तापमान 22-34° सेल्सियस होता है। रोग की अधिकतम वृद्धि जुलाई से सितंबर के महीनों मे होती है।

रोग–प्रबंधन

इस रोग का नियंत्रण निम्न प्रकार से किया जा सकता है:

- मिर्च की खेती अच्छे जल–निकास वाली मृदा में करें।
- फसल-चक्र में टमाटर वर्गीय फसलों को सम्मिलित न करें।
- बुआई के लिए स्वस्थ एवं प्रमाणित बीजों का ही चुनाव करें।
- फसलों की सिंचाई फुव्वारा विधि से न करें।
- बीज को सोडियम हाइपोक्लोराइड के 1.3 प्रतिशत घोल में 1 मिनट तक डुबाकर रखें तथा छाया में सुखा लें।
- फसलों पर एग्रीमाइसिन–100 तथा कॉपर ऑक्सीक्लोराइड (0.2 प्रतिशत) के मिश्रण का छिड़काव करने से रोग का प्रभाव कम हो जाता है तथा फसल का उत्पादन बढ़ जाता है।

5. जीवाणुज म्लानि (Bacterial wilt)

इस रोग में शुरू में पौद की पत्तियां दिन में अचानक मुरझाने लगती हैं लेकिन रात में सामान्य हो जाती हैं। बाद में

रोग के बढ़ने से संपूर्ण पौधों में स्थायी म्लानि हो जाती है। संक्रमित पौधा हल्का पीला या पीला हो जाता है। नया संक्रमित पौधा तुरंत मर जाता है लेकिन पुराने पौधों में पत्तियां मुरझा जाती हैं। पौधे या इसके कुछ भाग बदरंग हो जाते हैं तथा अंत में म्लानि के प्रभाव से मर जाते हैं। पौधे का संवहन भाग हल्का पीला या भूरे रंग का हो जाता है। संक्रमित पौधे तने के या जड़ को काट कर साफ पानी भरे हुए गिलास में डालने पर पौधे से दूधिया सफेद रंग जीवाण्विक स्राव निकलता है, जिससे गिलास का पानी दूधिया रंग का हो जाता है। इससे जीवाणुज म्लानि की पहचान की जा सकती है।

रोगकारक एवं रोग-अनुकूल परिवेश

यह रोग जीवाणु *राल्स्टोनिया सोलेनेसियेरम* रेस 1 बायोवार 3 तथा 4 (*Ralstonia solanacearum race 1 biovar 3 & 4)* नामक द्वारा होता है। यह रोगकारक 450 से अधिक पौधों की जातियों को संक्रमित करता है। यह जीवाणु टमाटर–वर्गीय फसलें, अदरक तथा केले के अतिरिक्त बहुत से खरपतवारों के मूल परिवेशी में जड़ों के ऊपर तथा जड़ों के अंदर में जीवितशेष के रूप में पाया जाता है। ये खरपतवार इस प्रकार हैं– *सोलेनम नाइग्रम, सो. एन्यूवी, सो. टोरूवम, सो. जैन्थेकमिम, क्रोटन बोन्फ्लेन्डिएनम, यूफोरबिया हिर्टा, कोलोकेशिया इस्कुलेन्टा, पोर्टलेका ओलेरेशिया, फाइलैन्थस निरूरी* तथा *पार्थिनियम* आदि। जीवाणु पौधों के अवशेषों तथा नम मृदा में जीवित शेष रहता है। जीवाणु पौधों में जड़ों से पिथ (मज्जा) में यांत्रिक/सूत्रकृमि या कीटों द्वारा चोटिल की गई जड़ों या जड़ों में दरार से होकर प्रवेश करते हैं। जीवाणु जाइलम वाहिकाओं में रहते हैं और पूरे पौधे में फैल जाते हैं। ये जीवाणु दो मृदु ऊतक कोशिकाओं के बीच के स्थान तथा मज्जा में फैल जाते हैं और कोशिकाभित्ति को विघटित कर

देते हैं जिससे उस स्थान पर जीवाणु की कोशिकाएं भर जाती हैं। ये जीवाणु संक्रमित जड़ों तथा सड़े हुए पौधों से मृदा में वापस आ जाते हैं। यह जीवाणु 15-37° सेल्सियस तक तापमान पर जीवित रह सकता हैं परंतु इसके लिए अनुकूलतम तापमान 35-37° सेल्सियस होता है। रोग की वृद्धि प्रायः 20° सेल्सियस के तापमान से अधिक तापमान में होती है। क्षारीय मृदा में इस रोग का विकास कम होता है। इस रोग का प्रसारण सिंचाई जल या वर्षा के जल, संक्रमित पौधों एवं संक्रमित बीजों से होता है।

रोग–प्रबंधन

इस रोग का प्रबंधन करना काफी कठिन होता है। इस रोग की रोकथाम के लिए कोई भी रसायन पूर्णरूप से उपयोगी नहीं पाया गया है। फिर भी निम्नलिखित विधियां अपनाकर इस रोग के प्रभाव को कम किया जा सकता है:

- इसे रोग से ग्रसित मृदा में फसल न उगाएं।
- 2-3 साल का फसल–चक्र अपनाएं, जिससे धान्य फसलों को सम्मिलित करें।
- बोआई के लिए स्वस्थ बीजों का चुनाव करें।
- नर्सरी को रोगरहित मृदा में उगाएं।
- मृदा का सौर्यन (सौरीकरण) करें।
- रोग–प्रतिरोधी किस्मों जैसे कंधारी, सी. ए. – 33, मंजेरी उज्ज्वला कुलार्ड, पी.पी. – 9659 –06, पी.पी – 977127, पी.पी– 977195–1 और पी.पी – 977635 तथा सूरजमुखी आदि को लगाएं।

- सूत्रकृमिनाशी दवाओं का प्रयोग भी लाभकारी होता है।

6. मोजेक रोग (Mosaic disease)

लक्षण

इस रोग के लक्षण पत्तियों पर गहरे हरे और पीले रंग के धब्बों के रूप में प्रकट होते हैं। पत्तियां चितकबरी हो जाती हैं। रोगी पौधों से निकलने वाली नई पत्तियां छोटी, मोटी तथा संकरी हो जाती हैं । पौधे छोटे रह जाते हैं तथा उन में फल एवं फूल कम लगते है।

रोगकारक एवं रोग-अनुकूल परिवेश

यह रोग मिर्च में कई प्रकार के विषाणुओं जैसे खीरा मोजेक विषाणु, पोटैटो वायरस वाई, पेपर मोटिल विषाणु, टोबैको इट्च वायरस, तंबाकू मोजेक, विषाणु पोटेटो आलू कर्बुरता मोजेक विषाणु, (तंबाकु विषाणु) के द्वारा होता है। खीरा एवं आलू विषाणु रस के अतिरिक्त यह रोग माहू के द्वारा स्थानांतरित होता है, जिसमें *एफिस गोसिपी, माइजस परसिकी* प्रमुख हैं। टोबैको विषाणु यांत्रिक साधनों जैसे कार्य करने वाले के हाथों, कपड़ों तथा औजारों द्वारा स्थानांतरित होता है, परंतु कोई कीट इस समूह के विषाणु को स्थानांतरित नहीं करता है। टोबैको विषाणु, संक्रमित पौधों के अवशेषों तथा बीजों में रहता है।

रोग–प्रबंधन

इस रोग का प्रबंधन निम्न विधियों से किया जा सकता है:

- संक्रमित पौधों के अवशेषों को खेत से निकालकर नष्ट कर दें।

- खरपतवारों को खेत में या खेत के आसपास न उगने दें।
- बोआई के लिए स्वस्थ एवं प्रमाणित बीजों का प्रयोग करें।
- मिर्च की फसल को टमाटर–वर्गीय फसलों के साथ न लगाएं।
- ऑक्सीमेथिल डिमेटान या रोगर (1 मि.ली. / लिटर पानी की दर से) का फसलों पर छिड़काव करें।

10. पर्ण कुचन (Leaf curl)

लक्षण

संक्रमित पौधों की पत्तियां नीचे की ओर मुड़ जाती हैं। पत्तियां छोटी होती हैं, जो बाद में हल्की–पीली हो जाती हैं। पुरानी पत्तियां पपड़ी की तरह तथा भुरभुरी हो जाती हैं। रोग ग्रसित पौधे छोटे रह जाते हैं तथा उन पर फल लगना बंद हो जाता है और यदि लगता भी है तो फल कुरूप हो जाता है।

रोगकारक एवं रोग-अनुकूल परिवेश

मिर्च में पर्ण कुंचन रोग, तंबाकू पर्ण कुंचन विषाणु *(Tobacco leaf curl virus)* द्वारा होता है। यह विषाणु, तंबाकू तथा मिर्च के साथ दूसरे बहुत से पौधों को संक्रमित करता है, जिसमें टमाटर, चुकंदर, पपीता, तिल, *सीमोप्सीस टेट्रोगोनोलोबा,* फरास तथा पिटुनिया हाइब्रिड प्रमुख हैं। यह विषाणु सफेद मक्खी कीट द्वारा स्थानांतरित होता है। नम मौसम में इस रोग का फैलाव कम होता है।

रोग–प्रबंधन

इस रोग का प्रबंधन करना कठिन होता है। फिर भी निम्नलिखित विधियों का प्रयोग करके इस रोग से फसल को कुछ सीमा तक बचाया जा सकता है:

- रोग रोधी किस्मों जैसे पेरेनियल, बीजी–1, लोराई, पंजाब लाल, जे.सी.ए – 196, पंजाब सर्ख, डी. सी – 18, पूसा सदाबहार, पंत सी–2, जवाहर मिर्च–2, सूर्यमुखी तथा जापानी को लगाएं।
- निम्बेसिडीन (1 मि.ली./लिटर पानी) या नीम अलज (1.5 मि.ली/लिटर पानी) का प्रयोग दूसरे कीटनाशी के विकल्प के रूप में किया जा सकता है।
- ट्राइजोफॉस, 40 ईसी (1.5 मि.ली/लिटर पानी), नीमार्क (5 मि.ली./लिटर पानी) आदि का एक के बाद एक का नर्सरी में तथा मुख्य खेत में 15 दिन के अंतराल पर छिड़काव करें।

अध्याय – 18

गोभी–वर्गीय सब्जियों के रोग

(Diseases of cole crops)

गोभी–वर्गीय सब्जियों में प्रमुख रूप में फूलगोभी, पत्तागोभी, गांठगोभी, ब्रोकोली, तथा बटन गोभी (ब्रसेल्स स्प्राउट) फसलें सम्मिलित होती हैं। इस वर्ग की सब्जियों की उपलब्धता लगभग पूरे साल बनी रहती है। इन सब्जियों को भारत के सभी भागों में उगाया जाता है। ये सब्जियां विटामिन ए. बी तथा सी की प्रमुख स्रोत हैं। इन फसलों में बहुत से रोग लगते हैं जो फसल के उत्पादन तथा गुणवत्ता को प्रभावित करते हैं। गोभी–वर्गीय सब्जियों के प्रमुख रोगों के प्रमुख लक्षण, रोगकारक, रोग–अनुकूल परिवेश तथा समुचित प्रबंधन का संक्षिप्त वर्णन किया गया है।

1. मृदुरोमिल आसिता (Downy mildew)

लक्षण

इस रोग का आक्रमण पुराने पौधों की अपेक्षा नए पौधों पर अधिक होता है। इस रोग के लक्षण पत्तियों की निचली सतह पर नसों के बीच के स्थान पर कोणीय, अर्ध–पारदर्शी, बैंगनी-भूरे रंग

के धब्बों के रूप में दिखाई देते है तथा पत्तियों की ऊपरी सतह पर हल्के पीले रंग के धब्बे बनते हैं। नमी वाले मौसम में, रोगकारक के सफेद–धूसर रंग के कवकजाल, बीजाणुधानी तथा बीजाणु पत्तियों की निचली सतह पर दिखाई देते हैं। रोगकारक फूलगोभी के कर्ड को भी संक्रमित करते हैं, जिससे संक्रमित 'कर्ड' का ऊपरी भाग भूरे रंग का दिखाई देता है जो बाद में गहरे भूरे से काले रंग में बदल जाता है। पत्तागोभी में यह कवक पत्तियों के आधार से होकर पुराने डंठल तथा शीर्ष में प्रवेश करता है और प्रभावित भाग धूसर काले रंग का हो जाता है। भंडारण के दौरान, यह फैलकर पत्तागोभी के सबसे अंदर वाली कलीपत्ती को बदरंग कर देता है। पौधों के शीर्ष पर अनेक धंसे हुए, काले एवं विभिन्न आकार के छोटे-बड़े धब्बे दिखाई देते हैं।

ब्रोकोली में मृदुरोमिल आसिता रोग के लक्षण सबसे पहले पौधे की निचली पत्तियों पर दिखाई देते हैं। पत्तियों की निचली सतह पर छोटे जलीय धब्बे बनते हैं जो हल्के हरे ऊतकों के क्षेत्र से चारों तरफ से घिरे होते हैं। अनुकूल वातावरण में ये धब्बे फैलकर एक प्रकार का पीला क्षेत्र बनाते हैं। बाद में संक्रमित ऊतक आपस में मिल कर, हल्के भूरे रंग के हो जाते हैं एवं झुलसे की तरह दिखाई देते हैं। बड़ी विक्षति हमेशा पत्तियों की नसों से घिरी होती है। संक्रमण हमेशा मुख्य तने के ऊपरी भाग तथा शीर्ष के पुष्पीय गुच्छों की शाखाओं में होता है। कुछ पौधों में सर्वांगी आक्रमण से मुख्य तने तथा शीर्ष की शाखाओं पर बिखरा हुए नीला बैंगनी रंग का क्षेत्र दिखाई देता है।

रोगकारक एवं रोग-अनुकूल परिवेश

यह रोग *पेरोनोस्पोरा पैरासिटीका (Peronospora parasitica)* नामक कवक से होता है। यह कवक परजीवी है तथा पोषक पाधों पर ही जीवित रह सकता है। यह रोगकारक फूलगोभी,

पत्तागोभी, ब्रोकोली, गांठगोभी के अतिरिक्त जड़ वाली सब्जियों जैसे मूली, शलजम एवं अनेकों गोभी–वर्गीय पौधों (एरोबिडोप्सीस जातियां, *चेनोपोडियम एलबम, केमोलिना सैटाइवा, केरियेन्थ्रस एलियोनी, केरियेन्थ्रस चेरी, कैप्सेला वरसा–पोस्टेरिस, सिनाप्सिस एल्बा, लेपिडियम सैटाइवम मोल्कोमिया अफ्रीकाना, मैथाइओला इनकैना)* को भी संक्रमित करता है। रोगकारक के बीजाणु पत्तियों तथा पुष्पपुंज पर जीवित रहते हैं तथा सुषुप्तावस्था में कवकजाल बीज तथा पौधों के अवशेषों में जीवितशेष रहता है। कम तापमान तथा अधिक आपेक्षिक आर्द्रता के साथ-साथ वर्षा तथा ओस होने पर, इस रोग के बढ़ने में सहायता मिलती है। प्रथम संक्रमण से भूमि में जीवित निषिक्तांडों के द्वारा पौधों में संक्रमण होता है जबकि द्वितीयक संक्रमण बीजाणु, बीजाणुधानी से निकल कर जल की बूंदों की सहायता से दूसरी पत्तियों पर पहुंचता है और अंकुरित होकर पत्तियों में संक्रमण करता हैं।

रोग-प्रबंधन

इस रोग का प्रबंधन समेकित विधियों जैसे कर्षण–क्रियाओं के साथ–साथ कवकनाशियों का प्रयोग तथा रोग–प्रतिरोधी किस्मों को उगाकर किया जा सकता है। इस रोग का प्रबंधन निम्न समेकित विधियों द्वारा किया जा सकता है:

- संक्रमित फसल के अवशेषों एवं बहुवर्षीय खरपतवारों को खेत से निकाल कर नष्ट कर दें।
- फसल-चक्र में गोभी-वर्गीय फसलों के स्थान पर दूसरी फसलों को सम्मिलित करें।
- बोआई के लिए स्वस्थ एवं साफ बीजों का प्रयोग करें।

- रोग–प्रतिरोधी किस्मों को उगाएं। फूलगोभी की इग्लू, स्नोबॉल वाई, डाक एग्लान, आर.एस.– 355, अर्ली विन्टर, ह्वाइट हेड किस्में इस रोग की प्रतिरोधी हैं। इसके अतिरिक्त कुछ किस्में जैसे कुआरी–8, कुआरी–4 तथा फर्स्ट अर्ली लक्ष्मी मध्यम रोग प्रतिरोधी हैं। पत्तागोभी की रोग–प्रतिरोधी किस्में जनवरी किंग, बलखान, स्पिट्जकूल, अल्गारविया, जेनेवा–145–1 आदि हैं।
- बीज उपचार के लिए मेटालेक्सिल (1-2 ग्राम प्रति किग्रा. की दर से) प्रयोग करने से रोग के संक्रमण को कम किया जा सकता है। इसके अतिरिक्त डाइथेन एम–45 (0.2 प्रतिशत), एलिएट (0.3 प्रतिशत) का छिड़काव किया जा सकता है। दो कवकनाशियों को मिलाकर जैसे मेटालोक्सिल + मैन्कोजेब (0.25 प्रतिशत) और सिमोक्सिमिल (0.03 प्रतिशत) + मैन्कोजेब (0.2 प्रतिशत) का पानी में घोल बनाकर छिड़काव करने से भी इस रोग से फसलों को बचाया जा सकता है।

2. वृंत विगलन (Stalk rot)

लक्षण

इस रोग के लक्षण पौधे के सभी ऊपरी भागों में दिसंबर से जनवरी के महीनों में दिखाई देते हैं। इस रोग से प्रभावित पत्तियां दिन में मुरझा जाती हैं लेकिन रात में पुनः सामान्य हो जाती हैं। पुरानी पत्तियों में पीलापन ऊपरी भाग से शुरू होता है तथा बाद में वे अपरिपक्व अवस्था में झड़ जाती हैं। जो पत्तियां भूमि को छूती हैं वहां पर अनियमित आकार के गहरे भूरे से काले धब्बे बनते हैं। इस भाग पर कवक की वृद्धि ठंडे और आर्द्र मौसम में दिखाई देती है। पौधों मे विगलन डंठल से बढ़कर

वृंत तक हो जाता है और गहरे भूरे से काले धब्बे तने पर चारों तरफ से जमीन के पास घेरा बनाते हैं। इसलिए तना गलकर ऊपर तक पहुंच जाता है तथा कभी–कभी पूरे तने की मज्जा एवं कर्ड की शाखाएं भी सड़ जाती हैं। जब मौसम आर्द्र एवं ठंडा होता है तो कवकजाल बाहर आ जाते हैं और प्रभावित भाग से चिपके होते हैं। इस रोग से 'कर्ड' भी प्रभावित होता है तथा भूरे से गहरे भूरे रंग की सड़न दिखाई देती है। पुष्पपुंज भी इस रोग में अप्रेल से मई के महीने में प्रभावित होते हैं। जब वर्षा होती है तो कवक की वृद्धि बहुत तेजी से होती है तथा पूरे पुष्पपुंज को घेर लेती है तथा कवकजाल को पुष्पपुंज की शाखाओं से लटकते हुए देखा जा सकता है। यदि मौसम सूखा हो तो कवकजाल की वृद्धि केवल पुष्पपुंज की शाखाओं तक ही सीमित होती है तथा प्रभावित शाखाएं सूख जाती हैं।

रोगकारक एवं रोग-अनुकूल परिवेश

यह रोग *स्क्लेरोटिनिया स्क्लेरोटियोरम (Sclerotinia sclerotiorum)* नामक कवक से होता है। यह रोगकारक बहुत से पौधों को संक्रमित करता है तथा पौधों के 60 कुलों तथा 350 किस्मों को संक्रमित कर सकता है जिनमें से प्रमुख पौधे फूलगोभी, गांठगोभी, सलाद (लेट्यूस), पत्तागोभी, पालक, मेथी, मटर, राजमा, शिमला मिर्च, बैंगन, गाजर आदि हैं। यह रोगकारक कवक स्क्लेरोशिया के रूप में भूमि तथा पौधों के अवशेषों पर जीवित रहता है तथा प्रथम संक्रमण का स्रोत है। यह रोगकारक रोगग्राही पौधों को 0-25° सेल्सियस (औसतन 15-28°) तापमान में संक्रमित कर सकता है।

रोग-प्रबंधन

रोगकारक मुख्य रूप से भूमि में रहता है। अतः इस रोग के

प्रबंधन के लिए कृषिक, जैविक, कवकनाशी तथा रोग प्रतिरोधी किस्मों को सम्मिलित किया जा सकता हैं। वृंत विगलन रोग से पौधों को निम्नलिखित विधियों को अपनाकर बचाया जा सकता है:

- फूलगोभी–धान–फूलगोभी फसल-चक्र अपनाकर इस रोग से बचा जा सकता है।
- संक्रमित पौधों तथा निचली पत्तियों को प्रत्येक सप्ताह निकालते रहने तथा प्रक्षेत्र की सफाई करने से इस रोग के प्रभाव को कम किया जा सकता है।
- सूरजमुखी खली तथा जिप्सम का प्रयोग भूमि में करने से इस रोग के प्रभाव को कम कर सकते हैं।
- फूलगोभी की रोग–प्रतिरोधी किस्में, जैसे मास्टर ओसेना, एवान्स, जैनवान, अर्ली विन्टर्स, एडमस हेड, और ओलिम्पस आदि को लगाएं।
- कार्बेन्डाजिम (0.1 प्रतिशत) का छिड़काव फसलों पर करने से इस रोग के प्रभाव को कम किया जा सकता है। कार्बेन्डाजिम (0.5 प्रतिशत) का प्रयोग बुआई से पहले भूमि में करने से रोग की सघनता जाती है।
- भूमि को मई-जून के महीने में पॉलिथीन से ढक करके उपचारित करने से इस रोग के संक्रमण को कम किया जा सकता है।
- *ट्राइकोडर्मा विरिडी* तथा *ट्राइकोडर्मा हारजीएनम* के प्रयोग से भूमि को उपचारित करने से रोगकारक के प्रभाव को कम कर सकते हैं जिससे रोग की सघनता कम हो जाती है तथा पैदावार भी बढ़ जाती है।

3. आल्टरनेरिया पर्ण चित्ती (Alternaria leaf spot)

लक्षण

क्यारी में पौद के तनों तथा पत्तियों पर छोटे, गहरे रंग की चित्तियां दिखाई देती हैं, जिससे पौद में क्लेद गलन हो जाता है या पौद छोटी रह जाती है। बड़े पौधों में भूमि के ऊपर के सभी भाग इस रोग से संक्रमित होते हैं। पत्तियों पर छोटी भूरे से काले रंग की चित्तियां दिखाई देती हैं, जो बढ़कर संकेंद्री वलय बन जाती हैं, जो कि इस रोग का मुख्य लक्षण है। प्रत्येक पर्णचित्ती एक पीले हरिमाहीन ऊतक से घिरी होती हैं। फूलगोभी तथा ब्रोकेली के शिर्ष (हेड़) भूरे हो जाते हैं जो कि सामान्यतः अकेले या फूल के गुच्छों के किनारे से शुरू होता है। जो पौधे बीज उत्पादन के लिए उगाए जाते हैं उनके मुख्य अक्ष, पुष्पक्रम, शाखाओं तथा फलियों पर गहरी ऊतकक्षयी विक्षति दिखाई देती है। शलजम की पत्तियों पर लगभग वर्तुल, प्रायः जोनेट तथा भूरे से काले रंग की चित्तियां दिखाई देती हैं। मूली के पौधों में पर्ण चित्ती उठी हुई, गोलाकार तथा एक सेन्टीमीटर व्यास तक की दिखाई देती है।

रोगकारक एवं रोग-अनुकूल परिवेश

आल्टरनेरिया पर्ण चित्ती रोग *एल्टरनेरिया (Alternaria)* की तीन जातियों *ए. ब्रैसिसीकोला (A. brassicicola)*, *ए. ब्रैसिकी (A. brassicae)* तथा *ए. रेफेनी (A. raphani)* नामक कवकों से होता है। *ए. ब्रैसिसीकोला* तथा *ए. ब्रैसिकी* मुख्यतः सभी गोभीवर्गीय सब्जियों को संक्रमित करते हैं। जबकि *ए. रेफेनी* प्रायः मूली, फूलगोभी, पत्तागोभी, बॉल फ्लावर, तारामिरा, कैंडीटफ्ट, स्टॉक, सलाद (लेट्यूस) आदि को ग्रसित करते हैं।

आल्टरनेरिया की तीनों जातियां संक्रमित पौधों के अवशेषों, संक्रमित बीजों तथा गोभीवर्गीय खरपतवारों पर जीवित रहती हैं। औसत तापमान, अधिक आपेक्षिक आर्द्रता तथा वर्षा आदि अल्टरनेरिया रोगों के फैलने में लिए मदद करते हैं। आपेक्षिक आर्द्रता 95-100 प्रतिशत, 18 घंटों के लिए 21-27° सेल्सियस तापमान लगातार तीन दिनों तक इस रोग की महामारी के लिए आवश्यक होता है।

रोग-प्रबंधन

इस रोग का प्रबंध कर्षण, जैविक, रासायनिक एवं रोग–प्रतिरोधी पौधों का उचित उपयोग करके किया जा सकता है, जिसका वर्णन नीचे किया गया है:

- विभिन्न कर्षण-क्रियाओं जैसे स्वस्थ साफ बीजों का चुनाव, लंबे समय का फसल-चक्र, खेती की सफाई, खरपतवारों का नियंत्रण, उचित दूरी पर पौधों का रोपण, संतुलित खादों तथा उर्वरकों का उपयोग तथा उचित जल–निकास से रोग को कम किया जा सकता है।

- फूलगोभी तथा पत्तागोभी को बीजों के गरम जल (45° सेल्सियस पर 30 मिनट के लिए या 45° सेल्सियस पर 20 मिनट के लिए) से उपचारित करने से *ए. ब्रैसिकी* को नियंत्रित किया जा सकता है। बीज को थीरम (0. 2 प्रतिशत) के घोल में डुबाने से भी *आल्टरनेरिया* का संक्रमण कम हो जाता है। बीजों को आइप्रोडियान (1. 25 ग्राम/किलो बीज की दर) से उपचारित करने से *ए. ब्रैसिकी* और *ए. ब्रैसिसीकोला* के संक्रमण को नियंत्रित किया जा सकता है। बीजों को जैविक विधि

जैसे *ग्लीयोक्लैडियम विरेन्स*–61, *ट्राइकोडर्मा ग्रीसीओवीरिडीज* (माइको स्टाप) नामक कवकों से उपचारित करने पर फूलगोभी और पत्तागोभी को इस रोग से बचाया जा सकता है।

- आल्टरनेरिया रोग–प्रतिरोधी किस्में बहुत कम हैं फिर भी फूलगोभी किस्म पूसा शुभ्रा (ब्रुसेल्स स्प्राउट) तथा बटन गोभी की किस्म कैम्ब्रीज नंबर-5, *ए. ब्रैसिकी* तथा *ए. ब्रैसिसीकोला* रोग-प्रतिरोधी हैं।

- डाइथेन-45 (0.25 प्रतिशत) द्वारा मूली में आल्टरनेरिया अंगमारी को प्रभावी ढंग से नियंत्रित किया जा सकता है। *ए. ब्रैसिकी* और *ए. ब्रैसिसीकोला* से संक्रमित फूलगोभी को सफलतापूर्वक नियंत्रित करने के लिए थीरम+ बिनोमिल या एकांतर में मैन्कोजेब कीटनाशी का प्रयोग करने से रोग की रोकथाम हो जाती है। आइप्रोडियान (0.5 - 1 किग्रा. की दर से) के तीन छिड़काव हरी फली बनते समय से कटाई के समय तक 21 दिन के अंतराल पर करने से इस रोग से बचा जा सकता है तथा उत्पादन में वृद्धि होती है। मैन्कोजेब, जीरम तथा जीनेब के तीन छिड़काव करें।

- मैन्कोजेब (0.2 प्रतिशत) या फालपेट (0.2 प्रतिशत) का कटाई के पहले छिड़काव करने पर पत्तागोभी के हेड्स को भंडारण के दौरान *ए. ब्रैसिकी* के प्रकोप से बचाया जा सकता है।

- आइप्रोडियोन तथा टैल्क पाउडर के मिश्रण में डुबाकर पत्तागोभी के भंडारण-गलन (जो *ए. ब्रैसिसीकोला* के द्वारा होता है) पर प्रभावी ढंग से नियंत्रण किया जा सकता है।

4. ग्रंथिल मूल (Club root)

लक्षण

इस रोग के आरंभिक लक्षण के रूप में पत्तियां गर्म दिनों में मुरझा जाती हैं। पौधे का ऊपरी भाग प्रभावित होने पर उनमें छोटापन एवं हरिमाहीनता आ जाती है। प्रभावित पौधों के हेड का आकार छोटा हो जाता है। पौधों की जड़ों को भूमि से उखाड़ने पर उनमें अतिवृद्धि दिखाई देती है। प्रभावित जड़ें गूदेदार वृद्धि के कारण ग्रंथिल जड़ में परिवर्तित हो जाती हैं। सामान्यतः मूलाग्र परिवर्तित हो जाता है जबकि जड़ों का आधार भाग सामान्य होता है। अतिवृद्धि जाइलम के कार्य को प्रभावित करती है जिससे पत्तियां मुरझा जाती हैं। जैसे ही यह रोग बढ़ता है, दूसरे मृतजीवी जीवाणुओं का आक्रमण हो जाता है जो ऊतक को गला देते हैं और अंत में ऊतक काला हो जाता है।

रोगकारक एवं रोग-अनुकूल परिवेश

इस रोग का रोगकारक *प्लाज्मोडियोफोरा ब्रैसिकी* *(Plasmodiophora brassicae)* नामक कवक है। यह कवक बहुत विरामी बीजाणु पैदा करता है, जो कि भूमि तथा पौद अवशेषों में रहते हैं। कवक ऐसे बहुत से गोभीवर्गीय पौधों तथा खरपतवारों पर आक्रमण करता है जो विशेष क्षेत्र में पाए जाते हैं। रोगकारक भूमि में 10 साल तक जीवित रह सकता है। इस रोग के बीजाणु क्षारीय दशा के प्रति बहुत संवेदनशील होते हैं और इस परिस्थिति में बीजाणु का अंकुरण कम होता है। सूखी भूमि में बीजाणु का अंकुरण नहीं होता है तथा रोग का विकास रुक जाता है। इस रोग का प्रसारण एक क्षेत्र से दूसरे क्षेत्र में संक्रमित भूमि, प्रक्षेत्र के उपकरणों तथा सिंचाई के पानी के द्वारा होता है।

रोग-प्रबंधन

इस रोग का रोगकारक भूमि में लंबे समय तक जीवित रहता है। इसलिए इस रोग का प्रबंध करना बहुत कठिन है। फिर भी नीचे बताए गए कुछ उपायों से इस रोग को कुछ हद तक नियंत्रित किया जा सकता है:

- पौद–मलबे को खेत से निकालकर नष्ट कर दें।
- खेत के अंदर तथा उसके आस-पास से खरतपवारों को निकालकर नष्ट कर दें।
- पौद को संक्रमित भूमि/खेत में न उगाएं।
- चूने का प्रयोग करके मृदा का पी. एच. 7.2 से ऊपर रखें, क्योंकि रोगकारक क्षारीय दशा के प्रति सूक्ष्मग्राही होता है।
- ब्रोकोली की किस्म ओ. आर.–1 तथा मूली की सेक्साफायर इस रोग की प्रतिरोधी किस्में हैं।
- मेथिल ब्रोमाइड से मृदा धूमन करने पर ग्रंथिल मूल रोग को कम किया जा सकता है या रोपण क्यारी को बोआई के 2 सप्ताह पहले उपचारित करने पर रोग का संक्रमण कम होता है। बेनलेट (0.5 प्रतिशत) के घोल में 15–20 मिनट तक पौद को डुबाकर रखने के बाद पौद रोपण करने से रोग का प्रभाव कम किया जा सकता है।

5. कृष्ण मूल रोग या काली मेखला रोग (Black leg)

लक्षण

इस रोग के लिए पौद से लेकर बड़े पौधे तक सुग्राही होते हैं। पौधों के मृदा से ऊपरी भाग जैसे तना, पत्तियां, फलियां तथा बीज आदि इस रोग से संक्रमित होते हैं। इस रोग के लक्षण तने के आधार पर अंडाकार, दबे हुए, हल्के भूरे से धूसर जैसे कैंकर के रूप दिखाई देते हैं, जो बाद में बड़े होकर तने के चारों तरफ घेरा बना कर नील–लोहित रंग की सीमा बना लेते हैं। पत्तियों पर विक्षति अनियमित आकार की एवं सफेद से बर्फ रंग की होती हैं जो बाद में कागजनुमा हो जाती हैं तथा उन पर अनेक काले बिंदु बन जाते हैं जहां पर रोगकारक के फलनकाय बनते हैं। तना पतला हो जाने के कारण मुंडक का भार सहन नहीं कर पाता है और पौधा गिर जाता है। तने पर कैंकर हो जाने के कारण पाधे पोषक तत्व और पानी नहीं ले पाते जिससे वे अपरिपक्व अवस्था में ही परिपक्व हो जाते हैं एवं अनकी फलियों एवं बीजों में झुर्रियां बन जाती हैं।

रोगकारक एवं रोग-अनुकूल परिवेश

यह रोग *लेप्टोस्फीरिया मैकुलेन्स (Leptosphaeria maculans)* नामक कवक से होता है, जिसकी अलैंगिक अवस्था ही प्रकृति में जाती है। यह कवक संक्रमित बीजों में प्रसुप्त कवकजाल के रूप में या रोगी पौधों के मलबे में पाया जाता है। संक्रमित बीज अंकुरित होता है। कवक भी सक्रिय हो जाता है और बीजपत्राधर को संक्रमित करता है जिससे संक्रमित पौद मर जाती है। कवक उस मरी हुए पौद पर पिक्निड़ियोस्पोर पैदा करता है, जिससे दवितीयक संक्रमण होता है। वर्षा की बूंदों तथा सिंचाई के पानी की सहायता से पिक्निड़ियोस्पोर एक स्थान से दूसरे स्थान पर

फैलते हैं। पत्तागोभी में संक्रमित बीज इस रोग का प्रथम स्रोत है। रोग की वृद्धि, तीव्रता तथा संक्रमण के लिए 18.3° सेल्सियस तापमान, 122.3 मि.मि वर्षा और 66.2 प्रतिशत आपेक्षिक आर्द्रता काफी सहायक होती है। काली मेखला रोग गोभीवर्गीय सब्जियों के साथ तिलहन कुल की फसलों तथा चारे वाली फसलों को संक्रमित करता है और अनुकूल वातावरण में पौधों को काफी क्षति करता है।

रोग-प्रबंधन

इस रोग के प्रबंध के लिए निम्नलिखित नियंत्रण-विधियों से रोग के प्रभाव का कम किया जा सकता है:

- खेत से संक्रमित पौद को इकट्ठा करके नष्ट करें।
- तीन–चार साल का फसल-चक्र अपनाएं, जिसमें गोभी–वर्गीय फसलों को सम्मिलित न करें।
- बुआई के लिए स्वस्थ बीजों का चुनाव करें।
- गोभी–वर्गीय खरपतवारों को खेत के अंदर तथा आसपास से नष्ट कर दें।
- बीज को गरम जल (50° सेल्सियस पर 30 मिनट के लिए) से उपचारित करें या थायोबंडाजोल (2.5 ग्राम/किग्रा. बीज की दर) से उपचारित करें।
- जिनेब (5 ग्राम/मी^{2}) को बोआई के तीन दिन पहले मृदा में मिलाएं।
- फ्लुएजिनाम, डीफेनोकानाजोल और आइप्रोडियोन के मिश्रण का प्रयोग करने से इस रोग को प्रभावीत ढंग से नियंत्रित किया जा सकता है।

6. काला विगलन (Black rot)

लक्षण

इस रोग से पौधे, पौद से लेकर परिपक्व तक कभी भी अवस्था में प्रभावित हो सकते हैं। नई पौद की निचली या बीजपत्रों पर ऊतकक्षयी विक्षतियां पाई जाती हैं जो काली दिखती हैं। पत्तियां मर जाती हैं और अंत में गिर जाती हैं। इस रोग से प्रभावित पत्तियां किनारे से पीली होकर मुरझाने लगती हैं। रोग का विस्तार ऊतकक्षयी विक्षति वाली पत्ती के किनारे से शुरू होकर मध्य शिरा की तरफ बढ़ता है जो अंग्रजी के अक्षर "V" के समान दिखाई देता है। ऊतकक्षयी भाग में शिराएं भूरे से काले रंग की हो जाती हैं। रोगी पौधे के तने का संवहनी भाग काला हो जाता है। फूलगोभी तथा पत्तागोभी का ऊपरी हिस्सा (कर्ड) काला और मुलायम होकर सड़ने लगता है।

रोगकारक एवं रोग-अनुकूल परिवेश

काला विगलन रोग, *जैन्थोमोनास कैम्पेस्ट्रिस पैथोवार कैम्पेस्ट्रिस (Xanthomonas campestris* pv. *campestris)* नामक जीवाणु से होता है। यह जीवाणु सभी गोभी–वर्गीय पौधों को संक्रमित करता है। रोगकारक संक्रमित बीजों, रोगी पौधों के मलबे तथा गोभी–वर्गीय खरपतवारों पर जीवित रहता है। जब संक्रमित बीज अंकुरित होता है तो जीवाणु बीजावरण से बीज-पत्र के साथ बाहर आ जाते हैं जो प्राथमिक संरोप के स्रोत होते हैं। गोभी–वर्गीय खरपतवार भी प्राथमिक संरोप के स्रोत हैं। रोगकारक मुख्य फसलों से दूसरे पौधों पर संक्रमित मृदा, सिंचाई जल या वर्षा, गिरी हुई संक्रमित पत्तियों तथा कभी-कभी कीटों के दवारा फैलता है। फली बीटल (*फीलोट्रेटा क्रुसिफेरी*) कुछ सीमा तक रोग फैलाने में मदद करती है। इस रोग के विकास

के लिए औसत तापमान 25-30° सेल्सियस, अधिकतम 36° सेल्सियस तथा न्यूनतम 5° सेल्सियस है। भारी वर्षा की बूंदें भी इस रोग की वृद्धि में सहायक करती हैं।

रोग-प्रबंधन

रोग-प्रबंधन की निम्नलिखित उपायों को करने से इस रोग के प्रभाव को कम किया जा सकता है:

- बुआई के लिए स्वस्थ बीजों का चुनाव करें।
- खेत से खरपतवारों तथा संक्रमित पौद–मलबे को इकट्ठा करके नष्ट करें।
- जीवाणु एक वर्ष तक मृदा में जीवित रह सकता है। इसलिए गोभी–वर्गीय फसलों के अतिरिक्त दूसरी फसलों को फसल–चक्र में शामिल करें। यह फसल–चक्र कम से कम 2 वर्ष का होना चाहिए।
- कटाई के बाद खेत में अधिक नमी रखने से रोगकारक जीवाणुओं की संख्या कम हो जाती है।
- बीजों को गरम जल (50° सेल्सियस) में 25-30 मिनट तक उपचारित करें। बीजों को जीवाणुनाशियों जैसे स्ट्रेप्टोमाइसिन, औरियोमाइसिन से उपचारित करने के बाद सोडियम हाइपोक्लोराइट से भी उपचारित करें। इसके अतिरिक्त बीजों को कैल्सियम हाइपोक्लोराइट (10-20 ग्राम/किग्रा. की दर से) उपचारित करें। स्ट्रेप्टोसाइक्लिन (100 पी.पी.एम) + कैप्टान (2000 पी. पी. एम.) के मिश्रण में बीज को डुबाकर उपचारित करने से भी इस रोग को नियंत्रित किया जा सकता है।

- बुआई के लिए रोग–प्रतिरोधी किस्मों का चुनाव करें।
- मृदा में ब्लीचिंग पाउडर (10-12.5 किग्रा/हे. दर से) को तरल रूप में मिलाने से लाभ होता है।

7. मृदु विगलन/कर्ड विगलन (Soft rot/Curd rot)

लक्षण

प्रारंभ में पत्तियों के प्रभावित ऊतकों पर जलीय ऊतकक्षयी लक्षण दिखाई देते हैं जो काफी तेजी से बढ़ते हैं। इस रोग से प्रभावित पौधों से सड़ी हुई दुर्गंध आने लगती है। फूलगोभी तथा पत्तागोभी के प्रभावित कर्ड तथा मुंडक से फूल के डंठल नहीं निकलते है।

रोगकारक एवं रोग-अनुकूल परिवेश

मृदु विगलन रोग, *इरविनिया कैरोटोवोरा* उपजाति *कैरोटोवोरा (Erwinia carotovora subsp. carotovora)* नामक जीवाणु से होता है। यह जीवाणु पत्तागोभी, फूलगोभी, ग्लैडियोलस, सलाद, प्याज, मिर्च, आलू, पालक, तरबूज, टमाटर आदि पौधों को भी संक्रमित करता है। जीवाणु सभी स्थानों पर पाया जाता है और मृतजीवी के रूप में मृत तथा रेशेदार पौधों के ऊतकों में मृदा तथा भंडारण स्थलों पर पाया जाता है। इस रोग की वृद्धि के लिए 25-30° सेल्सियस तापमान एवं अधिक आर्द्रता उत्तरदायी होते हैं।

रोग-प्रबंधन

इस रोग के प्रबंध के लिए निम्नलिखित उपाय करने चाहिएः

- फसल की कटाई के समय कर्ड व मुंडक को घाव व खरोंच से बचाएं।

- स्ट्रेप्टोसाइक्लिन को कॉपर ऑक्सीक्लोराइड के साथ मिलाकर छिड़काव करने पर रोग का नियंत्रण किया जा सकता है।

- फूलगोभी के बीज उत्पादन के समय कर्ड विगलन से बचाने के लिए क्लोरोफिनेकॉल तथा कैप्टोफाल (1:25) का गारा (पेस्ट) बनाकर कर्ड को लेप करें तथा इन दोनों का घोल बनाकर (0.01 + 0.25 प्रतिशत) फसलों पर छिड़काव करें।

अध्याय – 19

खीरा–वर्गीय सब्जियों के रोग (Diseases of cucurbits)

खीरा–वर्गीय सब्जियां कुकुरबिटेसी कुल के अंतर्गत आती हैं। इनमें खीरा, लौकी, करेला, कुम्हड़ा, तरबूज, खरबूज, तोरई, कद्दू, पेठा आदि फसलें सम्मिलित हैं। इस वर्ग की सब्जियां भारत में पूरे साल एक क्षेत्र तक उगाई जाती हैं और इन सब्जियों की उपलब्धता पूरे साल बनी रहती है। इसके फलों में कुकुरबीटेसीन्स ए. बी. सी. डी. एवं ई प्रचुर मात्रा में पाए जाते हैं, जो कैंसर प्रतिरोधी होते हैं। इन सब्जियों को उगाने के समय पौधों में बहुत से रोग लगते हैं, जिनमें से रोगों के प्रमुख लक्षण, रोगकारक, रोग-अनुकूल परिवेश तथा समुचित प्रबंधन का संक्षिप्त वर्णन नीचे किया गया है।

1. मृदु-रोमिल आसिता (Downy mildew)

लक्षण

यह खीरा–वर्गीय फसलों का पूरे विश्व में गंभीर रोग है। इस रोग का प्रकोप उस जगह अधिक होता है, जहां पर्याप्त नमी,

बीच में वर्षा तथा मध्यम तापमान होता हैं। इस रोग का आक्रमण पुराने पौधों की अपेक्षा नए पौधों पर अधिक होता है। इस रोग के लक्षण पत्तियों की निचली सतह पर नसों के बीच के स्थान पर कोणीय, अर्ध–पारदर्शी, बैंगनी–भूरे रंग के धब्बों के रूप में दिखते हैं तथा उसकी ठीक ऊपरी सतह पर हल्के पीले रंग के धब्बे बनते हैं। नमी वाले मौसम में रोगकारक के सफेद–धूसर रंग कवकजाल, बीजाणुधर तथा बीजाणु पत्तियों की निचली सतह पर दिखाई देते हैं। पत्तियों के उपरी सतह पर उतकक्षयी विक्षत केंद्र से बाहर की ओर भूरे रंग के हो जाते हैं। लताओं के बीच की पत्तियां पहले संक्रमित होती हैं तथा रोग के बढ़ने पर उपर तथा नीचे की तरफ की पत्तियां भी संक्रमित होती हैं तथा पूरा पौधा मर जाता है। इस रोग से फल कम ही प्रभावित होते हैं, लेकिन रोग की तीव्रता बढ़ने पर फल की परिपक्वता पर असर पड़ता है तथा उसकी सुगंध और गुणवत्ता कम हो जाती है।

रोगकारक एवं रोग-अनुकूल परिवेश

यह रोग *स्यूडोपेरोनोस्पोरा क्यूबेन्सिस (Pseudoperonospora cubensis)* नामक कवक से होता है। रोगकारक कवकजाल एवं बीजाणुधानीधर के रूप में मुख्य फसल की अनुपस्थिति में दूसरे जीवित पोषक पौधों पर जीवित शेष रहता है। यह कवक घरेलू एवं जंगली खीरा–वर्गीय फसलों पर पूरे साल जीवित रहता है। पत्तियों पर स्वतंत्र जल की उपस्थिति में बीजाणुधानी अंकुरित होकर बीजाणु पैदा करती है। बीजाणु के कुछ समय तक पानी में तैरने के बाद इनके कशाभ*(फ्लेजेला)* हट जाते हैं और ये बीजाणु पुटीभूत होकर अंकुरित करते हैं तथा जनन–नलिका बनाते हैं। यह जनन-नलिका खुले हुए रंध्र में प्रवेश करती है तथा बढ़कर दो कोशिकाओं के बीच के स्थान में कवकजाल के रूप में फैल जाती है। कोशिका के अंदर कवक का हिस्टोरिया

होता है जिससे कवक अपना भोजन, पोषक पौधों की कोशिकाओं से लेते हैं। संक्रमण के 3-7 दिनों के बाद रोग के लक्षण दिखाई देने लगते हैं जिसमें बीजाणुधानीधर एवं बीजाणु पैदा होते हैं जो हवा के द्वारा उड़कर दूसरे पौधों या खेतों में पहुंचते हैं। ओस होने पर बीजाणुधानी के अंकुरण तथा संक्रमण की संभावना अधिक बढ़ जाती है। यह कवक मध्य रात्रि के पहले बीजाणुधानी पैदा करता है जो तीन बजे रात्रि तक परिपक्व हो जाती है। बीजाणु बनने के लिए लगभग 20° सेल्सियस तापमान अच्छा होता है तथा इसी तापमान पर कवक के बीजाणुधानी का अंकुरण तथा संक्रमण भी अधिक होता है। कमजोर पौधे इस रोग से अधिक प्रभावित होते है। फॉस्फोरस रोग की सघनता को कम करता है जबकि नाइट्रोजन एवं पोटाश रोग को बढ़ाते हैं।

रोग-प्रबंधन

इस रोग का प्रबंध निम्नलिखित प्रकार से किया जा सकता है:

- संक्रमित पौधों के अवशेषों को खेत से निकाल कर नष्ट कर दें।
- रोगी बेलों को काटकर नष्ट कर दें।
- खीरा-वर्गीय खरपतवारों को खेत से निकाल दें।
- अधिक सघन फसलें न उगाएं।
- छिड़काव विधि से फसलों की सिंचाई न करें।
- फसलचक्र में खीरा–वर्गीय सब्जियों को लगातार सम्मिलित न करें।
- मैंकोजेब या रिडोमिल जेड–72 (2.5 ग्राम प्रति लिटर

पानी) का घोल बनाकर खड़ी फसल में 10–15 दिन के अंतराल पर 3–4 बार छिड़काव आवश्यकतानुसार करें।

2. चूर्णिल आसिता (Powdery mildew)

लक्षण

इस रोग के लक्षण सर्वप्रथम पत्तियों की ऊपरी सतह तथा तनों पर सफेद चूर्ण के चूरे की तरह धब्बे दिखाई देते हैं। बाद में धीरे–धीरे बढ़कर, ये धब्बे आपस में मिल जाते हैं और पूरी पत्तियों को पूरी तरह से ढ़क लेते हैं जिससे कवक की सफेद चूर्णिल वृद्धि होती है। रोग के बढ़ने पर पौधे का ऊपरी भाग पीला पड़कर सूखने लगता है। पौधों की वृद्धि रुक जाती है और फल को अधिक नुकसान होता है।

रोगकारक एवं रोग–अनुकूल पर्यावरण

यह रोग कवकों के तीन रोगकारकों के द्वारा होता है – *इरीसाइफी सीकोरेसिएरम (Erysiphe cichoracearum), स्फेरोथीका फ्यूलिजिनिया (Sphaerotheca fuliginea)* तथा *लेवेलुला टारिका (Leveillula taurica)* । ये सभी रोगकारक कवकजाल या कोनिडियम के रूप में स्वतः उगे हुए खीरा–वर्गीय पौधों या खरपतवारों पर उत्तरजीवी रहते हैं। कभी-कभी ये क्लिस्टोथिसिया के रूप में भी उत्तरजीवी रहते हैं। प्राथमिक संक्रमण एस्कोस्पोरों या कोनिडियमों के द्वारा होता है जो हवा के द्वारा फैलकर नए पौधों पर पहुंचता है और वहां पर अंकुरित होता है। बीजाणु अंकुरित होकर जनन-नलिका बनाते हैं जो पौधे के अंदर प्रवेश करके, पूरी पत्तियों को ढ़क लेते हैं, तथा उसमें बहुत से कोनिडियम बनते है जो हवा के द्वारा उड़कर दूसरे पौधों में द्वितीयक संक्रमण कर देते हैं। इस रोग की वृद्धि के लिए

मध्यम एवं गरम तापमान सहायक होता है। 15–20° सेल्सियस तापमान *स. फ्यूलीजीनिया* के लिए 20–25° सेल्सियस *ई. साइकोरेसिएरम* की वृद्धि के लिए उत्तम होता है। पोषक पौधों के सतह पर स्वतंत्र जल की सतह होने पर, रोग कवक के कवकजाल वृद्धि तथा कोनिडियमों के अंकुरण के लिए हानिकर है। *ई. साइकोरेसिएरम* के द्वारा होने वाले रोग की वृद्धि के लिए 60–80 प्रतिशत आपेक्षिक आर्द्रता आवश्यक होती है। सूखी अवस्था रोगकारक की वृद्धि और कोनिडियमों के बनने में सहायक होती है।

रोग-प्रबंधन

इस रोग का प्रबंधन निम्नलिखित प्रकार से किया जा सकता है:

- संक्रमित पौधों के अवशेषों तथा खरपतवारों को खेत से निकाल कर नष्ट कर दें।
- रोग के लक्षण दिखाई देने पर सल्फैक्स (0.2 प्रतिशत), कैलिक्सिन (0.1 प्रतिशत) या कैराथेन (0.06 प्रतिशत) का पानी में घोल बनाकर 10-15 दिन के अंतराल पर पौधों पर 2-3 छिड़काव करें।

3. श्यामव्रण (Anthracnose)

लक्षण

संक्रमित पौधों की पत्तियों, तनों एवं फलों पर भूरे, गोल या कोणीय धब्बे दिखाई देते हैं । फलों पर धब्बे गोलाकार, गीले और दबे हुए होते हैं। पत्तियों पर शिराओं के पास खुरदरे, गोलाकार, हल्के भूरे से लाल रंग के धब्बे दिखाई देते है ये धब्बे बाद में बढ़कर 1 सेमी. से अधिक व्यास के हो जाते हैं; धब्बे केंद्र में फट

जाते हैं या उनका केंद्रीय भाग गिर जाता है, जिससे उन धब्बों के बीच में छिद्र बन जाता है। रोगी पत्तियां विकृत हो जाती हैं तथा कई धब्बों के आपस में मिलने से सूख जाती हैं। फलों पर पुरानी विक्षतियां काले धब्बों में बदल जाती हैं तथा उन पर गुलाबी रंग के कवक के कोनिडियमों के झुंड दिखाई पड़ते हैं। विशेषकर आर्द्र मौसम में पर्णवृंत तथा तनों पर लंबवत् उथली विक्षति पाई जाती है। शुरू में फलों में संक्रमण होने पर वे अपरिपक्व अवस्था में गिर जाते हैं या कुरुप हो जाते हैं।

रोगकारक एवं रोग-अनुकूल परिवेश

यह रोग, *कोलेटोट्राइकम ओरबीकुले (Colletotrichum orbiculare)* नामक कवक से होता है। रोगकारक तरबूज, खरबूज तथा खीरा के अतिरिक्त दूसरी खीरा-वर्गीय फसलों, जैसे लौकी, कुम्हड़ा, पेठा, ककड़ी, चिंचिड़ा तथा टिंडे को भी संक्रमित करता है। यह रोगकारक बीजोढ़ (Seed borne) होता है। यह संक्रमित पौधों के अवशेषों तथा दूसरे एच्छिक पौधों पर जीवित शेष रहता है। उचित वातावरण मिलने पर कोनिडियम पौधों के धब्बों पर बनते हैं तथा वर्षा की बूंदों, सिंचाई जल, भृंग (बीटल) तथा दूसरे कीड़ों की सहायता से स्वस्थ पौधों पर फैल जाते हैं तथा पौधों में द्वितीयक संक्रमण करते हैं। आर्द्र मौसम तथा वर्षा जल इस रोग के संक्रमण के लिए आवश्यक होते हैं। कोनिडियमों के अंकुरण के लिए 22–27° सेल्सियस तापमान तथा 100 प्रतिशत आपेक्षिक आर्द्रता 24 घंटे तक रहने पर इष्टतम होते हैं। उचित वातावरण मिलने पर संक्रमण के 72 घंटे बाद रोग के लक्षण दिखाई देने लगते हैं।

रोग-प्रबंधन

इस रोग का प्रबंधन निम्नलिखित विधियों से किया जा सकता है:

- फसल अवशेषों को कटाई के बाद खेत से निकालकर नष्ट कर दें तथा इसे खेत की गहरी जुताई-कटाई के तुरंत बाद कर लें।
- कम से कम एक साल का फसल चक्र बिना खीरा–वर्गीय फसल के अपनाएं।
- खीरा–वर्गीय कुल के खरपतवारों को खेत तथा उसके चारों तरफ से निकाल कर नष्ट कर दें।
- बुआई हेतु स्वस्थ एवं प्रमाणित बीज का प्रयोग करें।
- बीज को थीरम, कार्बेन्डाजिम या कार्बोक्सीन (2.5 ग्राम प्रति किग्रा. बीज की दर) से उपचारित करें।
- रोग के लक्षण दिखाई देने पर खड़ी फसल में मैंकोजेब (0.25 प्रतिशत) का पानी में घोल बनाकर 10–15 दिन के अंतराल पर छिड़कव करते रहें।

4. फ्यूजेरियम म्लानि रोग (उकठा) (Fusarium wilt)

लक्षण

पौधों में इस रोग के लक्षण मुख्य रूप से फूल तथा फल के बनने के समय दिखाई देते हैं। इस रोग से शुरू में पत्तियां मुरझा जाती है; तथा कभी पीली पड़ जाती हैं या पत्तियों के किनारे ऊतकक्षयी हो जाते हैं। पौधों में भूमि के पास की पत्तियां पहले मुरझाती हैं तथा बाद में ऊपर की तरफ रोग के लक्षण दिखाई देने लगते हैं। म्लानि या तो तुरंत या धीरे–धीरे फैलती है और

लगभग 4–5 दिन में पूरा पौधा सूख जाता है। संवहनी ऊतक बदरंग हो भी सकते हैं और नहीं भी। कभी पौधों में स्पष्ट म्लानि के लक्षण नहीं भी दिखाई देते, लेकिन पौधा बहुत छोटा रह जाता है तथा उस पर फल भी नहीं लगते हैं।

रोगकारक एवं रोग-अनुकूल परिवेश

यह रोग, *फ्यूजेरियम ऑक्सीस्पोरम* फ. स्पी. *कुकुमेरिनम (Fusarium oxysporum* f. sp. *cucumerinum) फ्यू. ऑ.* एफ. एसपी. *मेलोनिस (F. oxysporum* f. sp. *melonis), फ्यू. आक्सीस्पोरम एफ. स्पी नाईवियम (F oxysporum* f. sp. *niveum), फ्यू ऑक्सीस्पोरम एफ. स्पी. लेजीनेरी (F. oxysporum* f. sp. *lagenariae)*, तथा फ्यू *आक्सीस्पोरम* एफ. स्पी. *मोमोर्डीकी (F oxysporum* f. sp. *momordichi)* नामक कवकों से होता है। रोगकारक बीज तथा मृदा से उत्पन्न होते हैं तथा क्लैमाइडोस्पोर के रूप में मृदा में उत्तरजीवी रहते हैं। रोगकारक नए क्षेत्र में संक्रमित बीज के द्वारा फैलते हैं। रोगकारक कवक, अंकुरित बीज के द्वारा या कीड़ों तथा सूत्रकृमि (*मेलाइडोगाइनी इंकोनीटा*) के द्वारा या जड़ों में घाव करने के स्थान से पौधों के अंदर प्रवेश करते हैं। म्लानि रोग के विकास के लिए 18-22° सेल्सियस तापमान अच्छा होता है। परंतु 21° सेल्सियस तापमान सबसे अनुकूल होता है। अधिक नाइट्रोजन तथा कम पोटेशियम एवं कैल्शियम की मात्रा रोग की वृद्धि में मदद करती है।

रोग-प्रबंधन

इस रोग का प्रबंधन निम्नलिखित प्रकार से किया जा सकता है:

- बुआई के लिए स्वस्थ एवं प्रमाणित बीजों का प्रयोग करें।

- संक्रमित पौधों के अवशेषों तथा खरपतवारों को खेत से निकाल कर नष्ट कर दें।
- फसलचक्र में लहसुन, मूली, प्याज, चुकंदर तथा रिजका (लूसर्न) आदि फसलों को सम्मिलित करें।
- मृदा का सौर्यन (सौरीकरण) करें।
- खरबूजे की रोगरोधी किस्मों, जैसे दुर्गापुरा, मधु, पंजाब सुनेहरी, का प्रयोग बोआई के लिए कर सकते हैं।
- पौधों की वृद्धि को बढ़ाने वाले जीवाणु जैसे *स्यूडोमोनास प्युटीडा* तथा *सेरेटिया मारसेन्स* का प्रयोग करने पर खीरा वर्गीय फसलों में रोगरोधिता बढ़ जाती है।

5. कोणीय पर्णचित्ती *(Angular leaf spot)*

लक्षण

इस रोग के लक्षण पत्तियों, तना, फूलों तथा फलों पर छोटे जलीय धब्बे के रूप में दिखाई देते हैं। अनुकूल मौसम में, धब्बे पर्णपटल पर बढ़ते हैं, जो पत्तियों की शिराओं से बंधे होते हैं और कोणीय हो जाते हैं। बाद में, ये धब्बे गहरे भूरे रंग के होते हैं जो बढ़कर अनियमित आकार के होकर, अंगमारी या झुलसे हुए से दिखाई देते हैं। तरबूज एवं पेठे पर ये धब्बे काले या गहरे रंग के होते हैं तथा धब्बों के चारों ओर पीले रंग का घेरा होता है। इन धब्बों पर जीवाण्विक निपंक (Ooze) बनता है धब्बे के केंद्र से मरे हुए ऊतक गिर जाते हैं जिससे धब्बों में छेद दिखाई देता है। फलों पर छोटे, भूरे से काले सतही धब्बे दिखाई देते हैं।

रोगकारक एवं रोग-अनुकूल परिवेश

यह रोग, *स्यूडोमोनास सिरिंजी पैथोवार लैक्रीएन्स*

(*Pseudomonas syringe* pv. *lachryans*) नामक जीवाणु से होता है। इस रोग का जीवाणु संक्रमित पौधों के अवशेषों (जो मृदा में रहते हैं) तथा संक्रमित बीजों में जीवित शेष रहता है। बीज के अंकुरित होने पर जीवाणु बीजपत्र पर पहुंच जाता है। जीवाणु पत्तियों में चोट लगे स्थान या रंध्र से होकर ओस या जल की उपस्थिति में प्रवेश करता है। जीवाणु वर्षा के झोंकों तथा सिंचाई जल के द्वारा एक स्थान से दूसरे स्थान पर फैलता है। इस रोग के विकास के लिए नमी महत्वपूर्ण कारक है। एवं 20–24° सेल्सियम तापमान इष्टतम होता है।

रोग-प्रबंधन

इस रोग का प्रबंधन निम्नलिखित प्रकार से किया जा सकता है–

- संक्रमित पौधों के अवशेषों को खेत से निकालकर नष्ट कर दें।
- बुआई के लिए रोगरहित बीजों का चुनाव करें।
- गर्म जल से बीजों को उपचारित करने से रोग लगने की संभावना कम हो जाती है।
- बीजों को प्रतिजैविक रसायनों (100–250 पीपीएम) का घोल बनाकर उपचारित करें।
- खड़ी फसल में रोग के लक्षण दिखाई देने पर प्रतिजैविक दवाएं स्ट्रेप्टोसाइक्लिन या स्ट्रेप्टोमाइसिन सल्फेट (100–250 पीपीएम) तथा कॉपर कवकनाशी जैसे ब्लाइटॉक्स - 50 (0.25 प्रतिशत) का घोल बनाकर छिड़काव करें। कॉपर कवकनाशी का छिड़काव गर्म दिनों में या नये पौधों पर न करें।

6. खीरा-मोजेक (Cucumber mosaic)

लक्षण

यह रोग फसल की किसी भी अवस्था में लग सकता है। इस रोग के लक्षण सबसे पहले ऊपरी नई पत्तियों में हरे एवं पीले रंग की छींट के रूप में मोजेक रोग के लक्षण दिखाई देते हैं। रोग का व्यापक प्रभाव होने पर पत्तियां कुरूप, झुर्रीदार एवं छोटी हो जाती हैं। रोगी बेलों में फल कम लगते हैं।

रोगकारक एवं रोग-अनुकूल परिवेश

कुकुम्बर मोजेक विषाणु (Cucumber mosaic virus) के द्वारा होता है। यह विषाणु दूसरे पोषक पौधों तथा खरपतवारों पर जीवित रहता है। यह विषाणु माहू के द्वारा एक पौधे से दूसरे पौधे या खेतों में स्थानांतरित होता है।

रोग-प्रबंधन

इस रोग का प्रबंधन निम्नलिखित प्रकार से किया जा सकता है:

- संक्रमित पौधों को खेत से निकालकर जला दें।
- फसल पर शुरू से ही कीटनाशी रसायन जैसे ऑक्सीमेथिल डिमेटान के घोल (1 मिली लि. प्रति लि. पानी) की दर से छिड़काव करें।

अध्याय – 20

मटर के रोग (Diseases of pea)

मटर (*पाइसम सैटाइवम* एल. – *Pisum sativum L-*) दलहनी एवं सब्जी फसलों में एक महत्वपूर्ण फसल है। विश्व में यह ठंडे जलवायु में उगाई जाने वाली फसल है। भारत के मैदानी भागों में यह रबी की फसल है जबकि पहाड़ों पर गर्मियों की है। भारत में ताजी मटर का उपयोग विभिन्न प्रकार की सब्जियों जैसे आलू–मटर, मटर–पनीर के रूप में किया जाता है। मटर में स्टार्च के अलावा रेशा, प्रोटीन, विटामिन्स, खनिज लवण तथा ल्यूटीन पाया जाता है। मटर में कवकों, जीवाणुओं एवं विषाणुओं के द्वारा बहुत से रोग पाए जाते हैं, जो फसल की पैदावार के अलावा उसकी गुणवत्ता को प्रभावित करते हैं। इस अध्याय में मटर के प्रमुख रोगों के लक्षण, रोगकारकों रोग–अनुकूल परिवेश तथा रोग–प्रबंधन का संक्षिप्त वर्णन किया गया है।

1. चूर्णिल आसिता रोग (Powdery mildew)

लक्षण

चूर्णिल आसिता रोग के लक्षण पौधों के सभी हरे भागों पर दिखाई देते हैं। निचली पत्तियों के दोनों सतहों पर सफेद

कवकजाल एवं कोनिडियमों के चूर्ण लिए धब्बे बिखरे रहते हैं। शुरू में धब्बों छोटे होते हैं परंतु अनुकूल वातावरण मिलते ही चारों ओर फैलकर पौधों के सभी भागों को ढक लेते हैं। कोनिडियम तथा कोनिडियमधर जब बहुतायत में पत्तियों तथा पौधों के अन्य भागों जैसे फलियों, डंठलों आदि भागों पर बनते हैं तो ऐसा लगता है कि पूरी फसल पर आटे का बुरकाव किया गया हो और दूर से फसल सफेद दिखती है। जब कोनिडियम का उत्पादन बंद हो जाता है तो पत्तियों की सतह पीली–भूरी हो जाती है तथा पर्णीय भाग मर जाते हैं।

रोगकारक एवं रोग-अनुकूल परिवेश

यह रोग, *एरिसाइफी पीसी (Erysiphe pisi)* नामक कवक से होता है। यह रोगकारक मटर के अतिरिक्त दूसरे फसलों जैसे खेसरी *(लेथाइरस स्पेसीज)*, अरहर *(कजनस कजान)*, चना, *(साइसर एरिटिनम)*, *क्लिटोरिया वाइफ्लोरा, क्रोटोलेरिया जान्सिया, मैक्रोप्टीलियम एट्रोपर्प्यूरियम, मेडिकागा पालीमार्फा, पाइसम आरवेन्स, वीदीटीया सैटाइवा,* उर्द *(विग्ना मुंगा) विग्ना अम्बेलाटा, विग्ना साइनेन्सिस, सेसवेनिया एक्यूलिएटा स. ईजिप्टियाका, फिजियोलस मूंगो* तथा *फि. वलगेरिस* आदि को भी संक्रमित करता है। यह कवक अविकल्पी परजीवी है तथा क्लिस्टोथिसिया के रूप में गिरे हुए संक्रमित पौधे के मलबे तथा कभी–कभी बीज में प्रसुप्त कवकजाल या कोनिडियमों के रूप में पोषक पौधों पर जीवित रहता है। प्राथमिक संक्रमण पौधे की निचली पत्तियों में हवा में मुड़े हुए एस्कोस्पोरों के द्वारा होता है। कोनिडियम बिना जल तथा पूर्ण सूखे वातावरण में भी अंकुरित हो सकते हैं। कोनिडियम बहुतायत में प्राथमिक संक्रमित भाग में बनते हैं तथा वहां से हवा द्वारा फैलकर पौधों में द्वितीयक संक्रमण करते हैं। सूखे मौसम तथा मध्यम तापमान में यह रोग अधिक होता है। आपेक्षिक

आर्द्रता की अपेक्षा इस रोग के लिए तापमान का अधिक प्रभाव होता है। यह रोग उस समय अधिक होता है जब पौधों को नाइट्रोजन एवं आयरन अधिक देते हैं और फॉस्फोरस, पोटाश, जिंक एवं कॉपर की मात्रा आवश्यकतानुसार कम देते हैं, परंतु जब फॉस्फोरस, पोटाश तथा जिंक की मात्रा दुगना कर दी जाती है और नाइट्रोजन तथा लौह कम मात्रा में पौधों को दिया जाता है तो इस रोग का आपतन कम हो जाता हैं। फूल आते समय सिंचाई करने से पौधों में इस रोग हेतु सुग्रहिता बढ़ जाती है।

रोग-प्रबंधन

इस रोग का प्रबंधन निम्नलिखित उपायों से किया जा सकता है:

- संक्रमित पौधों के अवशेषों को खेत से निकालकर नष्ट कर दें।
- पौधों को अधिक सघन न उगाएं।
- रोगरोधी किस्में जैसे रचना, पंत मटर–5, अपर्णा, डी. एम.आर-9, डी.एम.आर.-11, पंत मटा–9, बी.जी.-1, बी. जी.-2, सुगर जैन्ट टाल आदि की बोआई करें।
- खड़ी फसल पर गंधक के चूर्ण (25–30 किग्रा/हेक्टेयर की दर से) का बुरकाव करें या कैराथेन (डाइनोकैप) 600 मिली./1000 लिटर पानी में घोल बनाकर छिड़काव करें। इसके अतिरिक्त केलिक्सिन, सल्फेक्स, विज़िल (डाइक्लोबुट्राजोल, बेलेटान (ट्राइएडीमेफान), टिल्ट (प्रोपीकोनाजोल), रूविगान (फेनरीमाल), पंच (फ्लुसिलाजोल), कैन्टाफ (हेक्साकोनाजोल), टोपास (पेन्कोनाजोल), स्कोर (डिफेनकोनाजोल), सैप्रोल

(ट्राइफोरिन) और टेबुकोनाजोल आदि कवकनाशियों का प्रयोग करके, इस रोग को प्रभावी ढंग से नियंत्रित किया जा सकता है। लेकिन यह ध्यान रखना चाहिए कि लगातार एक ही कवकनाशी का प्रयोग न करें।

2. मृदारोमिल आसिता (Downy mildew)

लक्षण

इस रोग के लक्षण पौधों की निचली पत्तियों में पहले दिखाई देते हैं जो बाद में ऊपरी पत्तियों तक फैल जाते हैं। पौधों में दो तरह के संक्रमण होते हैं (1) स्थानीय और (2) सर्वांगी संक्रमण। स्थानीय संक्रमण में पत्तियों की ऊपरी सतह (डंठल के नीचे की पत्तियों तथा डंठल तथा कभी–कभी तनों पर) गोल, पर लंबबत् पीले–भूरे धब्बे दिखाई देते हैं। पत्तियों की निचली सतह पर धब्बे के ठीक नीचे रूई जैसी आकृति की कुछ उभरी हुई सफेद या मटमैले रंग की कवक–वृद्धि दिखाई देती है, जो कवक के बीजाणु, बीजाणुधानी तथा बीजाणुधानीधर पर होती है। सर्वांगी संक्रमण में पौधे की वृद्धि रुक जाती है, पौधे बौने हो जाते हैं एवं फूल आने से पहले ही मर जाते हैं। फलियों पर हल्के हरे धब्बे दिखाई देते हैं, जो बाद में भूरे रंग में बदल जाते हैं। इस दशा में बीज छोटे रह जाते हैं या बनते ही नहीं हैं।

रोगकारक एवं रोग-अनुकूल परिवेश

यह रोग, *पेरोनोस्पोरा पीसी (Peronospora pisi)* नामक कवक से होता है। रोगकारक मृदा में निषिक्तांडों के रूप में अधिक समय तक जीवित रहते हैं। कभी–कभी यह रोग संक्रमित बीज के द्वारा फैलता है। प्राथमिक संक्रमण पौधों में निषिक्तांडो द्वारा होता है और द्वितीयक संक्रमण बीजाणुओं द्वारा होता है जो

हवा से प्राथमिक संक्रमण से अन्य जगहों पर फैलते हैं। रोग के लिए नमीयुक्त मौसम तथा लंबे समय तक ठंडा मौसम अनुकूल होता है। बीजाणु सबसे अच्छे 4–8° सेल्सियस तापमान में अंकुरित होते हैं और बीजाणुओं के उत्पादन के लिए 12 घंटे तक अधिक आर्द्रता की आवश्यकता होती है।

रोग–प्रबंधन

- संक्रमित पौधों को इकट्ठा करके नष्ट कर दें।
- कम से कम तीन साल का फसल–चक्र अपनाएं।
- बुआई के लिए स्वस्थ बीजों का चुनाव करें। पौधों को कुछ अधिक दूरी पर लगाएं।
- गर्मियों में खेत की गहरी जुताई करें।
- खेत में जल–निकास की उचित व्यवस्था करें।
- बीज की बुआई से पहले उसे एप्रान (4 ग्राम/किग्रा. की बीज की दर) से उपचारित करें।
- रोग के लक्षण दिखाई देने पर मैन्कोजेब या रिडोमिल एम. जेड. –72 का 2.5 किग्रा. /1000 लिटर पानी में घोल बनाकर प्रति हेक्टेयर की दर से आवश्यकतानुसार 3–4 छिड़काव पौधों पर करें।

3. रतुआं/किट्ट (Rust)

लक्षण

इस रोग के लक्षण के रूप मे पत्तियों की निचली सतह पर बहुतायत में धब्बे पाए जाते हैं। इसके अतिरिक्त पौधों में मृदा के ऊपरी सभी भागों पर रोग के लक्षण दिखाई देते हैं। छोटे, उठे

हुए धब्बे बाद में स्पष्ट पीले, वर्तुल सोरी (sori) हो जाते हैं। पीले धब्बों पर एसिया लंबे समय तक दृढ़ता से रहते हैं। यूरोडोस्पोर पत्तियों की दोनों सतहों पर तथा अन्य भागों पर भी पाए जाते हैं। इस रोग का अत्यधिक संक्रमण होने पर पौधों में हल्के भूरे चूर्णिल सा आभास देता है। पत्तियों, तनों तथा डंठलों में गहरे भूरे या काले टेल्यूटोस्पार देर में दिखाई देते हैं।

रोगकारक एवं रोग–अनुकूल परिवेश

मटर के रतुआ रोग के लिए यूरोमाइसीज की दो जातियां, *रोमाइसीज पीसी (Uromyces pisi)* तथा *यू वीसी – फैबी (U. viciae - fabae)* उत्तरदायी हैं। *यू. बीसी – फैबी* पूरे संसार में पाया जाता है और यह औटोसियस किट्ट है जिसकी सभी बीजाणु–अवस्थाएं उसी पोषक पौधों पर पाई जाती हैं तथा कवक के जीवनचक्र पूरा करने के लिए किसी दूसरे वैकल्पिक पोषक पाधों की आवश्यकता नहीं होती है। मटर के अतिरिक्त दूसरे को भी संक्रमित करती है। इसके अवशेष पौधों फसल के मलबे में पाए जाते है। भारत में ये कवक खरपतवारों जैसे *लेथाइरस* एवं *वीसिया जातियों* से संबंधित पौधों पर रहते है। एवं *(वी. एमोइना वार. सैकेलीनेन्सिस, बी क्रंसिया वार जैपोनिका, वी. फेबा, बी जैपोनिका) लेथाइरस मर्टिटीमस ले. पालुस्ट्रिीस,* वार *लीनीएफोलियस*, ले, *ओडोरेटस* एवं मसूरी को संक्रमित करते हैं। यह मृदा से उत्पन्न रोग है क्योंकि टेलियोस्पोर से संबंधित पौधों पर रहते हैं। इसके बीजाणु हवा द्वारा रोगी पौधों से स्वस्थ पौधों पर पहुंचते हैं। इस रोग के संक्रमण के लिए 17–22° सेल्सियस तापमान की आवश्यकता होती है।

रोग-प्रबंधन

इस रोग का प्रबंधन निम्नलिखित प्रकार से किया जा सकता है:

- संक्रमित पौधों के मलबे को खेत से निकाल कर नष्ट कर दें।
- 2–3 साल का फसल–चक्र अपनाएं जिनमें बाकला (ब्रॉड बीन्स) वीसिया तथा लेथाइरस फसलों को सम्मिलित न करें।
- मैन्कोजेब, ट्राइएडिमेफान, ट्राइएडिमेफान, ट्राइडेमार्क, मैन्कोजेब + ट्राइडेमार्क हेक्साकोनाजोल, पेनकोनाजोल, फ्लूसिलाजोल और डाइफेनकोनाजोल आदि कवकनाशियों का उचित मात्रा में छिड़काव करें।

4. फ्यूजेरियम म्लानि (Fusarium wilt)

लक्षण

मटर में म्लानि रोग के दो प्रकार के लक्षण होते हैं: 1. वास्तविक म्लानि, तथा 2. लगभग म्लानि। वास्तविक म्लानि में रोग का संक्रमण पौधे की किसी भी अवस्था में हो सकता है। इस रोग के प्रथम लक्षण पौधों की निचली पत्तियों का पीला होना, पौधों का छोटा रह जाना तथा वामनपन है। छोटी पत्तियां नीचे तथा अंदर की तरफ मुड़ जाती हैं। तना मृदा के पास मोटा हो जाता है। निचले तने को काटने के बाद संवहनी ऊतक हल्के से पीले, नारंगी भूरे तथा अंत में काले हो जाते हैं। प्रभावित पौधा मुरझा जाता है तथा धीर-धीरे या तेजी से मर जाता है। ये खेत में वर्तुलाकार या अंडाकार की तरह दिखते हैं। लगभग म्लानि में भी पौधा किसी भी अवस्था में संक्रमित हो सकता है। पौद बाहर निकलते ही गिर जाती है तथा अंत में मर जाती है। बड़े पौधों में

मृदा के नीचे तने पर कैंकर विकसित हो जाता है और ऊपर तथा नीचे दोनों तरफ बढ़ता है। मूसला जड़ों के पूरे बल्कुट (Cortex) प्रभावित होते हैं, पौधा वास्तविक म्लानि की अपेक्षा धीरे–धीरे मरता है और इसके संवहनी ऊतक नारंगी, चमकीले, ईंट की तरह लाल रंग के हो जाते हैं। इसमें म्लानि की अपेक्षा बिखरे हुए लक्षण खेत में दिखते हैं।

रोगकारक एवं रोग–अनुकूल परिवेश

मटर का म्लानि रोग, *फ्यूजेरियम ऑक्सीस्पोरम* फ. स्पी. पीसी (*Fusarium oxysporum f- sp- pisi*) नामक कवक के द्वारा होता है। यह रोगकारक बहुत से पौधों जैसे *वीसिया जीजेन्टिया, वी. फेबा, रिजका* (लूसर्न) *स्वीट क्लोवर,* वेच, सोयाबीन, गारडेन मटर, लाल क्लोवर, *साइमोप्सीस टेट्रागोना,* मसूर, मेथी और *क्लाएन्थस डेम्पफेरी* आदि पौधों को संक्रमित करता है। रोगकारक मृदा उत्पन्न है जो कि 10 साल या उसमें अधिक समय तक क्लोमाइडोस्पोरों के रूप में मृदा में जीवित रह सकता है। इसके अलावा यह बीज-आवरण पर भी पाया जाता है। मरे हुए पौधों के तनों तथा जड़ों में यह कवक माइक्रोकोनिडियम तथा मैक्रोकोनिडियम तथा क्लेमाइडोस्पोरों के रूप में रहता है। ये बीजाणु मुख्य रूप खुले हुए रंध्र के संक्रमण के लिए आवश्यक होते हैं। रोगकारक, पाधे तनों से होकर ऊपर की ओर बढ़ते हैं और ऊपरी शाखाओं के दारु(जाइलम) में पाए जाते हैं जिससे संवहनी ऊतकों में पानी का बहाव रुक जाता है और पौधों में पीले, छोटे तथा म्लानि के लक्षण दिखाई देते हैं। यह रोग क्षारीय मृदा की अपेक्षा अम्लीय मृदा में अधिक होता है। वास्तविक म्लानि के लिए मृदा का तापमान 23–27° सेल्सियस तक अधिक अनुकूल होता है जबकि लगभग म्लानि के लिए थोड़ा अधिक तापमान (27° सेल्सियस से ऊपर) अनुकूल होता है।

रोग-प्रबंधन

यदि एक बार इस रोग का प्रवेश खेत में हो जाए तो इसको नियंत्रित करना कठिन होता है। फिर भी निम्नलिखित उपाय सुझाए गए हैं जिनका प्रयोग समेकित रूप से करने पर लाभ होता है:

- मटर की बोआई 15 नवंबर के बाद करें।
- खेत को पानी से भरने पर म्लानि रोग कम लगता है।
- संतुलित उर्वरकों (नाइट्रोजन, फॉस्फोरस तथा पोटाश) का प्रयोग करने से मटर के म्लानि रोग को कम किया जा सकता है।
- बीज को कैप्टाफॉल (0.1 प्रतिशत) + कैप्टान (0.2 प्रतिशत) को 1:1 के अनुपात में घोल बनाकर उपचारित करने या बीज को 30° सेल्सियस पर 30 मिनट डुबाकर रखने से रोग को नियंत्रित कर सकते हैं।
- क्लोरोपाइरीफॉस (0.4 प्रतिशत) तथा बेविस्टीन (0.05 प्रतिशत) से बीजोपचार करने से स्टेम फ्लाई तथा म्लानि रोग को नियंत्रित किया जा सकता है।

5. जीवाणुज अंगमारी (Bacterial blight)

लक्षण

इस रोग के लक्षण पौधों के सभी वायवीय भागों में दिखाई देते हैं। शुरू में रोग के लक्षण छोटी पत्तियों तथा स्टीपलों पर छोटे, जलीय विक्षति के रूप में दिखाई देते हैं, जो बाद में, बड़े होकर अनियमित आकार (1–1.5 सेमी.) के बन जाते हैं तथा स्पष्ट पंखे की तरह दिखाई देते हैं। यदि संक्रमण उस स्थान पर

हो जहां स्टीपल तने से मिलता है या छोटी पत्तियां मध्य शिरे से मिलती हैं तो तनों पर गहरे भूरे, इलिर्स्टक क्षेत्र आता है जो कि तने को घेर कर कई सेन्टीमीटर तक फैल जाते हैं। अनुकूल वातावरण में, विक्षति पर क्रीम रंग का जीवाण्विक स्राव निकलने लगता है। फलियों पर गहरे हरे, वर्तुल या अनियमित जलीय विक्षतियां दिखाई देती हैं, जो बाद में गहरे भूरे रंग की तथा चमकदार हो जाती हैं। कलियां खिलने के पहले ही मर जाती हैं।

रोगकारक एवं रोग–अनुकूल परिवेश

यह रोग स्यूडोमोनास सिरिंजी पैथोवार पीसी *(Pseudomonas syringae pv. pisi) तथा स्यूडोमोनास सिरिंजी पैथोवार सिरिंजी (P. syringae pv. syringae)* नामक जीवाणुओं से होता है। यह मटर के अतिरिक्त *लेथाइरस्स ओडोरेटस, ल. लेटिफजेलियस, विग्ना स्पेसिजेज, डोलीकस, लेबलेब, विसिया एट्रोपर्प्यूरिया, वी. बेंगालेन्सिस, वी. ओइलोसा ट्राइफोलियम प्रेटेन्स,* सोयाबीन, राजमा आदि पोषक पौधों को भी संक्रमित करता है। यह जीवाणु संक्रमित बीजों में रहता है तथा वहां लगभग तीन साल तक जीवित रह सकता है। यह बाह्य तथा आंतरिक बीज–उत्पन्न रोग है जो बीज–आवरण में पाया जाता है लेकिन भ्रूण तथा बीजपत्रों में प्रवेश नहीं करता है। प्राथमिक संक्रमण केंद्र से रोग का फैलाव बहुत जल्दी होता है। रोगकारक, सिंचाई जल, वर्षा के झोंके या नम हवा द्वारा संक्रमित पौधे से स्वस्थ पौधे तथा संक्रमित खेत से दूसरे खेत में पहुंचते हैं। इस रोग के फैलाव के लिए 27–28° सेल्सियस तापमान अनुकूल होता है। पाला इस रोग को अधिक प्रभावित करता है।

रोग–प्रबंधन

इस रोग को नियंत्रित करने के लिए निम्नलिखित उपाय अपनाने चाहिए:

- खेत में जल–निकास की उचित व्यवस्था करें जिससे खेत में पानी लंबे समय खड़ा न रहे।
- कतार से कतार की दूरी सामन्य से थोड़ा ज्यादा रखें।
- खेत से खरपतवारों को निकाल कर नष्ट कर दें।
- बोआई के लिए साफ, प्रमाणित तथा रोगरहित बीजों का चुनाव करें।
- बीजों को सोडियम हाइपोक्लोराइट (1 प्रतिशत) के घोल से उपचारित करने से प्राथमिक बीज–उत्पन्न संक्रमण कम हो जाता है।
- बीज को स्ट्रेप्टोमाइसिन (0.025 प्रतिशत) के घोल में 2 घंटे तक डुबाने पर अधिक लाभ होता है।
- स्ट्रप्टोसाइक्लिन (100 मिग्रा./लिटर) अकेले या कॉपर आक्सीक्लोराइड (0.2 प्रतिशत) का छिड़काव सात दिन के अंतराल पर खड़ी फसल में करने पर रोग का प्रभाव कम हो जाता है।
- रोगरोधी किस्में जैसे पीटिक–गालवेन्स, मिनुनिया, अमेरिसी, विक्टोरिया वैरागन, आइ. सी. ए. आर. 53/54 और विक्टोरिया स्ट्रोव पार्टीज – 73 को उगाएं।

अध्याय – 21

फरास बीन के रोग
(Diseases of french bean)

फरास बीन पूरे विश्व में उगाई जाने वाली दहलनी फसल है जिसे हरी फली या दाल के रूप में उपयोग किया जाता है। ये फसलें रेशा, विटामिन ए, विटामिन सी, एवं फॉलिक अम्ल प्रोटीन की अच्छी स्रोत हैं। भारत में फरास बीन हिमाचल प्रदेश, जम्मू कश्मीर, उत्तर प्रदेश, उत्तर-पूर्वी पहाडियों, दार्जिलिंग, दक्षिण पठार, दक्षिण भारतीय पहाड़ियों, महाबलेश्वर, रत्नागिरी, चिकमंगलूर, कर्नाटक (मृदु जलवायु के साथ आर्द्र वातावरण) में उगाई जाती है। इस फसल में भी विभिन्न प्रकार के रोग पाए जाते हैं जो इसकी पैदावार तथा गुणवत्ता को प्रभावित करते हैं। इस अध्याय में फरास बीन के प्रमुख रोगों के लक्षण, रोगकारक, अनुकूल परिवेश एवं समुचित प्रबंधन का संक्षेप में वर्णन किया गया है।

1. जड़ विगलन एवं जालीदार अंगमारी (Root root and web blight)

लक्षण

जड़ विगलन के लक्षण जड़ों तथा तने में स्तंभ मूल संधि के पास तथा थोड़ा मृदा के नीचे लाल भूरे कैंकर के रूप में दिखाई देते हैं। स्तंभ मूल संधि क्षेत्र में ऊतकक्षयी क्षेत्र शीघ्र ही बढ़ता है जो तने को चारों तरफ से घेर लेता है तथा नीचे की तरफ बढ़कर जड़ों तक पहुंच जाता है। रोग के अधिक बढ़ने पर जड़ें सड़ जाती हैं। जालीदार अंगमारी में फरास बीन की पत्तियां झुलस जाती हैं तथा फलियां सड़ने लगती हैं। छोटे वर्तुलाकार, जालीय धब्बे पत्तियों पर दिखाई देते हैं। धब्बे आकार में बढ़कर आपस में मिल जाते हैं और फलक का ज्यादातर भाग ढक लेते हैं। बाद में ये चित्तियां भूरे रंग की हो जाती हैं जिनके किनारे गहरे रंग के होते हैं। हल्के भूरे कवकजाल संक्रमित पत्तियों की दोनों सतहों पर विकसित हो जाते हैं। अंत में संक्रमित पत्तियां झड जाती हैं। भूमि की सतह के पास तने पर लंबी धंसी हुई, लाल–भूरे या भूरे रंग की चित्तियां बनती हैं। रोगी पौधों की बढ़वार रुक जाती है। मरी हुई पत्तियों और तने पर कवक की स्क्लेरोशिया की संरचना काले रंग की कड़ी पपड़ी जैसी आकृति के रूप में बनती हैं। फलियों पर गहरे, भूरे एवं धंसे हुए वर्तुलाकार धब्बे दिखाई देते हैं।

रोगकारक एवं रोग–अनुकूल परिवेश

यह रोग, *राइजोक्टोनिया सोलेनी (Rhizoctonia solani)* नामक कवक से होता है। रोगकारक अनेक प्रकार के पौधों को संक्रमित करता है, जिसमें लगभग 287 वर्ग के पौधे जिनमें एक पत्ती तथा द्विपत्रीय कुलों आवृतबीजी (एन्जियोस्पर्म), अनावृतबीजी

(जिम्नोस्पर्म एवं टेरिडोफाइट) से संबंधित होते हैं। रोगकारक कवकजाल तथा स्क्लेरोशिया के रूप में मृदा तथा संक्रमित पौधों के मलबे पर जीवित रहता है। यह कवक के एक बार मृदा में स्थापित हो जाने पर अनिश्चित समय तक उसमें रह सकता है। स्क्लेरोशिया अंकुरित होकर पौधों को संक्रमित करते हैं। रोगकारक एक स्थान से दूसरे स्थान पर वर्षा, सिंचाई जल, औजारों और संक्रमित प्रवर्धित सामग्री से फैलता है। यह रोग बीज द्वारा भी फैलता है। जड़ विगलन के लिए मृदा का अधिक तापमान तथा नमी अनुकूल होते हैं, जबकि जालीदार अंगमारी के लिए नमीयुक्त मौसम अनुकूल होता है। जालीदार अंगमारी की वृद्धि के लिए अधिक वर्षा, मृदा की अधिक नमी, अधिक आपेक्षिक आर्द्रता एवं मृदा का 23–25° सेल्सियस तापमान अनुकूल होता है।

रोग-प्रबंधन

इस रोग के प्रबंधन के लिए निम्नलिखित उपाय करें :

- बुआई के लिए स्वस्थ बीजों का चुनाव करें।
- खेत से संक्रमित पौधों के मलबे को निकालकर नष्ट कर दें और खेत की सफाई रखें।
- फसल–चक्र को अपनाएं।
- रोग का प्रकोप होने पर गर्म व आर्द्र वातावरण में कार्बेन्डाजिम या टेबुकोनाजोल (0.05 प्रतिशत) (50 ग्राम / 10 लिटर पानी में) का छिड़काव करें।
- रोगरोधी किस्मों जैसे विस्कॉनसिन आर.आर.आर.-46ए, बी.ए.टी.-447, बी.ए.टी.–332, बी.ए.टी.-1753, आर. आई. जेड-30, एम. पी.–81, ए.-300, आई.सी.ए पीजौका, जैक्सन वंडर को लगाएं।

2. श्यामव्रण (Anthracnose)

लक्षण

इस रोग के प्रथम लक्षण बीजपत्र की सतह पर गहरे भूरे या काले रंग के धंसे हुए ऊतकक्षयी दाग के रूप में दिखाई देते हैं। बाद में, कवक के बीजाणु उत्पन्न होने के कारण बीच का रोगग्रस्त भाग गुलाबी रंग का हो जाता है। संक्रमित नए पौधे गिरकर मर जाते हैं। बड़े पौधों की पत्तियों पर छोटे–छोटे जलीय दाग बनते हैं। बाद में ये दाग भूरे रंग के तथा गोल हो जाते हैं। डंठलों तथा तनों पर भी ऊतकक्षयी भाग दिखाई देते हैं। फलियों पर भी काले धंसे हुए धब्बे, जो केंद्र में हल्के राख के रंग वाले होते हैं, दिखाई देते हैं। नमीयुक्त मौसम में, धब्बे के केंद्रीय भाग में गुलाबी बीजाणुओं के झुंड दिखाई देते हैं। अधिक संक्रमित फलियों से प्राप्त बीजों के आवरण पर भूरे चाकलेट रंग के धंसे हुए कैंकर दिखाई देते हैं।

रोगकारक एवं रोग-अनुकूल परिवेश

यह रोग, *कोलेटोट्राइकम लिन्डेम्युथिएनम (Colletotrichum lindemuthianum)* नामक कवक से होता है। यह फरास बीन के अतिरिक्त दूसरी दलहनी फसलों जैसे उर्द, *विग्ना साइनेन्सिस, पी मल्टीफ्लोरस, पी, ल्युनेटस, मैक्रोटीलोमा यूनिफ्लोरम, डॉलिकोस लेबलेब, डी. वाइफ्लोरस* और *कानावलिया इन्सीफॉर्मिस* को संक्रमित करता है। रोगकारक संक्रमित बीजों तथा पौधों के मलबे में जिंदा रहता है। कोनिडियम बीजों में कई सालों तक जीवित रहते हैं। बार–बार अधिक वर्षा, 19–25° सेल्सियस तापमान, 70 प्रतिशत से अधिक आर्द्रता, रोग के विकास के लिए अनुकूल होते हैं। संक्रमित बीज द्वारा रोग एक क्षेत्र से दूसरे क्षेत्र तक फैलता है।

रोग-प्रबंधन

इस रोग के नियंत्रण के लिए निम्नलिखित उपाय करने चाहिए :

- रोगी पौधों के अवशेषों को इकट्ठा करके नष्ट कर दें।
- गर्मियों में खेत की गहरी जुताई करें।
- उपयुक्त फसल–चक्र अपनाएं।
- बुआई के लिए रोगरहित बीजों का चयन करें।
- बीजों को कार्बेन्डाजिम या कार्बाक्सिन (2-2.5 ग्राम / किग्रा. बीज की दर से) से उपचारित करें।
- खड़ी फसल में कवकनाशी जैसे मैंकोजेब, जिनेब, डेकोनिल (2–2.5 ग्राम)या कार्बेन्डाजिम (0.5 ग्राम / लिटर पानी में) का छिड़काव करें। पहला छिड़काव बुआई के एक माह बाद या रोग के लक्षण दिखाई देते ही करें। छिड़काव 10–15 दिन के अंतराल पर आवश्यकतानुसार करें तथा ध्यान दें कि छिड़काव फलियों की तुड़ाई के 10 दिन पहने से रोक दें।

3. सामान्य अंगमारी (Common blight)

लक्षण

इस रोग के लक्षण तनों, शाखाओं, पत्तियों, फलियों तथा बीजों पर दिखाई देते हैं। पत्तियों की निचली सतह पर जलीय धब्बे दिखाई देते हैं जो आपस में मिलकर बड़े धब्बे बन जाते हैं और अंगमारी क्षेत्र बनाते हैं। कुछ धब्बे काफी बड़े तथा पीले किनारे वाले होते हैं। इस रोग से उत्पन्न धब्बों के चारों ओर पीला क्षेत्र दिखाई देता है। यह लगभग 1 से. मी. या 3 से. मी.

अधिक चौड़ा होता है। संक्रमित भाग लटके हुए होते हैं और भूरे रंग में बदल जाते हैं एवं धूप से झुलसे (सन स्कैल्ड) की तरह दिखाई देते हैं। रोगी पत्तियां सिकुड़कर टेढ़ी–मेढ़ी होकर गिर जाती हैं। फलियों तथा तनों पर लंबे, धंसे हुए, भूरे या लाल रंग के धब्बे बन जाते हैं। रोगी फलियों के बीज सिकुड़ जाते हैं। तंने का भीतरी भाग भूरे रंग का हो जाता है तथा सतह पर दरारें बन जाती हैं। संक्रमित भाग से कभी–कभी पीले या सफेद रंग का तरल पदार्थ निकलता है जिसमें जीवाणु होते हैं।

रोगकारक एवं रोग-अनुकूल परिवेश

यह रोग, *जैन्थोमोनास एक्जोनोपोडिस पैथोवार फेजिओलाई (Xanthomonas axonopodis* pv. *phaseoli)* नामक जीवाणु द्वारा होता है। रोगकारक कृषि–योग्य तथा खरपतवार व पोषक पौधों को संक्रमित करता है, जिनमें मूंग, सेम, मटर, सोयाबीन, उड़द *फिजियोलस एक्युटीफॉलियस, आइयोमिस, क्रेसिकुनैलिस, ल्युपिनस पॉलीफिलस, फिजियोलस, कॉक्सीनियस,* लोबिया आदि पौधे शामिल हैं। यह जीवाणु संक्रमित बीजों, पौधों के अवशेषों तथा खरपतवारों पर जीवित रहता है। यह जीवाणु पारथेनियम (कांग्रेस घास) पर भी रहता है और वहां से मुख्य पोषक पौधों पर जाता है या पोषक पौधों से पारथेनियम पर भी जाता है। जीवाणु, पौधे के अंदर कीट द्वारा कटे हुए भाग, रंध्र या हाइडोथेड्स से प्रवेश करते हैं। गर्म और आर्द्र मौसम इस रोग की वृद्धि के लिए अनुकूल होता है। 15-40° सेल्सियस तापमान तथा 30 प्रतिशत से अधिक आर्द्रता पर रोग विकसित हो सकता है। तथापि रोग के विकास के लिए 40° सेल्सियम तापमान तथा 50 प्रतिशत से अधिक आपेक्षित आर्द्रता अच्छे होते हैं।

रोग-प्रबंधन

इस रोग का प्रबंधन निम्नलिखित उपायों से किया जा सकता है:

- बुआई के लिए स्वस्थ तथा प्रमाणित बीज का चयन करें।
- गर्मियों में खेत की गहरी जुताई करें।
- 2–3 वर्ष का फसल–चक्र अपनाएं।
- रोगी पौधों के अवशेषों को इकट्ठा करके नष्ट कर दें।
- खरपतवारों को खेत से निकाल कर नष्ट कर दें।
- बीजों को गरम जल में 50° सेल्सियस तापमान पर 10 मिनट के लिए डुबाने के बाद स्ट्रेप्टोसाइक्लिन (10 मिमी./लिटर) के घोल में डुबाने से रोग कम लगता है।
- फसलों की सिंचाई छिड़काव पद्धति से न करें।
- फरास बीन का मक्का के साथ अंतरा–सस्यन करने से रोग कम होता है।
- रोग-प्रतिरोधी किस्मों जैसे फुलग्रीन, पी-597, फिइजो–60, डियाज, मेक्सिको–168, मेक्सिको-240, कन्तिस्टा, सेमीनान, ग्रेट नॉर्दन जुलूस, वैली, टी-589, टी-769, टी-352 आदि को लगाएं।

4. हैलो अंगमारी (Halo blight)

लक्षण

इस रोग के लक्षण पत्तियों की निचली सतह पर छोटे जलीय धब्बे में दिखाई देते हैं, जो बाद में बढ़ कर एक दूसरे से मिल जाते हैं। बाद में ये धब्बे 2-3 सेमी. व्यास में हरी-पीली आभा से चारों तरफ से घिरे होते हैं। सर्वांगी संक्रमण में पौधे हरिमाहीन तथा पत्तियां पीली हो जाती हैं तथा उनमें विकृतियां विकसित हो जाती हैं। पौधों में संक्रमण के समय जीवाणु 'फेजियोलोटॉक्सिन' पैदा करता है, जिससे पौधों में सर्वांगी हरिमाहीनता तथा प्रतिरूप हैलो पैदा होते हैं। नये तनों पर धंसे हुए, जलीय धब्बे धीरे–धीरे बड़े हो जाते हैं तथा तनों पर लाल धारियां लंबवत् दिखाई देती हैं। जब संक्रमण बढ़ता है तो तने की बाह्य त्वचा फटकर खुल जाती है। वहां से हल्के क्रीमी चांदी रंग का जीवाण्विक स्राव निकलता है। फलियों पर भूरे लाल रंग के जोनेट ऊतकक्षीय जलीय धब्बे बनते हैं। प्रभावित बीज सिकुड़े हुए, बदरंग तथा सड़े हुए होते हैं।

रोगकारक एवं रोग-अनुकूल परिवेश

यह रोग, *स्यूडोमोनास सवास्टानोई* पैथोवार *फेजियोलीकोला (Pseudomonas savastanoi pv. phaseolicola)* नामक जीवाणु से होता है। रोगकारक बहुत से पौधों जैसे *निथोनाटोनिया विगटी, पारथेनियम, फेसियोलस एक्युटीफोलियस, फि, एंगुलेरिस, फि. कोबसीनियस, फि, ल्युनेटस, फि, पॉलीऐन्थस, फि. पालिस्टे किथस, फि. रेडियटस, प्युएरिया हिर्सुटा, प्यू. थनबर्जिया* तथा सोयाबीन आदि को संक्रमित करता है। यंह जीवाणु बीज–उत्पन्न रोगकारक है। बीज–उत्पन्न निवेशन–द्रव्य बीज की सतह, टेस्टा के नीचे और बीजपत्रों के बीच में पाया जाता है। रोगकारक पौधों के

अवशेषों तथा स्वेच्छा से उगे हुए बीनस् के पौधों पर उत्तरजीवी रहता है। अधिक आर्द्रता एवं स्वतंत्र जल की उपलब्धता में जीवाणु पौधों में रंध्रों तथा घाव के स्थान से प्रवेश करता है। मृदा की अधिक नमी और कम पी. एच. में जीवाणु 2–3 महीनों से ज्यादा जीवित नहीं रहता है। यह जीवाणु ठंडे क्षेत्र में मृदा तथा पौधों के अवशेषों पर जीवित नहीं रह सकता है।

रोग-प्रबंधन

इस रोग के प्रबंधन के लिए निम्नलिखित उपाय करने चाहिए:

- 2–3 साल का फसल–चक्र अपनाएं।
- खेत से पौधों के मलबे को इकट्ठा करके नष्ट कर दें।
- फुव्वारा विधि से सिंचाई न करें।
- फरास की रोग–प्रतिरोधी किस्मों जैसे पी.एच. –64–23–144, पी.एच.–65–9–9, पी. एच. –64–9–61 और पी.एच. –64–9–56 को उगाएं।
- गरम जल में कसुगामाइसिन या स्ट्रेप्टोमाइसिन का घोल बना कर बीज को 60 मिनट तक डुबाएं। इस के बाद नल के जल से धोकर फिर 30 मिनट तक सोडियम हाइपोक्लोराइड (0.5 प्रतिशत) में डुबाने से रोग कम हो जाता है।
- कॉपर ऑक्सीक्लोराइड (0.2 – 0.25 प्रतिशत) का पानी में घोल बनाकर पौधों पर फूल आने से पहले छिड़काव करें।

5. बीन सामान्य विषाणु (Bean common mosaic)

लक्षण

इस रोग के कारण पत्तियों पर फलक–ऊतक गहरे हरे क्षेत्र की बजाए हल्के हरे पृष्ठ भूमि के बने होते हैं। शुरू में प्रभावित पत्तियां व्याकुंचित, हरिमाहीन, सूखी और नीचे की तरफ मुड़ी हुई होती हैं। पत्तियां खुरदरी, लंबी एवं संकरी हो जाती हैं। पौधों की वृद्धि रुक जाती है तथा संक्रमित पौधे बौने तथा झाड़ीनुमा हो जाते हैं। अनियमित वृद्धि के कारण पत्तियों की शिरा के नीचे की तरफ मुड़ जाने से इनका आकार प्याले जैसा हो जाता है। फलियों में बीज नहीं बनते और यदि बनते भी हैं तो छोटे तथा विकृत होते हैं। प्रभावित पौधों की जड़ें गहरे रंग में बदल जाती हैं । गंभीर रूप से संक्रमित मूसला जड़ प्रायः संवहनी ऊतकक्षय से काली हो जाती हैं, इसके कारण छोटी पत्तियां हल्के म्लानि के लक्षण प्रदर्शित करती हैं।

रोगकारक एवं रोग-अनुकूल परिवेश

यह रोग बीन कामन मोजेक विषाणु (Bean common mosaic virus) द्वारा होता है। यह विषाणु कई दलहनी फसलों तथा खरपतवारों को संक्रमित करता है। यह विषाणु बीन के बीज द्वारा पूरे संसार में फैलता है। इसके अतिरिक्त विषाणु माहू कीटों जैसे *सीरथोसाइफान पाइसम, एफिस फेबी* तथा *माइजस परसीकी* द्वारा अस्थिर रूप में स्थानांतरित होता है। संक्रमित बीज, रोग सहग्राही फरास बीन की किस्मों और खरपतवार प्राथमिक संरोप के लिए उत्तरदायी हैं। द्वितीयक क्षेत्र में फैलाव के लिए माहू कीट सहायक होते हैं।

रोग-प्रबंधन

इस रोग के नियंत्रण के लिए केवल एक उपाय सहायक नहीं होता है। इसलिए इसे निम्नलिखित समेकित विधियों से नियंत्रित किया जा सकता है:

- बुआई के लिए विषाणु–रहित बीजों का चुनाव करें।
- रोगी पौधों तथा खरपतवारों को खेत से निकालकर नष्ट कर दें।
- मक्का को फसलों के बीच–बीच लगाएं।
- रोग–प्रतिरोधी किस्में उगाएं।
- थिमेट (1.5 किग्रा. स. ए./हेक्टेयर) मृदा में मिलाएं तथा मोनोक्रोटोफॉस (0.05 प्रतिशत) या डाइमेथोएट (0.05 प्रतिशत) का छिड़काव करें, जिससे माहू की संख्या कम होकर विषाणु का फैलना कम हो जाता है।

6. पीली बीन मोजेक (Yellow bean mosaic)

लक्षण

इस मोजेक के लक्षणों में पत्तियों पर गहरे और पीले हरे क्षेत्र के साथ चमकीले पीले धब्बे बनते हैं। कभी–कभी पत्तियों पर हरिमाहीन चितकबरेपन के लक्षण दिखाई देते हैं और पौधे छोटे रह जाते हैं या पौधों पर मोजेक के स्पष्ट लक्षण व विकृतियां दिखाई देती हैं। कुछ पौधों में ऊतकक्षयी धब्बे, शिराओं और शिखाग्र पर ऊतकक्षयी, म्लानि होती हैं तथा वे अपरिपक्व अवस्था में ही मर जाते हैं।

रोगकारक एवं रोग-अनुकूल परिवेश

यह रोग, *बीन यलो मोजेक विषाणु* (Bean yellow mosaic virus) द्वारा होता है, जो पाटीवायरस समूह से संबंधित है। यह विषाणु फरास बीन के अतिरिक्त मूंग, लीमा बीन, अरहर, चना, मसूर, मटर, सोयाबीन, मेथी, कुम्हडा, ग्लैडियोलस आदि को भी संक्रमित करता है। यह विषाणु माहू की जातियों जैसे *माइजस परसिकी, एफिड फेबी एसिरथोसाइकम, फाइसम, मैक्रासाइफम यूफोरबी, एफिस क्रेसिवोरा* आदि के द्वारा संचरित होता है। यह विषाणु फरास बीन के बीज द्वारा रोग का फैलाव नहीं करता है। परंतु यह विषाणु दूसरी दलहनी फसलों जैसे ब्रॉड बीन के बीज द्वारा फैलता है।

रोग–प्रबंधन

रोग इस प्रबंधन के लिए निम्नलिखित उपाय करने चाहिए:

- विषाणु के पोषक पौधों को खेत के अंदर तथा आसपास से निकाल कर नष्ट कर दें।
- विषाणु के फैलाव में व्यवधान उत्पन्न करने के लिए मक्के की फसल को फसलों के बीच में लगा सकते है।
- मेटासिस्टॉक्स, डिमेथोएट आदि का छिड़काव करने पर माहू की संख्या कम हो जाती है, जिससे विषाणुओं का फैलाव रुक जाता है।

अध्याय – 22

भिंडी के रोग (Diseases of okra)

भिंडी *(एबेल्मॉस्कस एस्कुलेन्टस* एल. मोइन्च - *Abelmoschus esculentus* L. Moench) एक महत्वपूर्ण सब्जी है जो भारत के सभी भागों में उगाई जाती है। इसका सब्जी तथा औषधि के रूप में अधिक महत्व है। यह मधुमेह को घटाती है तथा कैंसर के खतरे से बचाती है। भिंडी प्रतिऑक्सीकारक होने के लिए जानी जाती है तथा इसमें कैल्शियम एवं पोटेशियम की अधिकता होती है। इस फसल में कवकों, जीवाणुओं तथा विषाणुओं के द्वारा बहुत से रोग लगते हैं। इस अध्याय में कुछ महत्वपूर्ण रोगों का वर्णन किया गया है।

1. फ्यूजेरियम म्लानि (Fusarium wilt)

लक्षण

पौधे की सभी अवस्थाओं में इस रोग का संक्रमण होता है। म्लानि रोग में पौधे पीले दिखाई देते हैं। पौधे छोटे हो जाते है तथा पत्तियां मुड़ जाती हैं। अंत में पौधों में म्लानि हो जाती है और पौधा मर जाता है। प्रभावित पौधे का संवहनी पूल गहरे काले रंग का दिखता है।

रोगकारक एवं रोग-अनुकूल परिवेश

यह रोग, *फ्यूजेरियम आक्सीस्पोरम* फ. *स्पी वैसिनफेक्टम* (*Fusarium oxysporum* f. *sp. vasinfectum*) नामक कवक से होता है। यह रोगकारक भिंडी के अतिरिक्त कपास, तम्बाकू, *केसिया* स्पीसीज, मटर, लोबिया और मिर्च को भी संक्रमित करता है। कवक क्लेमाइडोस्पोरों के रूप में मृदा में मुख्य रूप से जीवित रहता है। रोगकारक चोटिल तथा स्वस्थ दोनों तरह की जड़ों के संक्रमित करता है। यह कवक बीज में भी जीवित रहता है। रोग की वृद्धि 22–28° सेल्सियस तापमान पर अधिक होती है।

रोग-प्रबंधन

इस रोग का प्रबंधन करना कठिन होता है। फिर भी नीचे बताए गए उपायों से रोग के प्रभाव में कमी की जा सकती है:

- तीन साल से अधिक का फसल–चक्र अपनाएं।
- गर्मियों में खेत की गहरी जुताई करें।
- गर्मियों मे मृदा को सफेद पॉलिथीन की शीट (25 माइक्रोमीटर मोटी) से 10–15 दिन तक ढककर रखने से रोगकारक की संख्या में कमी आ जाती है।
- संक्रमित पौधों को निकाल कर नष्ट कर दें।
- बुआई के लिए स्वस्थ बीजों का चुनाव करें।
- थीरम (0.3 प्रतिशत) या कार्बेन्डाजिम 2.5 ग्राम/किग्रा. से बीजों को उपचारित करें। इसके अलावा बीज को xje t y mi pkj d sfy, 45 ± 1° सेल्सियस तापमान पर 30 मिनट के लिए डुबाकर रखें तथा बाद में सुखा लें।

- रोग–प्रतिरोधी किस्मों जैसे पूसा सावनी, पूसा मखमली, आई. एस. – 9273, 9857, सी. एस. – 3232, 8899, आई.एस. – 6653 और 7194 आदि को लगाएं।

2. सरकोस्पोरा पर्णचित्ती (Cercospora leaf spot)

लक्षण

सरकोस्पोरा की तीन जातियां इस रोग के लिए उत्तरदायी हैं जो पौधों पर अलग–अलग लक्षण प्रकट करती हैं। *सरकोस्पोरा अबेल्मॉस्की (Cercospora abelmoschi)* से ग्रसित पत्तियों पर कोई निश्चित पर्णचित्ती दिखाई नहीं पड़ती है। लेकिन पत्तियों की निचली सतह पर कज्जली फफूंद की तरह का कवक पाया जाता है। गंभीर रूप से प्रभावित पत्तियां मुड़ जाती हैं एवं सूखकर गिर जाती हैं। *स. हिबिसीना (C. hibiscina)* कवक पत्तियों की निचली सतह पर जगह–जगह जैतूनी धब्बे पैदा करता है। *स. मलायेन्सिस (C. malayensis)* कवक पत्तियों पर निश्चित आकार की चितियां बनाते हैं, जिसका केंद्र धूसर तथा चित्तियों के किनारे लाल से बैंगनी रंग के होते हैं।

रोगकारक एवं रोग-अनुकूल परिवेश

सरकोस्पोरा पर्णचित्ती रोग सरकोस्पोरा की तीन जातियों, *स. एबेल्मॉस्की (Cercospora abelmoschi)*, *स. हिबिसिना (C. hibiscina)* तथा *स. मलायेन्सिस (C. malayensis)* नामक कवकों से होता है। सरकोस्पोरा की ये तीनों जातियां एबेल्मास्कस वंश की लगभग सभी जातियों को संक्रमित करती हैं। रोगकारक कोनिडियम के रूप में संक्रमित पौधों के मलबे या मृदा में रंध्र के रूप में तथा जंगली एबेल्मॉस्कस की जातियों पर जीवित रहता है। इस रोग के विकास के लिए मध्यम तापमान (25-29° सेल्सियस) तथा अधिक आर्द्रता आदि कारक अनुकूल होते हैं।

रोग–प्रबंधन

इस रोग के नियंत्रण के लिए निम्नलिखित उपाय करने चाहिए:

- संक्रमित पौधों के मलबे को खेत से इकट्ठा करके नष्ट कर दें।
- फसल–चक्र अपनाएं।
- जंगली पोषक पौधों को खेत से एवं पड़ोस से हटा दें।
- रोगरोधी किस्मों जैसे बी.एच – 9, भिंडी गैम्बो, लॉन्ग्रीन, आई. सी. – 18960, आई.सी. – 15055, राउंड सेलेक्शन, वालगौन, ई.सी. – 41292, आई. सी. – 1542 आदि की बोआई करें।
- पौधों पर आवश्यकतानुसार कॉपर ऑक्सीक्लोराइड (0. 3 प्रतिशत), कार्बेन्डाजिम (0. प्रतिशत), मैन्कोजेब (0.25 प्रतिशत) आदि कवकनाशी का छिड़काव करने से इस रोग को नियंत्रित किया जा सकता है।

3. पीला शिरा मोजेक (Yellow vein mosaic)

लक्षण

इस रोग के कारण पत्तियों की शिराएं पीली पड़ जाती हैं। पत्तियों पर पीली शिराओं का जाल स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। शिराएं तथा लघु शिराएं मोटी हो जाती हैं। संक्रमित पत्तियां पूरी तरह से पीली पड़ जाती हैं। रोगी पौधों की फलियां छोटी, हल्की, पीली, विकृत और कड़ी हो जाती हैं। बाजार में इस तरह की फलियों की कीमत कम हो जाती है।

रोगकारक एवं रोग-अनुकूल परिवेश

यह रोग 'यलो वेन मोजेक विषाणु' *(Yellow vein mosaic virus)* के द्वारा होता है। यह विषाणु सफेद मक्खी द्वारा स्थानांतरित होता है। यह विषाणु भिंडी के अतिरिक्त दूसरे पोषक पौधों जैसे *क्रोटॉन स्पार्सीफ्लोरा, माल्वेस्ट्रम ट्राइकस्वीडेटम, एवेल्मॉस्कस मेनीहाट, एल्थिया रोजिया, हिबिस्कस टेट्राफाइलस* तथा *स्पीसीज* को भी संक्रमित करता है। यह विषाणु मुख्य फसल की अनुपस्थिति में दूसरे जंगली पोषक पौधों जीवित रहता है। सूखे गर्म मौसम के साथ थोड़ी या वर्षा का न होना इस रोग के लिए अनुकूल वातावरण होता है।

रोग–प्रबंधन

इस रोग के प्रबंधन के लिए निम्नलिखित उपाय करने चाहिए:

- खेत के अंदर तथा आसपास के खरपतवारों को नष्ट कर दें।
- संक्रमित पौधों को खेत से निकालते रहना चाहिए।
- रोगरोधी किस्में जैसे परवानी क्रांति, अर्का अनामिका, के. बी. एस. – 312, ओकरा, विशाल, पंजाब–7, पंजाब पद्मिनी, पंजाब–8, डी.वी.आर.–1, डी.वी.आर.–2, आजाद भिंडी–1 आदि की बोआई करें।
- फसल की प्रारंभिक अवस्था में सर्वांगी कीटनाशी दवा ऑक्सीमिथेल डिमेटान या डाइमेथोएट (0.01 प्रतिशत) घोल का छिड़काव करे। मेटासिस्टॉक्स (डिमेटान–एस–मेथिल) के चार छिड़काव बुआई से 15 बाद तथा 15 दिन के अंतराल पर करने से रोग का आपतन घट जाता है तथा पैदावार भी बढ़ जाती है।

अध्याय – 23

प्याज तथा लहसुन के रोग
(Diseases of onion and garlic)

प्याज *(एलियम सीपा एल. - Allium cepa L.)* एवं लहसुन *(एलियम सेटाइवम एल. Allium sativum L.)* संसार के बहुत से देशों में उगाई जाती हैं। भारत में ये फसलें महाराष्ट्र, गुजरात, तमिलनाडु, उड़ीसा, मध्य प्रदेश, उत्तर प्रदेश, हरियाणा, पंजाब तथा आंध्र प्रदेश में प्रमुखता से उगाई जाती हैं। प्याज एवं लहसुन में सल्फर यौगिक जैसे थायोसल्फोनेट सल्फाइड एवं सल्फोआक्साइड पाए जाते हैं। प्याज में फ्रक्टोओलीगो सैकेराइड पाया जाता है जो बड़ी आंत की स्वस्थता के लिए बीफिडोबैक्टिरिया की वृद्धि को बढ़ाता है तथा हानिकारक जीवाणुओं को घटाता है तथा इस भाग में अर्बुद (ट्यूमर) होने के खतरे को कम करता है। यह मधुमेह से संबंधित हृदय रोग के अलावा कॉलेस्टेराल तथा अधिक रक्तचाप को कम करता है। लहसुन में एल्लीलसीस्टीन सल्फोक्साइड (एलीन), कार्बनिक यौगिक एलीसीन सुगंध के लिए उत्तरदायी होता है तथा प्रति-आक्सीकारक (एन्टीऑक्सीडैन्ट) के रूप में काम करता है। प्याज तथा लहसुन में कवकों,

जीवाणुओं तथा विषाणुओं के द्वारा बहुत से रोग उत्पन्न होते हैं जो इन फसलों की उत्पादकता एवं गुणवत्ता को प्रभावित करते हैं। इनमें से कुछ प्रमुख रोगों के लक्षण, रोगकारक, अनुकूल परिवेश एवं उनके समुचित प्रबंधन के विषय में नीचे वर्णन किया गया है।

1. नील–लोहित दाग (Purple blotch)

लक्षण

इस रोग के लक्षण प्रारंभ में छोटी, सफेद, कुछ धंसी हई विक्षति के रूप में होते हैं जो बाद में बढ़कर बड़े आकार के हो जाते हैं। दाग का मध्य भाग बैंगनी (नीले लोहित) रंग का हो जाता है। नमीयुक्त मौसम में कवक की वृद्धि के कारण विक्षति का रंग काला हो जाता है तथा रोगी पत्तियां झुलसकर गिर जाती हैं। प्याज के तने में रोग लगने के कारण तने रोगग्रस्त स्थान से 3–4 सप्ताह में टूटकर गिर जाते हैं, जिससे बीज बिल्कुल नहीं बनते हैं और यदि कभी बनते भी हैं तो सिकुड़े हुए होते हैं। रोगी पौधे से प्राप्त शल्ककंद भंडारण के समय सड़ने लगते हैं। लहसुन में भी इसी प्रकार के लक्षण पत्तियों में दिखाई देते हैं।

रोगकारक एवं रोग-अनुकूल परिवेश

यह रोग, प्याज एवं लहसुन में *एल्टरनेरिया पोरी (Alternaria porri)* नामक कवक से होता है। यह कवक प्याज एवं लहसुन के अतिरिक्त दूसरी एलियम जातियों जैसे *एलियम प्रॉलीफेरम* (ईजिप्शियन प्याज), *ए. फिस्टुलोसम* (वेल्स प्याज), *ए. एम्पेलोप्रेशम* (लीक) आदि को संक्रमित करता है। रोगकारक प्रसुप्त कवकजाल के रूप में संक्रमित पौधों के मलबे में जीवित रहता है। संक्रमित पौधों के मलबे प्राथमिक संरोप के प्रमुख स्रोत हैं। रोगकारक का

कोनिडियम अंकुरित होकर प्राथमिक संक्रमण करता है और विक्षति पैदा करता है जो कि द्वितीयक संरोप के स्रोत का काम करता है, जिससे एक पौधे से दूसरे पौधे में हवा के द्वारा पहुंचते है। इस रोग के विकास के लिए 22° सेल्सियस तापमान तथा 90 प्रतिशत आपेक्षिक आर्द्रता अनुकूल होते हैं।

रोग–प्रबंधन

इस रोग के प्रबंधन के लिए निम्नलिखित उपाय करने चाहिए:

- स्वस्थ बीजों/रोपण सामग्री का चुनाव करें।
- रोगी पौधों के अवशेषों को खेत से निकाल कर नष्ट करें।
- ऐसा फसल–चक्र अपनाएं जिसमें लहसुन एवं प्याज के अतिरिक्त दूसरी फसल को सम्मिलित करें।
- जल–निकास का उचित प्रबंध करें।
- गर्मियों में मृदा की गहरी जुताई करें।
- बुआई से पूर्व बीज को थीरम (2.5 ग्राम/किग्रा. बीज की दर) से उपचारित करें।
- प्याज की किस्में जैसे पूसा रेड, हाइब्रिड पी x 76, आई. आई. एच. आर. – 56–1, हाइब्रिड पी.वी.एम.–7, आई. सी.–48059, आई.सी.–48179, जे.सी.–48179, आई.सी. – 39887, आई.सी. – 48025, ए.एल.आर. तथा आर.वी. – 1 आदि रोग–प्रतिरोधी किस्मों को लगाएं।
- 2.5 किग्रा.*मैन्कोजेब* या जिनेब या 3 किग्रा. कॉपर ऑक्सीक्लोराइड का एक हजार लिटर पानी में घोल

बनाकर प्रति हेक्टेयर की दर से खड़ी फसल में छिड़काव करें। इस घोल में सैन्डोविट या ट्राइटोन (0.2 प्रतिशत) मिला लें। इसके अतिरिक्त मेटासिस्टॉक्स या रोगर (डाइमेथोएट) जैसे कीटनाशी भी (एक लिटर प्रति हेक्टेयर की दर से) कवकनाशी के घोल में मिला लेने चाहिए।

2. मृदुरोमिल आसिता (Downy mildew)

लक्षण

मुदुरोमिल आसित रोग के लक्षण पत्तियों की सतह पर बिखरे हुए आयताकार से लेकार अंडाकार पीले धब्बे के रूप में दिखाई देते हैं। इस रोग का आक्रमण सामान्य परिस्थितियों में पत्ती के लगभग आधे भाग में होता है तथा रोग से प्रभावित भाग सूखने लगता है। रोगी पौधे से प्राप्त कंद आकार में छोटे रह जाते हैं। रोग की सर्वांगी अवस्था आने पर पौधे की बढ़वार टेढ़ी–मेढ़ी होने लगती है। रोग की वृद्धि के लिए अनुकूल परिस्थितियां तथा वातावरण में पर्याप्त नमी होने पर पौधे के रोगी भागों पर कवक की वृद्धि बैंगनी रंग लिए सुई के समान दिखाई देती है। शुष्क मौसम में यह बढ़वार दिखाई नहीं देती है, तथा रोगी भाग सफेद रंग का होता है। यदि संक्रमण बीजवृंत पर होता है तो पौधों की वृद्धि रुक जाती है। बीजवृंतों के समय से पूर्व टूट जाने से बीज परिपक्व नहीं हो पाते हैं और यदि परिपक्व होते हैं तो सिकुड़े हुए होते हैं।

रोगकारक एवं रोग-अनुकूल परिवेश

यह रोग, *पेरोनोस्पोरा डिस्ट्रक्टर* (*Peronospora destructor*) नामक कवक से होता है। रोगकारक सामान्य प्याज (*एलियम सेपा*) के अतिरिक्त दूसरी जातियों जैसे *ए. फिस्टलोसम, ए. एस्कालोनिकम ए. नाइग्रम, ए. पोसम, ए. आसिनिम, ए. ओलेरेसियम,*

ए. सैटाइवम, ए. सेपा उपजाति *मल्टिप्लिकैन्स, ए. सेपा* उपजाति *वलिफेस* तथा *ए. स्कोइनोपासम* को भी संक्रमित करता है। कवक एक फसल से दूसरी फसल तक कवकजाल के रूप में शल्ककंद, बीज या मृदा में तथा ओस्पोरों के रूप में बीज के अन्दर या सतह पर तथा पौधे के मलबे में जीवित रहता है। संक्रमित प्याज की पौद रोग प्रभावित क्षेत्र से नए क्षेत्र में फैलने में सहायता करता है। इस रोग के विकास के लिए औसतन 13° सेल्सियस तापमान तथा > 95 प्रतिशत आपेक्षिक आर्द्रता सहायता करते हैं। जल की बूंदें पत्तियों की सतह पर होने से इस रोग को बढ़ावा देने में मदद करती हैं। अधिक सघन फसल भी रोग की वृद्धि में सहायक होती है। नाइट्रोजन का अधिक प्रयोग रोग के बढ़ने में सहायक होता है जबकि पोटाश रोग की सघनता को कम करता है।

रोग-प्रबंधन

इस रोग के बचाव के लिए निम्नलिखित उपाय करने चाहिए:

- संक्रमित पौधे के मलबे को खेत से इकट्ठा करके नष्ट कर दें।
- पौद एव बीज तैयार करने के लिए बीज एवं शल्ककंद स्वस्थ पौधे से ही प्राप्त करें।
- प्याज के बहुवर्षीय शल्ककंदों एवं पौधों को नष्ट कर दें। अन्यथा ये प्राथमिक संरोप के स्थायी स्रोत बन सकते हैं।
- खेत में जल–निकास की उचित व्यवस्था होनी चाहिए।

- बीज के लिए प्याज की फसल अर्धशुष्क क्षेत्रों में उगाने से रोग कम लगता है।
- इस रोग के लक्षण फसलों पर दिखाई दें तो मेंकोजैब या जिनेब का (2.5 किग्रा. प्रति हेक्टेयर की दर से) छिड़काव करें। रोग की तीव्रता के आधार पर 10–15 दिन के अंतराल पर 3–4 छिड़काव करें। कवकनाशी के प्रभाव को बढ़ाने के लिए उसके घोल में सेन्डोविट या ट्राइटोन को एक लिटर प्रति हजार लिटर पानी में मिला लें।

3. स्टेमफीलियम अंगमारी (Stemphylium blight)

इस रोग के मुख्य लक्षण, पत्ती के मध्य में छोटे, पीले से हल्के नारंगी रंग के फ्लेक्स या धारी के रूप में दिखाई देते हैं जो बाद में गुलाबी किनारों से घिरे लंबवत् तुर्क (Spindle) के आकार के धब्बों के रूप में हो जाते हैं । धब्बों का केंद्र में धूसर रंग होता हैं जो बाद में भूरे से गहरे भूरे रंग में बदल जाता है, क्योंकि वहां पर कवक के कोनिडियमधर एवं कोनिडियम दिखाई देते हैं। इसी तरह के लक्षण पुष्प पुंजवृंत पर भी विकसित होते हैं।

रोगकारक एवं रोग-अनुकूल परिवेश

इस रोग के रोगकारक *स्टेमफीलियम वेसिकेरियम (Stemphylium vesicarium)* हैं। इस रोगकारक का पूर्ण अवस्था का कवक *प्लीयोस्पोरा एल्ली* है। रोगकारक संक्रमित पौधे के मलबे में जीवित शेष रहता हैं तथा अनुकूल वातावरण होने पर बीजाणु मलबे से निचली पत्तियों पर पहुंच कर संक्रमण करते हैं। प्राथमिक संक्रमण पर रोगकारक के बीजाणु पैदा होते हैं जो कि

द्वितीयक संक्रमण करते हैं। बसंत ऋतु में अधिक आर्द्रता (>90 प्रतिशत) इस रोग की उत्पत्ति तथा वृद्धि में मदद करती है।

रोग–प्रबंधन

इस रोग के नियंत्रण के लिए सबसे अधिक आवश्यक है कि बोआई के लिए स्वस्थ बीजों तथा रोपण सामग्री का प्रयोग करें।

- 2-3 वर्ष के फसल-चक्र में दूसरी फसलों को अपनाएं।
- गर्मियों में मृदा की गहरी जुताई करें।
- खेत में पड़े मलबे को इकट्ठा करके जला दें।
- शल्ककंद वाली फसल के लिए मैन्कोजेब (0.25 प्रतिशत) का घोल जिसमें ट्राइटान/सैन्डेविट (1 लीटर/1000 लिटर कवकनाशी घोल) के 4 छिड़काव तथा प्याज के बीज उत्पादल के लिए 6 छिड़काव इस रोग को नियंत्रित करते हैं।
- लहसुन में मैन्कोजेब (0.25 प्रतिशत) या जीरम (0.3 प्रतिशत) तथा स्टिकर सैन्डोविट/ट्राइटान (0.06 प्रतिशत) के 4 छिड़काव करने से रोग को नियंत्रित किया जा सकता है।

4. किट्ट (Rust)

लक्षण

यह रोग में प्याज की अपेक्षा लहसुन अधिक होता है। शुरू में पत्तियों पर छोटे, पीले से सफेद धब्बे (flecks), धारियां तथा चित्तियां दिखाई देती हैं। जैसे ही यह क्षेत्र फैलता है, पर्ण-ऊतक, जो उस भाग को ढके होता है, टूट जाता है और उस पर नारंगी

रंग के रोगकारक के बीजाणु दिखाई पड़ते हैं। गंभीर रूप से संक्रमित पत्तियां पूर्णरूप से स्फोटों से ढकी होती हैं। परिणामस्वरूप पत्तियां पीली होकर सूख जाती हैं।

रोगकारक एवं रोग-अनुकूल परिवेश

यह रोग *पक्सिनिया पोरी (Puccinia porri)* नामक कवक से होता है। यह रोगकारक चीनी लहसुन, जापानी बंचिंग प्याज, लीक, प्याज तथा शैलोट को संक्रमित करता है। यह कवक पौधे के मलबे तथा मृदा में टेलियोस्पोरों के रूप में रहता है। इसका फैलाव हवा द्वारा होता है, जो एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाते हैं और स्वस्थ पौधों को संक्रमित करते हैं। रोग की वृद्धि ठंडे तापमान और अधिक आर्द्रता में अधिक होती है।

रोग-प्रबंधन

इस रोग के प्रबंधन के लिए निम्नलिखित उपाय करें :

- संक्रमित पौधे के मलबे को इकट्ठा करके नष्ट कर दें तथा खेत की सफाई रखें।
- उप्युक्त फसल-चक्र अपनाएं।
- वैकल्पिक पोषक पौधों को उस जगह से निकालकर नष्ट कर दें।
- कवकनाशी जैसे मैन्कोजेब या मैनेव या कॉपर ऑक्सीक्लोराइड या ट्राइएडीमेफान या ट्राइएडिमेनाल आदि कवकनाशियों का छिड़काव करें।

5. प्याज की श्याम चित्ती (Onion smudge)

लक्षण

प्याज के शल्ककंदों के बाहरी शल्कों पर छोटे, गहरे हरे से काले बिंदु दिखाई देते हैं। ये छोटे धब्बे, सफेद प्याज पर शल्कों पर फैले होते हैं या एक साथ समूह बनाकर संकेंद्री छल्ले बनाते हैं जो श्याम चित्ती की तरह दिखाई देते हैं। यह रोग फैलकर भीतरी शल्कों को संक्रमित करता है, जिसके परिणामस्वरूप शल्ककंदों पर दबा हुआ पीला भाग बन जाता है।

रोगकारक एवं रोग-अनुकूल परिवेश

यह रोग, *कोलेटोट्राइकम सर्सीनैन्स (Colletotrichum circinans)* नामक कवक से होता है। यह कवक संक्रमित प्याज के शल्कों पर मृदा में या भंडारित शल्ककंदों में रहता है। खेत में यह रोग कटाई से थोड़ा पहले दिखाई देता है। अनुकूल वातावरण में कवक बाहरी शल्कों पर आक्रमण करता है तथा संक्रमित भाग पर बीजाणु बनते हैं। वे जल की बूंदों द्वारा दूसरे शल्कों पर जाते हैं जहां वे अंकुरित होकर शल्ककंदों को संक्रमित करते हैं। पोषक पौधों की अनुपस्थिति में ये रोगकारक कई सालों तक मृदा में रह सकते हैं। यह रोग 10–32° सेल्सियस तापमान पर वृद्धि करता है। 25° सेल्सियस तापमान के साथ यदि वर्षा अधिक हो तो इस रोग की वृद्धि अधिक होती है।

रोग-प्रबंधन

- कर्षण प्रक्रियाएं जैसे फसल–चक्र, जल निकास की अच्छी व्यवस्था, स्वस्थ बीजों का चुनाव, शल्ककंदों को खुदाई के बाद सुखाना, आदि के द्वारा भंडारण के समय इस रोग को नियंत्रित किया जा सकता है।

- इस रोग के आपतन को कम करने के लिए खुदे हुए शल्कों को वर्षा से बचाना, जल्दी तथा ठीक ढंग से सुखाना और भंडारण की जगह में अच्छे वायु के आवगमन की व्यवस्था करनी चाहिए।
- सफेद प्याज की अपेक्षा लाल रंग की प्याज ज्यादा रोग–प्रतिरोधी होती है। इसलिए जिन क्षेत्रों में इस रोग का प्रकोप अधिक हो वहां लाल रंग की किस्में लगानी चाहिए।
- कटाई से पहले कवकनाशी जैसे मैन्कोजेब (0.25 प्रतिशत) या कार्बेन्डाजिम (0.1 प्रतिशत) का छिड़काव करने से यह रोग भंडारण के समय नहीं लगता।

6. प्याज का पीत वामन रोग (Onion yellow dwarf)

लक्षण

पुरानी पत्तियों के आधार पर पीली धारी बनती है, पत्तियां पीली, व्याकुंचित हो जाती हैं एवं नई पत्तियां चपटी हो जाती हैं। पत्तियों तथा फूलों के डंठल छोटे, बलदार तथा जलीय हो जाते हैं। प्रभावित प्याज की पैदावार कम हो जाती है। संक्रमित पौधे के शल्ककंद विकृत हो जाते हैं तथा इन शल्ककंदो का भंडारण नहीं किया जा सकता क्योंकि वे कवकों के प्रति अधिक सुग्राही हो जाते हैं।

रोगकारक एवं रोग-अनुकूल परिवेश

प्याज का पीत वामन रोग, *पीत वामन विषाणु* (yellow dwarf virus) से होता है। प्याज, लहसुन तथा लीक के अतिरिक्त एलियम की कई अन्य जातियां भी इस रोग के प्रति सुग्राही होती हैं। यह विषाणु *माइजस परसीकी* नामक माहू कीट से स्थानांतरित होता है।

रोग-प्रबंधन

- इस रोग का प्रबंध कठिन होता है फिर भी विभज्योतक शीर्ष संवर्धन से विषाणुमुक्त पौधों का उत्पादन करके इस रोग से बचाया जा सकता है।
- रोगी पौधों को खेत से निकाल दें।
- उचित कीटनाशी का प्रयोग करके विषाणु वाहक कीटों को नियंत्रित किया जा सकता है।

7. लहसुन मोजेक (Garlic mosaic)

लक्षण

लहसुन का मोजेक रोग उन सभी जगहों पर लगता है जहां यह फसल उगाई जाती है। संक्रमित पौधे में मोजेक जैसे लक्षण दिखते हैं और फसल की पैदावार कम हो जाती है।

रोगकारक

यह रोग, *गार्लिक मोजेक विषाणु (Garlic mosaic virus)* के द्वारा होता है। यह विषाणु माहू की दो जातियों *माइजस परसीकी* तथा *एफिस गासिपी* कीटों से स्थानांतरित होता है।

रोग-प्रबंधन

- फसल-चक्र अपनाएं।
- खेत की सफाई रखें।
- बुआई के लिए रोग-मुक्त लहसुन का प्रयोग करें।

अध्याय – 24

जड़ एवं तने वाली सब्जियों के रोग (Diseases of root and stem vegetable crops)

अ. गाजर के रोग (Diseases of carrot)

गाजर (*डॉकस कैरोटा एल* – ***Daucus carota L.***) की खेती लगभग पूरे विश्व में की जाती है। गाजर विटामिन ए (835 माइक्रोग्राम / 100 ग्राम) का प्रमुख स्रोत है। इसके अलावा इसमें खनिज लवण प्रतिऑक्सीकारक तथा रेशे पाए जाते हैं। गाजर का चमकीला नारंगी रंग बीटा–कैरोटीन (8285 माइक्रोग्राम / 100 ग्राम) के कारण होता है जो मनुष्य में उपाचय के द्वारा अंशतः विटामिन ए में बदल जाता है। भारत में इसकी खेती ठंडे मौसम में या समुद्र तल से अधिक ऊचांई पर होती है। इसमें अनेक रोग लगते हैं, फसल की उत्पादकता को कम कर देते हैं। उनमें से कुछ महत्वपूर्ण रोगों, रोग के लक्षण, रोग कारक, रोग अनुकूल पर्यावरण तथा रोग प्रबंधन का वर्णन संक्षेप में किया गया है।

1. सर्कोस्पोरा पर्ण अंगमारी (Cercospora leaf blight)

लक्षण

इस रोग के लक्षण पत्तियों, तनों, पर्णवृतों तथा फूल वाले भागों पर दिखाई देते हैं। शुरू में पत्तियों की सतह पर लंबे, धूसर से भूरे या काले धब्बे बनते हैं जो प्रायः पत्तियों पर किनारे से उत्पन्न होते हैं। जैसे ही पत्तियों पर इन धब्बों की संख्या बढ़ जाती है, प्रभावित भाग मर जाते हैं तथा पत्तियां सिकुड जाती हैं। धीरे–धीरे रोगकारक की बढ़वार के कारण, ये धब्बे पर्णवृंत को चारों ओर से घेर लेते हैं और अंततः पत्तियां मर जाती हैं। रोगकारक फूल पर भी आक्रमण करता है और संक्रमण देर तक होने पर बीज के अंदर प्रवेश कर जाता है।

रोगकारक एवं रोग-अनुकूल परिवेश

यह रोग, *सर्कोस्पोरा कैरोटी* (*Cercospora carotae*) नामक कवक से होता है। यह रोगकारक गाजर की कृषि–योग्य एवं जंगली जातियों को संक्रमित करता है। यह कवक संक्रमित पौधों के अवशेषों तथा बीजों पर जीवित रहता है। कवक के कोनिडियम हवा द्वारा उड़कर नमीयुक्त पत्तियों पर पड़ते हैं और वहां अंकुरित होकर रंध्र में प्रवेश करते हुए संक्रमण करते हैं। पुरानी पत्तियों की अपेक्षा नई पत्तियां इस रोगकारक के प्रति अधिक रोगग्राही होती हैं। पुरानी पत्तियों पर रोगकारक प्राथमिक विक्षति कर कोनिडियम पैदा करते हैं और हवा द्वारा फैलकर पाधें में द्वितीयक संक्रमण करते हैं। इस रोगकारक का फैलाव हवा, जल तथा प्रक्षेत्र में प्रयोग होने वाले औजारों के द्वारा होता है। रोगकारक के कोनिडियमों के अंकुरण तथा संक्रमण के लिए लगभग 28° सेल्सियस तापमान अनुकूल होता है।

रोग-प्रबंधन

इस रोग का प्रबंधन निम्न प्रकार से किया जा सकता है:

- खेत में जल–निकास का उचित प्रबंध करें।
- बोआई के लिए स्वस्थ तथा प्रमाणित बीज का प्रयोग करें।
- खेत से संक्रमित पौधों के अवशेषों तथा जंगली गाजर को निकालकर नष्ट कर दें।
- कम से कम 2–3 वर्ष का फसल–चक्र अपनाएं।
- बुआई से पहले बीज का थीरम (2.5 ग्राम / लिटर पानी) से उपचार करें या कॉपर आक्सीक्लोराइड (3 ग्राम / लिटर पानी) या क्लोरोथैलोनील (2 ग्राम / लिटर पानी में) का घोल बनाकर खड़ी फसलों पर छिड़काव करें।

2. आल्टनेरिया पर्णचित्ती (Alternaria leaf spot)

लक्षण

पत्तियों पर छोटे, अनियमित आकार के गहरे भूरे या काले धब्बे बनते हैं। इन धब्बों के चारों ओर संकरा पीला क्षेत्र बनता है। बाद में, इन धब्बों के आकार तथा संख्या बढने पर सभी प्रभावित पर्णक मर जाते हैं। आर्द्र मौसम में यह रोग तेजी से बढ़ता है। पर्णवृंतों पर बने लबंवत् गहरे रंग के धब्बे, उसे चारों ओर से घेर लेते हैं, जिसके परिणामस्वरूप पत्तियां मर जाती हैं। इस रोग के कारण बीज का विकास नहीं होता है और यदि बीज बन भी जाते हैं तो रोगी बीजों को बोने से पौद में आर्द्र पतन रोग के लक्षण उत्पन्न होते हैं तथा बीजवृंतों पर अंगमारी के लक्षण तथा कभी–कभी जड़ों में काला सड़न रोग हो जाता है।

रोगकारक एवं रोग-अनुकूल परिवेश

यह रोग, *एल्टरनेरिया डौसी (Alternaria dauci)* नामक कवक से होता है। यह रोगकारक गाजर के अतिरिक्त दूसरी फसलों जैसे पार्सले (*पेट्रोसेलिनम क्रीसपम*), सेलेरी (*एपियम ग्रेवीओलेन्स वेराइटी रेपेसीयम*) तथा खरपतवारों जैसे *डैकस मैक्सिमस, रिडोल्फीया सेजेटम तथा कौकेलीस टेनेला* को भी संक्रमित करता है। रोगकारक बीज–उत्पन्न है जिसके कवकजाल बीज की सतह तथा आंतरिक भागों जैसे फलभित्ति तथा बीजावरण के बीच में एक सतह के रूप में पाए जाते हैं। इसके अतिरिक्त यह रोगकारक संक्रमित पौधों के अवशेषों, मृदा, स्वैच्छिक उगे हुए गाजर के पौधों पर काफी समय तक जीवित रहते हैं। रोगकारक के संक्रमण करने के लिए पौधों पर स्वतंत्र जल, ओस या वर्षा का उपलब्ध होना आवश्यक होता है। कवक के बीजाणुओं का प्रसारण बहते पानी, वर्षा की बूंदों या संक्रमित बीजों के द्वारा होता है। फसलों को कम नाइट्रोजन की मात्रा देने पर रोग का प्रकोप बढ़ जाता है।

रोग–प्रबंधन

इस रोग का प्रबंधन निम्न प्रकार से किया जा सकता है:

- संक्रमित पौधों के अवशेषों को खेत से निकालकर नष्ट कर दें।
- बोआई के लिए स्वस्थ एवं प्रमाणित बीजों का प्रयोग करें।
- खेत में जल–निकास का उचित प्रबंध करें।
- बीज को गरम जल (50° सेल्सियस तापमान) में 30–40 मिनट तक डुबाकर रखें तथा सुखाकर बोएं।

- नाइट्रोजनयुक्त उर्वरकों का सही मात्रा में प्रयोग करें।
- बीज को वीटावेक्स + थीरम (2.5 ग्राम/किग्रा. बीज की दर से) से उपचारित करें।
- रोगरोधी वंशक्रमों (लाइनों) जैसे आई.एच.आर. – 231, आई.एच.आर. – 232, आई.एच.आर. – 244, आई.एच. आर. –248 तथा आई.एच.आर. –264 की बुआई करें।
- फसलों पर ब्लाइटॉक्स – 50(0.25 प्रतिशत) या डाइथेन एम–45 (0.25 प्रतिशत) का छिड़काव किया जा सकता है। डाइफेनाकोनाजोल कवकनाशी को (125 ग्राम/हेक्टेयर की दर से) 21 दिन के अंतराल में फसलों पर छिड़काव करने पर लाभ होता है।

3. जलीय मृदु विगलन (Watery soft rot)

लक्षण

गाजर की पौधों पर जलीय और मुलायम सड़े हुए ऊतक ही इस रोग के मुख्य लक्षण हैं। सड़न की उन्नत अवस्था में सफेद फलफी कवक उपस्थित होता है। बाद में विगलन भाग पर रोगकारक के स्केलेरोशिया बनते हैं जो पहले सफेद, बाद में भूरे तथा अंत में काले रंग के हो जाते हैं।

रोगकारक एवं रोग-अनुकूल परिवेश

यह रोग *स्क्लेरोटिनिया स्क्लेरोशियोरम (Sclerotinia sclerotiorum)* नामक कवक से होता है। रोगकारक बहुत से पाधों को संक्रमित करता है, जिसमें लगभग 350 जातियां तथा 60 कुल के पौधे होते हैं। इनमें से महत्वपूर्ण सब्जियां जैसे गांठ गोभी, सलाद, पत्तागोभी, पालक, सौंफ, मटर, राजमा, शिमला

मिर्च, गाजर, सेम वाली फसलें, शलजम, सेलरी, बैंगन इस रोग के प्रति रोगग्राही हैं। यह कवक मृदा में स्क्लेरोशिया के रूप में काफी समय तक जीवित रहता है। एस्कोस्पोर नमीयुक्त हवा द्वारा उड़कर दूसरे पौधों में संक्रमण करते हैं। यह रोग उस समय अधिक गंभीर होता है जब खुदाई के समय मौसम ठंडा एवं वर्षा होती है, जो कवक के विकास में मदद करती है। कम तापमान एवं अधिक आर्द्रता इस रोग को बढ़ावा देते हैं।

रोग–प्रबंधन

इस रोग का प्रबंधन निम्न प्रकार से किया जा सकता है:

- फसल के अवशेषों को खेत से निकालकर जला दें।
- गार्मियों में खेत की गहरी जुताई करें।
- संक्रमित खेत की सिंचाई करें।
- खुदाई से पहले फसलों पर कवकनाशी जैसे कार्बेन्डाजिम या थायोफेनेट मेथिल, रोबल या सुमिस्लेक्स का छिड़काव करें।

4. मृदु विगलन (Soft rot)

लक्षण

इस रोग के लक्षण शुरू में जड़ के निचले भाग पर छोटे, जलीय, भूरे धब्बों के रूप में दिखाई देते हैं, जो बाद में जल्दी से कड़े होकर जड़ के आंतरिक भाग में फैल जाते हैं तथा वहां से वे अंदर से बाहर की तरफ बढ़ते हैं। रोग के अधिक बढ़ने पर संक्रमित भाग ऊतकों के गलने के कारण मुलायम हो जाता है जिससे बदबू आने लगती है तथा कभी–कभी पौधों में म्लानि लक्षण दिखाई देते हैं।

रोगकारक एवं रोग-अनुकूल परिवेश

यह रोग *इर्विनिया कैरोटोवोरा उपजाति कैरोटोवोरा (Erwinia corotovora subsp. carotovora)* नामक जीवाणु से होता है। यह जीवाणु संक्रमित पौधों के अवशेषों पर मृदा में जीवित शेष रहता है और अधिक वर्षा की अवस्था में या खेत में जल–निकास की व्यवस्था ठीक न होने पर पौधों की जड़ों को संक्रमित करता है। जड़ें खुदाई या भंडारण के समय संदूषित हो जाती हैं।

रोग–प्रबंधन

इस रोग का प्रबंधन निम्न प्रकार से किया जा सकता है:

- खेत में जल-निकास की उचित व्यवस्था करें।
- क्लोरोनित जल से जड़ों की धुलाई करें।
- जड़ों का भंडारण करने से पहले उनकी सतह को सुखा लें।
- जड़ों को 0° सेल्सियस तापमान पर भंडारित करें।

5. पीला/पीत रोग (Yellow disease)

लक्षण

इस रोग में पत्तियों की शिराएं पीली एवं चमकीली दिखाई देती हैं। संक्रमित पौधों से अपस्थानिक प्ररोह अधिक निकलने के कारण पौधों का ऊपरी भाग एक घने गुच्छे के रूप में दिखाई देता है। पर्णवृंत तथा ऊपरी प्ररोहों की पोरियां छोटी हो जाती हैं। पुरानी पत्तियों के पर्णवृंत ऐंठकर टूट जाते हैं। ऐसी पत्तियां वाबची या लाल रंग की दिखाई देती हैं। पौद पर छोटी अवस्था में ही रोग का संक्रमण होने की स्थिति में पौधे मर भी सकते हैं।

रोगकारक एवं रोग-अनुकूल परिवेश

यह रोग, *ऐस्टर यलोज फाइटोप्लाज्मा (Aster yellows phytoplasma)* से होता है। यह गाजर के अलावा ऐस्टर, गेंदा, प्याज, लेट्यूस तथा सलेटी पौधों को भी संक्रमित करता है। यह फाइटोप्लाज्मा पौधे के पोषवाह ऊतक में पाया जाता है। इसका स्थानांतरण एस्टर पातफुदक (लीफ हॉपर) नामक कीट के द्वारा होता है। संक्रमित पौधों में 25° सेल्सियस पर 18 दिन में रोग के लक्षण दिखाई देते हैं।

रोग–प्रबंधन

इस रोग का प्रबंधन निम्न प्रकार से किया जा सकता है:

- बोआई हेतु स्वस्थ एवं प्रमाणित बीजों का प्रयोग करें।
- खेत से संक्रमित पौधों को निकालकर नष्ट कर दें।
- खेत के आसपास से बहुवर्षी घासों को निकालकर साफ कर दें।
- रोगवाहक कीट जैसे माहू या सफेद मक्खी के नियंत्रण के लिए ऑक्सीमेथिल डिमेटान या डाइमेथोएट (0.01 प्रतिशत) का छिड़काव करें।

ब. मूली के रोग (Diseases of radish)

मूली (*रेफेनस सैटाइवस – Ramphanus sativus*) की खेती प्रायः सभी स्थानों पर की जाती है। इसको ठण्ड से मध्य जलवायु में उगाया जाता है। मूली में विटामिन सी (15 मिलीग्रा / 100 ग्राम) तथा विभिन्न प्रकार के खनिज लवण (पोटेशियम) पाए जाते हैं। मूली की विभिन्न जातियां विभिन्न आकार तथा रंगों जैसे सफेद, गुलाबी एवं बैंगनी में पाई जाती हैं। 100 ग्राम ताजी

मूली से केवल 16 कैलोरी ऊर्जा मिलती है। मूली में अन्य सरसों–वर्गीय सब्जियों की तरह रोग लगते हैं, जिनमें से प्रमुख रोगों के लक्षण, रोगकारक, रोग अनुकूल परिवेश एवं उचित रोग–प्रबंधन का संक्षेप में नीचे वर्णन किया गया है।

1. सफेद रतुआ/सफेद किट्ट (White rust)

लक्षण

इस रोग के लक्षण शुरू में पत्तियों की निचली सतह पर छोटे, हल्के हरे धब्बे के रूप में दिखाई देते हैं जो बाद में सफेद रंग के फफोलों मे बदल जाते हैं। अंत में उठे हुए सफेद फफोले बनते हैं। ये फफोले पत्तियों की दोनों सतहों तथा तनों पर विकसित होते है तथा बाद में फूट जाते हैं जिनमें से बहुत सी चूर्णीय सफेद बीजाणुधानी निकलती हैं। पौधों में सर्वांगी संक्रमण होने पर भूमि से ऊपर वाला भाग तथा जड़ प्रभावित होते हैं तथा नया पौद कुरूप तथा अनियमित आकार की हो जाती है। संक्रमण फूल वाले भाग में होने पर बीज के डंठल में अतिवृद्धि हो जाती है जिससे वह फूल जाता है। इसके अतिरिक्त जड़ें गांठदार हो जाती हैं। बीजवृंत के बदले स्टेहेड बन जाता है और बीज का विकास नहीं होता। बीज की उपज तथा गुणवत्ता दोनों प्रभावित होती हैं।

रोगकारक एवं रोग-अनुकूल परिवेश

यह रोग, *एल्ब्युगो कैन्डिडा (Albugo candida)* नामक कवक से होता है। यह रोग मूली के साथ गोभी–वर्गीय फसलों तथा खरपतवारों को भी संक्रमित करता है। रोगकारक निषिक्तांडों या कवकजाल के रूप में संक्रमित बीजशीर्ष की पीटिका में या अन्य पौधे के अवशेषों मे उत्तरजीवी के रूप में रहता है। ये प्रभावित भाग, संक्रमण के प्राथमिक स्रोत होते हैं जो अगली फसलों को

संक्रमित करते हैं। निषिक्तांड अंकुरित होकर नए पौधे को संक्रमित करते हैं तथा पत्तियों पर सफेद फफोले बनते है। इन फफोलों पर बहुत से बीजाणु बनते हैं जो हवा, वर्षा या कीटों द्वारा एक स्थान से दूसरे स्थान पर फैलते हैं, तथा वहां अंकुरित जीवबीजाणु पैदा करते हैं। ये जीव-बीजाणु घूमते तथा तैरते हुए कुछ दूर जाकर पौधों पर आक्रमण करते हैं और अंकुरित होकर रंध्र के द्वारा पौधे के अंदर प्रवेश करके पौधों को संक्रमित करते हैं। बीजाणुधानी के अंकुरण के लिए सूखे मौसम की आवश्यकता होती है, जबकि रोग के विकास के लिए ठंड तथा नम वातावरण की आवश्यकता होती है। ओस, धुंध, हल्की वर्षा तथा ठंडा तापमान जीवबीजाणु की सक्रियता के लिए उचित होता है।

रोग–प्रबंधन

इस रोग का प्रबंधन निम्न प्रकार से किया जा सकता है:

- बुआई के लिए रोग–रहित एवं प्रमाणित बीजों का प्रयोग करें।
- फुव्वारा विधि से फसलों की सिंचाई न करें।
- संक्रमित पौधों के अवशेषों को खेत से इकट्ठा करके नष्ट कर दें।
- फसल के अंदर तथा खेत के आसपास से गोभी–वर्गीय खरपतवारों को नष्ट कर दें।
- बीज को थीरम, मैंकोजेब या रिडोमिल एम.जेड.–72 (2. 5 ग्राम प्रति लिटर) की दर से उपचारित करें।
- मैंकोजेब या रिडोमिल एम.जेड–72 (2.5 ग्राम प्रति लिटर पानी) का छिड़काव रोग के लक्षण दिखाई देने पर 15 दिन के अंतराल पर करें।

2. काला मूल विगलन (Black root rot)

लक्षण

इस रोग के लक्षण शुरू में पत्तियों पर छोटे जलीय धब्बे के रूप दिखाई देते है जो बाद में भूरे पड़े हुए चिह्न के रूप में दिखाई देते हैं जिनके चारों ओर हरिमाहीन क्षेत्र बन जाता हैं। दूसरे लक्षण के रूप में पत्तियों के किनारे पीली विक्षति शुरू होती है और मध्य शिरा की तरफ बढ़ती है, जो कोणीय या अंगेजी के "V" अक्षर के आकार की होती हैं। ये विक्षतियां बाद मे सूखकर पीली भूरी या भूरे रंग की हो जाती हैं। इन पीली भूरी विक्षतियों की शिराएं काली हो जाती हैं। तीव्र संक्रमण होने पर वे मुरझाकर गिर जाती हैं। पौधे की जड़ तथा तना भी काला हो जाता है। पौधे छोटे रह जाते हैं। यदि संक्रमण पौधे की छोटी अवस्था में होता है तो पौधें का विकास रुक जाता है। रोगकारक संवहनी पूल में रहता है तथा फलियों तथा बीज तक फैल जाता है।

रोगकारक एवं रोग अनुकूल पर्यावरण

यह रोग, *जैन्थोमानास कैम्प्रेस्ट्रिस पैथोवार कैम्प्रेस्ट्रिम (Xanthomonas campestris* pv. *camperstis)* या जै. *कैम्प्रेस्ट्रिस पैथोवार रफैनी (X.campestris* pv. *raphani)* नामक जीवाणुओं के द्वारा होता है। *कैम्प्रेस्ट्रिस पैथोवार रफैनी* केवल पर्ण चित्ती के लक्षण पैदा करता है। ये रोगकारक मूली के अतिरिक्त गोभी वर्गीय पौधों जैसे पत्तागोभी, फूलगोभी, ब्रोकोली, काली सरसों तथा शलजम को भी संक्रमित करते हैं। यह जीवाणु बीज–जनित होता है और बीजों तथा संक्रमित पौधों के अवशेषों, मृदा तथा खरपतवारों पर जीवित शेष रहता है। यह हवा, वर्षा की बूंदों तथा कीड़ों के द्वारा फैलता है।

रोग–प्रबंधन

रोग प्रबंधन के निम्नलिखित उपायों को अपनाने से इस रोग के प्रभाव को कम किया जा सकता है:

- बुआई के लिए स्वस्थ बीजों का चुनाव करें।
- खेत से खरपतवारों तथा संक्रमित पौद–मलबे को इकट्ठा करके नष्ट करें।
- जीवाणु एक वर्ष तक मृदा में जीवित रह सकता है। इसलिए गोभी–वर्गीय फसलों के अतिरिक्त दूसरी फसलों को फसल–चक्र में शामिल करें। यह फसल–चक्र कम से कम 2 वर्ष का होना चाहिए।
- बीजों को गरम जल से (50° सेल्सियस पर 25–30 मिनट तक) उपचारित करें। बीजों को जीवाणुनाशियों जैसे स्ट्रेप्टोमाइसिन, ऑरियोमाइसिन ऑटेरामाइसिन से उपचारित करने के बाद सोडियम हाइपोक्लोराइट से भी उपचारित करें। बुआई लिए रोग–प्रतिरोधी किस्मों का चुनाव करें।
- मृदा में ब्लीचिंग पाउडर (10–12.5 किग्रा./हे. दर से) को तरल रूप में मिलाने से लाभ होता है।

स. अरबी के रोग (Diseases of colocasia)

अरबी (*कोलोकेसिया एस्क्यूलेन्टा* एल.–*Colocasia esculenta* L) भारत के साथ विश्व के लगभग सभी देशों में उगाई जाता है। इसके घनकंदो में आलू से अधिक कैलोरी होती है जो ऐमिलोस एवं एमिलोपेक्टिन नामक जाति के कार्बोहाइड्रेट से प्रमुख रूप मे आती हैं। इसकी पत्तियों एवं पीली मांसल जड़ों में फीनोलिक

सलेवेनॉयड पिगमेंट प्रतिऑक्सीकारक बीटा–कैरोटीन और क्रिप्टोजैन्थिन के साथ विटामिन ए एवं उपयोगी बी काम्पलैक्स (पाइरिडाक्सिन विटामिन बी–6) पाया जाता है। इसमें खनिज लवण जैसे जिंक, मैगनीशियम, कॉपर, लौह तथा मैंगनीज भी पाए जाते हैं। इस फसल में रोग कवकों एवं जीवाणुओं के द्वारा होते हैं जो इसकी उत्पादकता एवं गुणवत्ता को प्रभावित करते हैं। इस अध्याय में अरबी के प्रमुख रोगों के लक्षण, रोग कारक, रोग अनुकूल परिवेश तथा समुचित प्रबंधन का संक्षेप में वर्णन किया गया है।

1. पीथियम मूल एवं घनकंद विगलन (Pythium root and corm rot)

लक्षण

मूल विगलन में रोग के लक्षण प्रायः घनकंद के आधार से शुरू होते हैं जो हल्के पीले से धूसर नीले या गहरे बैंगनी रंग में बदल जाते हैं और बोतल की गर्दन के आकार समानांतर बनते हैं। जड़ें *पी. अल्टीमम* से संक्रमित होने पर लसलसी हो जाती हैं और जल्दी सड़ती हैं, जिससे प्रकंद मुलायम तथा पनीर की तरह हो जाते हैं। पर्णवृंतों का आधार जलीय दिखाई देता है और पत्तियां अंत में टूटकर गिर जाती हैं। घनकंद मुलायम हो जाते हैं एवं उनसे पानी बाहर निकलता है जिससे स्टार्च में कमी आ जाती है।

रोगकारक एवं रोग-अनुकूल परिवेश

यह रोग, *पीथियम* जातियों *(Pythium* spp.*)* जैसे *पी. एफेनीडरमेटम (P- aphanidermatum), पी. मिरियोटाइलम (P. myriotylum), पी. अल्टीमम (P. ultimum), पी. ग्रेसाइल (P. gracile)* तथा *पी. इरगुलेरी (P. irregularae)* नामक कवकों से होता है।

ये कवक मृदा उत्पन्न हैं और क्लेमाइडोस्पोरों या निषिक्तांडों के रूप में जीवित शेष रहते हैं। अनुकूल मौसम में ये अंकुरित होते हैं तथा बीजाणु आधार पैदा करते हैं, जिस पर बीजाणुधानी बनती हैं, जिससे जीव-बीजाणु पैदा होते हैं। जीव बीजाणु के कुछ समय पानी में तैरने के बाद इसका कशाभ (फ्लेजेला) निकल जाता है और ये पौधे में संक्रमण करते हैं। रोगकारक मूलरोम के वृद्धि क्षेत्र में प्रवेश करता है और मृदु विगलन करता है। पीथियम जातियों के संक्रमण तथा फैलने के लिए गर्म एवं आर्द्र मौसम आवश्यक होता है। बीजाणुधानी के उत्पादन के लिए 28–30° सेल्सियस तापमान अनुकूलतम होता है।

रोग–प्रबंधन

इस रोग का प्रबंधन निम्न प्रकार से किया जा सकता है:

- गर्मियों में खेत की गहरी जुताई करें और खेत को सुखा लें।
- बुआई के लिए स्वस्थ घनकंदों को प्रयोग में लाएं।
- उपयुक्त फसल-चक्र अपनाएं।
- रोग-प्रतिरोधी किस्मों की बुआई करें।

2. फ्यूजेरियम विगलन (Fusarium rot)

लक्षण

अरबी में इस रोग के लक्षण फ्यूजेरियम की तीनों जातियों के घनकंदों पर सड़न के अलग–अलग लक्षण पैदा करते हैं। भूरे किनारों के साथ यह सड़न घनकंदों के आधार पर बगल से शुरू होती है जो पूरे या आधे भाग को सड़ा देती है। *फ्यू. सोलेनी* एक निश्चित किनारी के साथ घनकंदों पर काली चूर्णिल सड़न करते

हैं। सड़े हुए भाग पर सफेद कवक वृद्धि दिखाई देती है और घनकंद के भार में कमी आ जाती है। सड़े हुए घनकंदों से दुर्गंध आने लगती है। *फ्यू. प्रोलीकेरेटम* घनकंदों पर पीली स्पंजी विगलन पैदा करता है। कभी–कभी यह विगलन घनकंदों के आधार पर पाई जाती है।

रोगकारक एवं रोग-अनुकूल परिवेश

इस रोग के लिए फ्यूजेरियम *(Fusarium)* की तीन जातियां फ्यू. ऑक्सीस्पोरम *(F. oxysporum)*, *फ्यू सोलेनी (F. solani)* तथा *फ्यू प्रोलीफेरेटम (F. prolipharatum)* उत्तरदायी होती हैं। *फ्यूजेरियम* जातियां मृदा में रहती हैं और पौधों की बहुत सी जातियों को संक्रमित करती हैं। *फ्यू. सोलेनी* के लिए आलू एक सामांतर पोषक पौधा है। *फ्यूजेरियम* जातियां मृदा में क्लेमाइडोस्पोरों के रूप में जीवित शेष रहती हैं और अनुकूल वातावरण होने पर फ्यूजेरियम जातियां कोनिडियम पैदा करती हैं जो कि घनकंदों की खुदाई करते समय घाव लगे स्थान से संक्रमण करता है। भंडारगृह का गर्म तापमान (लगभग 30° सेल्सियस) और आपेक्षिक आर्द्रता (90–100 प्रतिशत), लगातार अंधेरा तथा अनुकूलतम पी. एच. कोनिडियमों के अंकुरण में मदद करते हैं।

रोग–प्रबंधन

इस रोग का प्रबंधन निम्न प्रकार से किया जा सकता है:

- खेत में पड़े संक्रमित पौधों के अवशेषों को निकालकर नष्ट कर दें।
- लंबी अवधि (3–4 वर्ष) का फसल–चक्र अपनाएं।

- घनकंदों की खुदाई के 15 दिन पहले फसलों में कवकनाशी जैसे कार्बेन्डाजिम (0.1 प्रतिशत) का छिडकाव करने पर इसकी सड़न कम हो जाती है।
- घनकंदों को गरम जल (50° सेल्सियस) और 200 पी.पी.एम. बीनोमिल के घोल में 5 मिनट के लिए डुबाने पर फ्यूजेरियम विगलन कम होता है।

3. फाइटोफ्थोरा अंगमारी (Phytophthora blight)

लक्षण

इस रोग के लक्षण शुरू में पत्तियों पर हल्के भूरे रंग के छोटे, गोलाकार धब्बे के रूप में दिखाई देते हैं। ये धब्बे बढ़ने पर बड़े तथा गोलाकार व अनियमित आकार के हो जाते हैं तथा उनका रंग लाल–हरा या पीला हो जाता है। आर्द्र मौसम में धब्बों के ऊपर कवक की वृद्धि दिखाई देती है तथा धब्बों से पीला–लाल स्राव निकलता है जो बाद में सूखकर सभी पत्तियों पर धब्बे के बीच में छेद बनाता है। रोग का प्रकोप बढ़ जाने पर पत्तियां समय से पूर्व पौधे से गिर जाती हैं। यह रोग पत्तियों के अतिरिक्त पर्णवृंतों पर भी उत्पन्न होता है। संक्रमित पौधों से प्राप्त धनकंद खेत में या भंडारण के दौरान सड़ जाते हैं, जिससे घनकंदों को भारी नुकसान होता है।

रोगकारक एवं रोग-अनुकूल परिवेश

यह रोग, *फाइटोफ्थोरा कोलोकेसी (Phytophthora colocasiae)* नामक कवक से होता है। यह रोगकारक अरबी के अतिरिक्त दूसरे पौधों जैसे *एलोकेसिया, का. एन्ओीकोरम, वै. एस्क्युलेन्टा, एमॉर्फोफैलस कैम्पेनुलेटस, आलू, नींबू, सोटाकपर्स इन्टोग्रीफोलिया, कोकस म्यूसीफेरा, एरेका कैटेचू, थीयोब्रोमा काको,*

टमाटर, *हीवीया ब्राजीलेन्सिस मेलस सिलवेस्ट्रिस, अनन्नास स्कुमासा, फ्रेंचबीन, पीपर वेटिल* आदि को भी संक्रमित करता है। यह कवक कवकजाल तथा निषिक्तांडों के रूप में पौधों के अवशेषों, खेत में पड़े संक्रमित घनकंदों पर जीवित शेष रहता है। यह कवक पौधों से स्वस्थ पौधों पर हवा या वर्षा की बूंदों के द्वारा होता है। इस रोग का प्रकोप तब अधिक होता है जब मौसम नम तथा तापमान मध्यम गर्म हो। अधिक नाइट्रोजन तथा कम पोटाश की दशा में इस रोग की तीव्रता बढ़ जाती है।

रोग–प्रबंधन

इस रोग का प्रबंधन निम्न प्रकार से किया जा सकता है:

- बुआई के लिए स्वस्थ घनकंदों का प्रयोग करें या प्रमाणित घनकंदों का प्रयोग करें।
- संक्रमित पौधों के अवशेषों को खेत से निकालकर नष्ट कर दें।
- कम से कम तीन वर्ष का फसलचक्र अपनाएं।
- खड़ी फसल पर कवकनाशी, मैंकोजेब, रिडोमिल एम. जेड़–72 (3.2 ग्राम / लिटर पानी) या कॉपर आक्सीक्लोराइड (3 ग्राम / लिटर पानी) का छिड़काव करें।
- घनकंदों के उपचार हेतु कवकनाशी मैंकोजेब या रिडोमिल एम.जेड (2.5 ग्राम लिटर पानी) या कॉपर ऑक्सीक्लोराइड (3 ग्राम लिटर पानी) का घोल बनाकर 15–20 मिनट तक डुबाकर रखें, इसके बाद सुखा लें।

य. शकरकंद के रोग (Diseases of sweet potato)

शकरकंद (*आइपोमिया बटैटास* – *Ipomea batatus*) एक महत्वपूर्ण कंदीय फसल है जिसके मांड़ (स्टार्च) का प्रयोग भोजन के लिए उष्ण तथा उपोष्ण देशों में किया जाता है। शकरकंद के मांड़ को ग्लूकोज, सीरप तथा औद्योगिक एल्कोहॉल के लिए प्रयोग किया जाता है। इसमें कंदों तथा जड़ों वाली सब्जियों में सबसे ज्यादा भोजन–कैलोरी प्राप्त होती है। इसकी खेती उड़ीसा, पश्चिम बंगाल, उत्तर प्रदेश छत्तीसगढ़ आदि राज्यों में की जाती है। शकरकंद के प्रमुख रोगों के लक्षण, रोग कारक, रोग अनुकूल परिवेश तथा प्रबंधन के विषय में सक्षिप्त वर्णन नीचे किया गया है।

1. म्लानि (Wilt)

लक्षण

इस रोग के लक्षण शुरू में लताओं तथा पत्तियों पर दिखाई देते हैं जिससे लताएं पीली हो जाती हैं तथा पत्तियां बदरंग होने लगती हैं। रोगी पौधों की पत्तियां विरूपित हो जाती हैं तथा अंत में पौधे मर जाते हैं। रोगी पौधों की पत्तियों की दो शिराओं के मध्य का भाग पीला हो जाता है। पुरानी पत्तियों के पर्णवृंत पर संक्रमण होने से पत्तियां गिर जाती हैं। संक्रमित लताओं को कटने पर इनके भीतरी भाग नीले या काले दिखाई देते हैं।

रोगकारक एवं रोग-अनुकूल परिवेश

यह रोग, *फ्यूजेरियम ऑक्सीस्पोरम* फ. स्पी बटैट्‌ास (*Fusarium oxysporum* F. sp. batatas) नामक कवक से होता है। रोगकारक मृदा तथा पौधों के अवशेषों पर क्लेमाइडोस्पोर के रूप में पाए जाते हैं।

रोग–प्रबंधन

इस रोग का प्रबंधन निम्न प्रकार से किया जा सकता है:

- बुआई के लिए स्वच्छ तथा रोगरहित कंदों एवं लताओं का उपयोग करें।
- बोने से पहले लताओं को कार्बेन्डाजिम के 0.05 प्रतिशत घोल में 5–10 मिनट तक डुबोकर उपाचारित करें।
- नाइट्रोजन, फॉस्फोरस तथा पोटाश की उचित मात्रा सहित संतुलित खाद एवं उर्वरकों का प्रयोग करें।
- फसलचक्र अपनाने से भी रोग की तीव्रता में कमी आती है।

2. सफेद रतुआ (White rust)

लक्षण

इस रोग के लक्षण के रूप मे पुरानी पत्तियों की निचली सतह पर अनियमित आकार के पीले धब्बे दिखाई देते हैं। बाद में इन धब्बों पर सफेद रंग के फफोले बन जाते हैं। फफोलों के फूटने पर उनमें से सफेद चूर्ण जैसा पदार्थ निकलता है जिसमे कवक के बीजाणु होते हैं। इन धब्बों के ठीक ऊपरी सतह का भाग भूरा हो जाता है। संक्रमित पत्तियां झुर्रीदार हो जाती हैं तथा रोगी पर्णवृंत एवं तने विरूपित हो जाते हैं। प्रभावित पौधों की किस्मों के पौधों में पत्तियों, तनों और फलों पर पीटिका का विकास होता है। पत्तियां झड़ जाती हैं तथा फूल भी गिर जाते हैं। कुछ किस्मों में इस रोग से कुचिंका एवं गुच्छित के लक्षण दिखाई देते हैं।

रोगकारक एवं रोग-अनुकूल परिवेश

यह रोग, *एल्ब्यूगो आइपोमिया पैन्ड्यूरेनी* (*Albugo ipomoea-panduranae*) नामक कवक से होता है। रोगकारक शकरकंद के अतिरिक्त दूसरे *कॉन्वोल्वुलेसी* कुल के पौधे जैसे *आइ. पैन्डुराटा, आइ. पेन्टाफिला, आइ. विलोमा, आइ हॉर्सफैली, आइ. पर्प्यूरिया, आइ. टेप्टैन्स और कैलोनिक्सन एक्यूलेरम तथा* दूसरे कुल के पाधे *एमैरेन्थस एल्बम* को भी संक्रमित करते हैं। कवक निषिक्तांडों के रूप में संक्रमित पौधों की पत्तियों तथा तनों पर उत्तरजीवी रहते हैं तथा ये प्राथमिक संक्रमण के लिए उत्तरदायी होते हैं। द्वितीयक संक्रमण हवा द्वारा बीजाणधानी एवं बीजाणु के फैलने से होता है। पौधों पर स्वतंत्र जल उपस्थित होने के कारण बीजाणुधानी अंकुरित होते हैं और जीवबीजाणु निकलते हैं या कभी–कभी एक बीजाणुधानी अंकुरित होकर संक्रमण–बिंदु बनाती हैं। वर्षा एवं ठंडा तापमान (12–18° सेल्सियस) इस फैलने के लिए के लिए अनुकूल होते हैं। रोगकारक रंध्र से होकर पौधे में प्रवेश करते हैं।

रोग–प्रबंधन

इस रोग का प्रबंधन निम्न प्रकार से किया जा सकता है:

- गर्मियों में खेत की गहरी जुताई करें।
- बुआई के लिए स्वस्थ एवं प्रमाणित बीजों का प्रयोग करें।
- संक्रमित पौधें के अवशेषों को खेत से निकालकर नष्ट कर दें।
- फसलों पर रिडोमिल एम.जेड. –72 या मैंकोजेब (0.25 प्रतिशत) का आवश्यकतानुसार छिड़काव करें।

3. राइजोपस मृदु विगलन (Rhizopus soft rot)

लक्षण

कंदों पर चोट लगने के कुछ समय बाद जलीय विक्षतियां बननी शुरू होती हैं। कंद के संक्रमित भाग मुलायम होकर सड़ने लगते हैं। रोग का संक्रमण किसी भाग से आरंभ होकर शीघ्र ही कंद के भीतरी भाग तक पहुंच जाता है। इस सड़े हुए भाग पर कवकजाल बनता है जो फैलकर कवकजाल बीजाणुधानी की पिनहेड की तरह संरचना बनाते हैं। 4-5 दिन बाद कंदों के आंतरिक ऊतक मुलायम, लसलसे तथा जलीय हो जाते हैं। रोगी कंदों का रंग बादामी हो जाता है तथा इनसे हल्की दुर्गंध आने लगती है। रोग अनुकूल वातावरण मिलने पर पूरा कंद सड़ जाता है।

रोगकारक एवं रोग-अनुकूल परिवेश

यह रोग *राइजोपस स्टोलोनिफर* (*Rhizopus stolonifer*) नामक कवक से होता है। यह शकरकंद के अतिरिक्त दूसरे पौधें जैसे खीरा–वर्गीय फसलें, बैंगन आदि प्राथमिक पोषक फसलें हैं। यह कवक लगभग सभी जगहों पर संदूषण के रूप में पाया जाता हैं। इसके बीजाणु कंदो के चोटिल भाग के ऊतकों पर हवा द्वारा पहुंचते है तथा वहां अंकुरित होते हैं, कंदों की सतह पर वृद्धि करते हैं और कवजजाल तथा बीजाणुधानी बनाते हैं। इस रोग का संक्रमण 2030° सेल्सियस तापमान पर अधिकतम होता है।

रोग–प्रबंधन

इस रोग का प्रबंधन निम्न प्रकार से किया जा सकता है:

- कंदों की खुदाई, छंटाई तथा भंडारण के समय सावधानी बरतें ताकि उन्हें चोट न लगे।

- शीत भंडारों की दीवारों, फर्श तथा दूसरे भंडारण स्थान की कॉपर सल्फेट (2.5 प्रतिशत) के घोल से धुलाई करें।
- कंदों की खुदाई वर्षा के समय या वर्षा के तुरंत बाद न करें। बाद में कंदों को 26–30° सेल्सियस तापमान तथा 90 प्रतिशत आपेक्षिक आर्द्रता पर 10–14 दिन तक रखें।
- खुदाई के तुरंत बाद कंदों को 2-4 घंटे तक फैलाकार सुखा लें।
- कंदों को 2.6 डाइक्लोरो–4–नाइट्रोएनीलीन के घोल में उपचारित करने के बाद ही भंडारित करें।

3. सर्कोस्पोरा पर्ण चित्ती (Cercospora leaf spot)

लक्षण

इस रोग के लक्षण शुरू में पत्तियों की दोनों सतहों पर लगभग 0.5 सेमी. व्यास के हल्के हरे धब्बे के रूप में दिखाई देते हैं। बाद में ये धब्बे बड़े होकर भूरे रंग के हो जाते हैं जिसके किनारों पर पीले, हरे किनारे की विक्षतियों की परिधियां बनती हैं। धब्बों पर दो अलग क्षेत्र बनते हैं। जिनमें धब्बे का केंद्रीय भाग हल्के भूरे से सफेद धूसर तथा बाहरी किनारा भूरा–बैंगनी काला होता है। यद्यपि शिराएं, विक्षतियों को बढ़ने से रोकती हैं लेकिन विक्षतियां पास–पास होने के कारण आपस में मिल जाती हैं तथा पत्तियों पर झुलसे सा क्षेत्र बनता है। गंभीर रूप से झुलसी हुई पत्तियां पीली होकर गिर जाती हैं। नई पत्तियों की तुलना में पुरानी पत्तियों पर धब्बे अधिक बनते हैं।

रोगकारक एवं रोग-अनुकूल परिवेश

यह रोग, *सर्कोस्पोरा बैटेटीकोला* (*Cercospora bataticola*)

नामक कवक से होता है। यह रोग हवा तथा जल की बौछारों से फैलता है। रोगकारक संक्रमित पौधों के अवशेषों तथा खरपतवारों पर जीवित शेष रहता है। यह रोग गर्म तथा आर्द्र शीतोष्ण जलवायु में अधिक होता है।

रोग-प्रबंधन

इस रोग से फसलों को अधिक नुकसान नहीं होता। इसलिए इसके लिए अधिक प्रबंध करने की आवश्यकता नहीं होती है।

- संक्रमित पौधों के अवशेषों तथा खरपतवारों को खेत से निकालकर नष्ट कर दें।
- बोआई के लिए स्वस्थ कंदों तथा पौधों का प्रयोग करें।

र. अदरक के रोग (Diseases of ginger)

अदरक (*जिंजीबर ऑफिसिनेल – Zingiber officinale*) एक मसाले वाली फसल है। इसे ताजे एवं सूखे रूप में चाय, काफी तथा अन्य व्यंजनों में उपयोग किया जाता है। इसको कैन्डी एवं अचार के रूप में भी प्रयोग किया जाता है। अदरक का औषधीय महत्व भी हैं। इसका उपयोग जुकाम, फ्लू, सिर दर्द के लिए होता है। यह वृक्क को खराब होने से बचाता है। अदरक भारत की महत्वपूर्ण मसाले वाली फसल है जिसका विश्व का 45 प्रतिशत भारत में पैदा होता है। इसकी मुख्य खेती केरल में की जाती है। लेकिन कम मात्रा में भारत के अन्य राज्यों जैसे कर्नाटक, तमिलनाडु, पश्चिम बंगाल, बिहार, हिमाचल प्रदेश, उत्तर प्रदेश तथा महाराष्ट्र मे की जाती है। भारत में इसकी उत्पादकता 3 टन / हेक्टेयर है। अन्य फसलों की तरह इसमें भी कवकों, जीवाणुओं के द्वारा रोग लगते हैं। जिसमें से प्रमुख रोगों का वर्णन नीचे किया गया है

- प्रकंदों को भंडारण या बोआई से पूर्व मैंकोजेब (2.5 ग्राम) या कार्बेन्डाजिम 1 ग्राम प्रति लिटर पानी की दर से घोल बनाकर इसमें 1 घंटे तक डुबाकर रखें तथा उन्हे छाया में 1–2 दिन तक सुखाएं।

2. फिलोस्टिक्टा पर्ण चित्ती (Phyllosticta leaf spot)

लक्षण

इस रोग में प्रारंभ में पत्तियों पर छोटे, पीले, अंडाकार या लंबवत् धब्बे बनते हैं जिनका व्यास 0.5-1.0 मिमी. तक होता है। बाद में ये धब्बे बड़े कर सफेद रंग के हो जाते हैं। धब्बे के किनारे का भाग गाढ़ा भूरा होता है तथा धब्बे के चारों ओर का भाग पीले रंग का होता है। धब्बे पत्तियों पर बिखरे होते हैं तथा कई धब्बों को आपस में मिलने पर वे बड़े आकार के हो जाते हैं। रोग की तीव्रता बढ़ने पर पत्तियां पीली या बदरंग हो जाती हैं, जो दूर से देखने पर पहचानी जा सकती हैं। धब्बों के बीच में काले रंग की छोटे बिंदु के आकार के कवक की बढ़वार दिखाई देती है, जिसे कवक की पिक्निडियम अवस्था कहते हैं।

रोगकारक एवं रोग-अनुकूल परिवेश

यह रोग, *फिलोस्टिक्टा जिन्जीबेरी* (*Phyllosticta zingiberi*) नामक कवक से होता है।

रोग–प्रबंधन

इस रोग का प्रबंधन निम्न प्रकार से किया जा सकता है:

- रोगी पौधे के अवशेषों को खेत से निकालकर नष्ट कर दें।

- एक ही खेत में बार-बार अदरक की फसल न उगाएं तथा 1–2 साल का फसलचक्र अपनाएं।
- फसलों पर मैंकोजेब (2.5 ग्राम/लिटर पानी) या कार्बेन्डाजिम (1 ग्राम/लिटर पानी) की दर से छिडकाव करें। पहला छिड़काव रोग के लक्षण दिखाई देने पर करें।

3. जीवाणुज म्लानि रोग (Bacterial wilt)

लक्षण

मिथ्या स्तंभ के स्तंभ-मूलसंधि के पास जलीय धब्बे दिखाई देते हैं जो रोग के बढने पर ऊपर तथा नीचे की तरफ फैलने लगते हैं। इस रोग से पौधे मुरझाने लगते हैं, तथा पौधों की निचली पत्तियों के किनारे कुंचित हो जाते हैं। यह लक्षण पौधे के ऊपरी भाग तक फैलने लगता है। पहले पौधे की निचली पत्तियां पीली होने लगती हैं। धीरे–धीरे ऊपर की पत्तियां भी पीली होने लगती हैं। अंत में पौधा पीला दिखाई देने लगता है और म्लानि के लक्षण प्रदर्शित करता है। इस रोग से मिथ्या स्तंभ का संवहनी ऊतक प्रभावित होता है और गहरे रंग की धारी दिखाई देती है। इसके अतिरिक्त प्रभावित मिथ्या स्तंभ एवं प्रकंद को हल्का दबाने पर दूधिया रंग का जीवाणुक तरल स्राव निकलता है।

रोगकारक एवं रोग-अनुकूल परिवेश

यह रोग, *राल्स्टोनिया सोलेनेसिएरम* रेस 4 बायोवार 3 तथा 4 *(Ralstonia solanacearum race 4 biovar 3 & 4)* नामक जीवाणु से होता है। यह जीवाणु मृदा तथा प्रकंद पर एक वर्ष से अधिक समय तक जीवित शेष रहता है। इस रोग का संक्रमण पौधे की तरुण अवस्था तथा दक्षिण–पश्चिम मानसून में अधिक होता है।

रोग–प्रबंधन

इस रोग का प्रबंधन निम्न प्रकार से किया जा सकता है:

- संक्रमित पौधों के अवशेषों को खेत से निकालकर नष्ट कर दें।
- बीज प्रकंद को स्ट्रेप्टोसाइक्लिन 200 मिग्रा. को एक लिटर पानी में घोल बनाकर 30 मिनट तक डुबाकर रखें, तत्पश्चात् उपाचारित प्रकंदो को छायां में सुखाकर बुआई के काम में लाएं।
- रोग के लक्षण दिखाई देने पर कॉपर ऑक्सीक्लोराइड 4 ग्राम प्रति लिटर की दर से घोल बनाकर पौधों मे जड़ के पास डालने पर लाभ होता है।

4. पीत रोग (Yellow disease)

लक्षण

इस रोग से पौधे की निचली पत्तियां पीली हो जाती हैं। यह पीलापन पत्तियों के किनारे से शुरू होता है जिससे धीरे-धीरे पूरी पत्ती पीली हो जाती है। रोगी पौधे सूखकर मर जाते हैं लेकिन पौधा भूमि पर नही गिरता। भूमि की सतह के पास का तना मुलायम और जलीय होता है। संक्रमित पौधे उखड़ने पर आसानी से ऊपर आ जाते हैं। रोगी प्रकंदों का भीतरी भाग भूरे रंग का हो जाता है। जड़ें सड़ने लगती हैं तथा प्रकंद की बढ़वार रुक जाती है। नए प्रकंद प्रायः काले होने के बाद सिकुड़ जाते हैं।

रोगकारक एवं रोग-अनुकूल परिवेश

यह रोग, *फ्यूजेरियम ऑक्सीस्पोरम* उपजाति *जिन्जीबेरी*

(*Fusariiumm oxysporum* subsp. *zingiberi*) नामक कवक से होता है। रोगकारक संक्रमित पौधों के अवशेषों तथा मृदा में काफी समय तक रहता है।

रोग–प्रबंधन

इस रोग का प्रबंधन निम्न प्रकार से किया जा सकता है:

- बोआई के लिए स्वस्थ एवं प्रमाणित बीज प्रकंदों का प्रयोग करें।
- गर्मियों में खेत की गहरी जुताई करें तथा खेत को कुछ समय के लिए खुला छोड़ दें।
- रोगी पौधों के अवशेषों को इकट्ठा करके जलाकर नष्ट कर दें।
- लंबी अवधि (2–3 साल) का फसल चक्र अपनाएं।
- प्रकंदों को कार्बोन्डाजिम (2 ग्राम/लिटर पानी) के घोल में कम से कम 30 मिनट तक डुबाकर उपचारित करें। उचारित प्रकंदों को छाया में सुखाने के बाद बोएं।

ल. हल्दी के रोग (Diseases of turmeric)

हल्दी (*करक्यूमा लौंगा – Curcuma longa*) एक मसाले वाली फसल है। भारत में इसकी खेती आंध्र प्रदेश, महाराष्ट्र, उड़ीसा, तमिलनाडु, कर्नाटक एवं केरल में की जाती है। हल्दी का प्रयोग महक तथा खादय पदार्थ को रंगने के लिए किया जाता है। इसका रंग कुरक्युमिन हल्दी से निकालकर रंगने में काम में लाया जाता है। यह पेट दर्द निवारक, वायुनाशक, शक्तिवर्धक, रक्तशोधक तथा रोगाणुरोधक है। हल्दी में कवकों के द्वारा रोग होता है, जिनमें से कुछ रोगों का वर्णन नीचे दिया गया है।

1. हल्दी पर्ण चित्ती रोग (Leaf spot of turmeric)

लक्षण

रोग के लक्षण में पत्तियों पर शुरू में अंडाकार, भूरी चित्ती दिखाई देती है जिसका केंद्रीय भाग धूसर रंग का होता है। ये चित्तयां आकार में 4-5 सेमी लंबी तथा 2-3 सेमी. चौड़ी होती हैं। बाद में रोग के बढ़ने पर इन चित्तियों पर काले बिंदु के आकार के कवक के एसरबुललस पाए जाते हैं जो संकेंद्री छल्ले के रूप में होते हैं। इन चित्तियों के चारों तरफ पीले रंग का क्षेत्र दिखाई देता है। बाद में ये चित्तियां आपस में मिलकर बड़े धब्बे बनाती हैं और पत्र–फलक के ज्यादा भाग को ढक लेती हैं।

रोगकारक एवं रोग-अनुकूल परिवेश

यह रोग, *कोलेटोट्राइकम कैप्सिकी (Colletotrichum capsici)* नामक कवक से होता है। रोगकारक प्रकंद के शल्कों पर पाया जाता है जो इस रोग के संक्रमण का प्राथमिक स्रोत है। इस रोगकारक के कोनिडियमों का प्रसरण हवा, जल तथा दूसरे भौतिक तथा जैविक कारकों द्वारा होता है और ये दूसरे नऐ पौधों या क्षेत्रों में फैल जाते हैं। यह कवक मिर्च की फसलों को भी संक्रमित करता है।

रोग–प्रबंधन

इस रोग का प्रबंधन निम्न प्रकार से किया जा सकता है:

- बुआई के लिए स्वस्थ एवं साफ कंदों का चुनाव करें।
- प्रकंदों को मैंकोजेब (3 ग्राम प्रति लिटर पानी) का घोल बनाकर 30 मिनट तक डुबाकर रखें, इसके बाद छाया में सुखाकर बुआई में प्रयोग में लाएं।

- संक्रमित पौधों के अवशेषों को खेत से निकालकर नष्ट कर दें।
- कवकनाशी जैसे मैंकोजेब (2.5 ग्राम प्रति लिटर पानी), या कार्बेन्डाजिम (1 ग्राम प्रति लिटर पानी), ब्लाइटॉक्स–50 या ब्लूकॉपर (3 ग्राम प्रति लिटर पानी) का घोल बनाकर फसलों पर आवश्यकतानुसार छिड़काव करें।
- रोगी–प्रतिरोधी किस्मों जैसे सुगुना एवं सुदर्शन की बोआई कर सकते हैं।

2. पर्ण दाग (Leaf blotch)

लक्षण

इस रोग के लक्षण प्रारंभ में पौधें की निचली पत्तियों की दोनों सतहों पर बहुत से छोटे–छोटे 1-2 मि.मी. चौड़े और अनियमित आकार के धब्बों के रूप में दिखाई देते हैं। ये धब्बे शुरू में हल्के पीले रंग के होते हैं, लेकिन बाद में पीले गहरे रंग के हो जाते हैं। रोग ग्रस्त पत्तियां पीली या भूरी हो जाती हैं। इस रोग से प्रभावित पत्तियां पौधों से हल्दी झड़ जाती है।

रोगकारक एवं रोग-अनुकूल परिवेश

यह रोग, *टेफ्रीना मैकुलैन्स (Taphrina maculans)* नामक कवक से होता है। यह रोगकारक हल्दी के अतिरिक्त दूसरे करक्यूमा (Curcuma) और हेडीकियम (Hedychium) जातियों तथा कृषि-योग्य एवं जंगली पौधों को संक्रमित करता है। यह कवक संक्रमित पौधों के अवशेषों जैसे मृदा में पड़ी सूखी पत्तियों पर उत्तरजीवी रहता है। रोगकारक मुख्यरूप से हवा के द्वारा एक स्थान से दूसरे स्थान पर फैलता है तथा पौधे की निचली पत्तियों को पहले संक्रमित करता है। कवक के ऐस्कसों से आठ

एस्कोस्पोर बाहर निकलते हैं और बिना प्रसुप्त अवस्था में गए ही दूसरी स्वस्थ पत्तियों को संक्रमित कर देते हैं जिसे द्वितीयक संक्रमण अधिक खतरनाक होता है, जिससे पूरी पत्तियों पर कवक की अत्यधिक वृद्धि हो जाती है। यह रोग अक्टूबर–नवंबर में दिखाई देता है। 80 प्रतिशत से अधिक आपेक्षिक आर्द्रता तथा 21–23° सेल्सियस तापमान प्राथमिक संक्रमण के लिए अनुकूल होता है। ठंडे एवं आर्द्र मौसम में कवक के बीजाणु अधिक उत्पन्न होते हैं जो द्वितीयक संक्रमण मे सहायक होता है।

रोग–प्रबंधन

इस रोग का प्रबंधन निम्न प्रकार से किया जा सकता है:

- बीज का चुनाव रोगरहित क्षेत्रों से करें तथा बुआई के लिए रोगरहित प्रकंदों का ही प्रयोग करें।
- संक्रमित पौधों के अवशेषों को खेत से निकाल कर नष्ट कर दें।
- बीज प्रकंदों को मैंकोजेब (3.0 ग्राम प्रति लिटर पानी) या कार्बेन्डाजिम (1 ग्राम प्रति लिटर पानी) के घोल में 30 मिनट तक डुबाकर रखे। इसके बाद इन्हें छाया में सुखाकर बुआई के लिए प्रयोग में लाएं।
- फसल–चक्र अपनाएं
- रोग के लक्षण दिखाई देने पर फसलों पर मैंकोजेब (2.5 ग्राम प्रति लिटर) या कार्बेन्डाजिम (1 ग्राम प्रति लिटर पानी) या दोनों को एक साथ मिलाकर 2–3 छिड़काव 15 दिन के अंतर पर करें। सैन्डोविट को (1 मिली. प्रति लिटर पानी में) मिलाकर छिड़काव करने पर रोग पर अच्छा नियंत्रण होता है।

3. प्रकंद विगलन (Rhizome rot)

लक्षण

इस रोग के लक्षण शुरू में पत्तियों पर दिखाई देते हैं जिससे पत्तियों के किनारे सूख जाते हैं। मिथ्या स्तंभ की स्तंभ मूल संधि के पास जलीय धब्बे दिखाई देते हैं और यह भाग मुलायम हो जाता है। इसके प्रभाव से पौधा गिर जाता है। कवक के संक्रमण से प्रकंद सड़ने लगता है।

रोगकारक एवं रोग-अनुकूल परिवेश

यह रोग, *पीथियम ग्रैमीनीकोलम (Pythium graminicolum)* नामक कवक से होता है। यह रोगकारक संक्रमित पौधों के अवशेषों, प्रकंदों तथा मृदा में पाया जाता है और वहां काफी समय तक जीवित शेष रहता है।

रोग–प्रबंधन

इस रोग का प्रबंधन निम्न प्रकार से किया जा सकता है:

- बीज के लिए प्रकंदों का चुनाव रोगरहित क्षेत्रों से करें तथा बुआई के लिए स्वस्थ एवं साफ प्रकंदों का प्रयोग ही करें।
- खेत में पानी न रुकने दें तथा जल–निकास की उचित व्यवस्था करें।
- फसल–चक्र अपनाएं।
- गर्मियों में खेत की गहरी जुताई करें।
- संक्रमित पौधों के अवशेषों को खेत से निकाल कर नष्ट कर दें।

- प्रकंदों को मैंकोजेब (3 ग्राम प्रति लिटर पानी) या रिडोमिल एम.जैड. (30 ग्राम प्रति लिटर पानी) के घोल में 30 मिनट तक डुबाकर रखें। इसके बाद उन्हें छाया में सुखाकर बुआई के प्रयोग में लाएं।
- प्रभावित पौधों की जड़ में मैंकोजेब (3 ग्राम प्रति लिटर पानी) या रिडोमिल (2.5 ग्राम प्रति लिटर पानी) के घोल की सिंचाई करने पर लाभ होता है।

अध्याय – 25

पत्ती वाली सब्जियों के रोग
(Diseases of leafy vegetables)

अ. पालक के रोग (Diseases of spinach)

पालक (*स्पाइनेसिया ओलेरेसिया एल. – Spinacia oleracea* L.) पत्ती वाली महत्वपूर्ण सब्जी है। यह बहुत देशों में उगाई जाती है जिसे ताजे तथा प्रसंस्कृत रूप में उपयोग में लाया जाता है। इसमें संतृप्त वसा तथा कोलेस्टेरॉल बहुत कम पाया जाता है। लेकिन इसमें सोडियम की मात्रा अधिक पाई जाती है। इसकी फसल में कवकों, जीवाणुओं तथा विषाणुओं से बहुत से रोग लगते हैं, जिससे फसल की पैदावार कम हो जाती है तथा गुणवत्ता भी प्रभावित होती है। पालक में लगने वाले प्रमुख रोगों के लक्षण, रोगकारक, रोग अनुकूल परिवेश तथा उनके समुचित प्रबंधन का वर्णन आगे किया गया है।

1. जड़ विगलन एवं आर्द्रपतन (Root rot and damping off)

लक्षण

इस रोग के लक्षण पौधों में दो अवस्थाओं में पाए जाते हैं। पहली अवस्था में पौधे भूमि से बाहर निकलने के पहले ही मर

जाते हैं, जिसमें बीज या सड़ जाता है या बीज के अंकुरण होने के बाद कवक का आक्रमण होने से पौद मर जाती है। दूसरी अवस्था में पौधे में भूमि से बाहर निकलने के बाद आर्द्रपतन होता है, जिससें पौधा मुरझाकर ऊपर से मुड़कर गिर जाता है। भूमि के पास के तने पर संक्रमण से ऊतक सिकुड़कर शुरू में जलीय तथा मुलायम हो जाते हैं जिसके परिणामस्वरूप पौद संक्रमित भाग से मुड़ जाती है और अंत में मर जाती है।

रोगकारक एवं रोग-अनुकूल परिवेश

जड़ विगलन एवं आर्द्रपतन रोग अनेक कवकों के कारण होते हैं, जैसे *पी. एफेनीडरमेटम (P. apphanidermatum), पी. अल्टीमम (P. ultimum), पी. स्पाइनोसा (P. spinosa), फाइटोपथोरा क्रीप्टोजिया (Phytophthora)* एवं *राइजोक्टोनिया सोलेनी (Rhizoctonia soloni)*। रोगकारक मृदा तथा संक्रमित बीजों पर पाए जाते हैं। पीथियम जातियां कम आयु वाले पौधों को संक्रमित करती हैं। खेत में अधिक नमी की मात्रा कवक वृद्धि तथा अलैंगिक प्रजनन को उत्साहित करती है। नए पौधे पुराने पौधों की अपेक्षा अधिक रोगग्राही होते हैं। मृदा में अधिक नमी तथा अधिक तामपान इस रोग के विकास में मदद करते हैं।

रोग प्रबंधन

इस रोग का प्रबंधन निम्नलिखित उपायों से किया जा सकता है:

- संक्रमित पौधों के अवशेषों को निकाल कर नष्ट कर दें तथा खेत की सफाई रखें।
- बोआई के लिए रोगरहित एवं स्वच्छ बीजों का चुनाव करें।
- बीजों को रिडोमिल एम जेड–72 (2.0 ग्राम / किग्रा.) या टेराजोल से उपचारित करें।
- कवकनाशी टाल्कललोफॉस मेथिल, फ्यूटोनील,

आइप्रोडियोन एवं पेन्सीकुरान का 1–2 ग्राम/लिटर पानी की दर से घोल बनाकर मृदा में डालें।

2. मृदरोमिल आसिता (Downy mildew)

लक्षण

इस रोग के लक्षण बीजपत्रों तथा पत्तियों पर हल्के पीले रंग के अनियमित आकार की हरिमाहीन विक्षतियों के रूप में दिखाई देते हैं। ये विक्षतियां फैलकर आपस में मिल जाती हैं एवं ऊतकक्षयी हो जाती हैं। रोग का आक्रमण फसल की प्रांरभिक अवस्था में होने पर पौधे की पत्तियां छोटी एवं पीली हो जाती हैं। रोग का प्रकोप बढ़ने पर पत्तियां घुंघराली तथा छोटी एवं पीली हो जाती हैं। नम वातावरण में पत्ती की निचली सतह पर धब्बे के ठीक नीचे कवक की बढ़वार भूरे या बैंगनी रंग की दिखाई देती है। पर्णवृंतों एवं तनों पर भी इस रोग के लक्षण दिखाई देते हैं।

रोगकारक एवं रोग-अनुकूल परिवेश

यह रोग, *पेरोनोस्पोरा फेरिनोसा* उपजाति *स्पाइनेसी* (*Peronospora farinosa* sp. *spinaciae*) नामक कवक से होता है। ये कवक पालक के अतिरिक्त चिनोपोडियम की जातियों पर भी आक्रमण करते हैं। रोगकारक निषिक्तांडों तथा कवकजाल के रूप में संक्रमित बीजों में जीवित शेष रहते हैं। निषिक्तांड मृदा में भी जीवित शेष रहते हैं जो प्राथमिक संप्रेषण के मुख्य स्रोत होते हैं। निषिक्तांड तथा बीजाणुधानी अंकुरित होते हैं और प्राथमिक संक्रमण करते हैं। बीजाणुधानी सीधे पत्ती की सतह पर 2-6 घंटे ठंड एवं नमी की अवस्था में अंकुरित होते हैं। बीजाणुधानी हवा या पानी की बूंदों द्वारा फैलते हैं। बीजाणुधानी को सूखे एवं सूर्य की रोशनी में अधिक समय तक रखने पर उनकी जीवन–क्षमता कम हो जाती है।

रोग प्रबंधन

इस रोग का प्रबंधन निम्नलिखित प्रकार से किया जा सकता है:

- संक्रमित पौधों के अवशेषों को खेत से निकालकर नष्ट कर दें।
- बुआई के लिए स्वस्थ बीज का प्रयोग करें।
- बीज का उपचार गर्म जल (50° सेल्सियस तामपान पर 25 मिनट तक) में डुबाकर करें।
- बीजों को रिडोमिल एम.जेड. – 72 (2.5 ग्राम / किग्रा. बीज की दर से) से उपचारित करें।
- फसलों पर रोग का प्रकोप अधिक होने पर मैंकोजेब या रिडोमिल एम.जेड. – 72 का (2.5 ग्राम / किग्रा. लिटर पानी की दर स) छिड़काव करें।

3. सफेद रतुआ या किट्ट (White rust)

लक्षण

इस रोग के लक्षण में पत्तियों की सतह पर छोटी हरिमाहीन विक्षतियां दिखाई देती हैं। धब्बे पत्तियों की निचली सतह तथा तनों पर उभरे हुए सफेद गोल तथा चमकीले फफोलों के रूप में दिखाई देते हैं। कई फफोलों के आपस में मिलने से काफी बड़े फफोले बन जाते हैं तथा फफोलों के फूटने पर सफेद चूर्ण निकलता है। रोग की तीव्रता की स्थिति में पत्तियां भूरे रंग की हो जाती हैं तथा अंततः पौधा मर जाता है।

रोगकारक एवं रोग-अनुकूल परिवेश

यह रोग, *एल्ब्यूगो ऑक्सीडेन्टैलिस (Ablugo occidantalis)* नामक कवक से होता है। यह कवक संक्रमित पौधों के अवशेषों पर एक से अधिक वर्षों तक निषिक्ताडों के रूप में उत्तरजीवी रहता है। निषिक्ताडों के द्वारा ही रोगकारक एक फसल से दूसरे साल की फसल उगने तक जीवित रहते हैं और प्राथमिक संरोप

के लिए मुख्य स्रोत का काम करते हैं। निषिक्तांड सीधे अंकुरित होकर जननलिका या बीजाणुधानी बनाते हैं जिससे संक्रमण शुरू होता है। बीजाणुधानी 6–9 कशाभयुक्त बीजाणु बनाते हैं जो बाद में बीजाणु से गिर जाते हैं और बीजाणु अंकुरित होकर सीधे पालक की पत्तियों में प्रवेश करते हैं। प्रौढ़ विक्षतियों पर निषिक्तांड बहुतायत में बनते हैं। इस रोग का प्रकोप उस समय काफी बढ़ जाता है जब रात ठंडी हो, ओस अधिक पड़े तथा दिन गर्म हो व धूप निकली हो। इस रोग के विकास के लिए 12-18° सेल्सियस तापमान तथा पत्तियों का 6-12 घंटे तक भीगा रहना मदद करता है।

रोग प्रबंधन

इस रोग का उपचार मृदुरोमिल आसिता रोग की तरह कर सकते हैं।

4. सर्कोस्पोरा पर्ण चित्ती (Cercospora leaf spot)

लक्षण

इस रोग में पत्तियों पर छोटे, गोलाकार या कोणीय धब्बे उत्पन्न होते हैं। लक्षण पुरानी पत्तियों पर आते हैं एवं धब्बे धूसर–भूरे या गहरे जैतूनी रंग के होते हैं तथा उनके किनारे लाल, भूरे होते हैं। धब्बों के बीच का भाग कवक की बढ़वार के कारण काले रंग का होता है, जिस पर कवक की पित्तिका बनती है। रोगी पत्तियां पीली हो जाती है तथा पौधे छोटे रह जाते हैं। धब्बों को आपस में मिलने पर पत्तियां झुलस जाती हैं।

रोगकारक एवं रोग-अनुकूल परिवेश

यह रोग, *सर्कोस्पोरा बेटीकोला (Cercospora beticola)* नामक कवक से होता है। रोगकारक पालक एवं चुकंदर के अतिरिक्त दूसरे पौधों को संक्रमित करते हैं, जिनमें धतूरा, *ट्राइफोलियम अलेग्जेन्ड्रियम, चिनोपोडियम म्यूरेल चे. एल्बम, अमरेन्थस पॉलीगैमस, स्पाइनेसिया टेट्रान्ड्रा, स्पा. ओलिरेसिया,*

एट्रीफ्लेक्स हॉर्टेन्सिस, पोर्टलेका ओलिरेसिया, अमरेन्थस ट्राइकलर, बेटाबल्गेरिस वार सीस्ला और दूसरे संबंधित खरपतवार प्रमुख हैं। रोगकारक सूखी संक्रमित पत्तियों, रोगग्राही खरपतवारों तथा बीजों पर जीवित शेष के रूप में रहता है, जो प्राथमिक संरोप के प्रमुख स्रोत हैं। कवक संक्रमित पत्तियों पर मृदा में छह महीने तक जीवित रहते हैं। संक्रमित बीज, संक्रमित पौद को जन्म देते हैं। अनुकूल वातावरण होने पर कोनिडियम हवा तथा वर्षा की बूंदों तथा कीटों के द्वारा स्वस्थ पौधों पर पहुचते हैं। पौधों से पौधों की दूरी बढ़ने पर पत्तियों पर धब्बों की संख्या कम होने लगती है। संक्रमण तथा रोग के विकास के लिए 19-27° सेल्सियस तापमान तथा अधिक आर्द्रता कवक के बीजाणु पैदा करने के लिए आवश्यक होते हैं।

रोग प्रबंधन

इस रोग का प्रबंधन निम्न प्रकार से किया जा सकता है :

- बीजों को बोने से पहले उन्हें थीरम या कार्बेन्डाजिम (2.4 ग्राम / किग्रा. बीज की दर) से उपचारित करें।
- पौधों पर मैंकोजेब (2.4 ग्राम / लिटर पानी में) या कार्बेन्डाजिम (0.1 ग्राम / लिटर पानी में) का घोल बनाकर छिड़काव करके नष्ट करें।

5. फ्यूजेरियम म्लानि (Fusaruium wilt)

लक्षण

इस रोग में प्रारंभ में पौधे की पुरानी पत्तियां पीली होने लगती हैं तथा यह पीलापन धीरे–धीरे पौधे के ऊपरी भाग की ओर बढ़ता है। अंत में संक्रमित पत्तियां गिर जाती हैं। हरी पत्तियां ढीली पड़कर नीचे की तरफ झुक जाती हैं और सड़ने लगती हैं। ऐसे पौधों के तनों एवं जड़ों को चीरकर देखने पर आंतरिक भाग भूरा या काला दिखाई देता है।

रोगकारक एवं रोग-अनुकूल परिवेश

यह रोग, *ऑक्सीस्पोरम फ. स्पी. स्पाइनेसी (Fusarium oxysporum* f. sp. *spinaceae)* नामक कवक से होता है। यह रोगकारक रोगी पौधों के अवशेषों तथा मृदा में जीवित रहता है।

रोग प्रबंधन

इस रोग का प्रबंधन निम्न प्रकार से किया जा सकता है :

- रोगी पौधे को समूल उखाड़कर खेत से निकालकर नष्ट कर दें।
- गर्मियों में खेत की गहरी जुताई करें।
- बीज को कार्बेन्डाजिम (2.5 ग्राम/किग्रा. बीज की दर) से उपचारित करें।

6. मोजेक (Mosaic)

लक्षण

इस रोग से ग्रसित पौधों पर मोजेक तथा चितकबरे धब्बे दिखाई देते हैं जिसमें पत्तियों पर हल्के एवं हरे चकते दिखाई देते हैं। पत्तियों का आकार छोटा हो जाता है तथा बड़े हरिमाहीन क्षेत्र दिखाई देते हैं जो प्रायः सफेद होते हैं। संक्रमित पौधे बौने रह जाते हैं।

रोगकारक एवं रोग-अनुकूल परिवेश

यह रोग पालक के मोजेक वायरस *(Spinach mosaic virus)* नामक विषाणु से होता है। रोगकारक पालक के अतिरिक्त दूसरे पोषक पौधों जैसे *एकाइसेन्थेस ऐन्स्पारा, अमैरैन्थस कोडेट्स, अ. ल्यूकोकार्पस, लैजेनेरिया ल्यूकैन्था, रतूरा स्ट्रैमोनियम, लाइकोपर्सिकन ग्लैन्डुलोसम, निकोटियाना ग्लूटिनोसा, नि. रस्टिका, नि. टैबेकम, पेटुनिया हाइब्रिडा* और बैंगन को संक्रमित करते हैं। ये विषाणु *माइजस परसिकी* नामक माहू द्वारा स्थानांतरित होते हैं।

रोग प्रबंधन

इस रोग का प्रबंधन कठिन होता है। फिर भी निम्नलिखित विधियाँ अपनाई जा सकती हैं:

- खेत से संक्रमित पौधों को इकट्ठा करके नष्ट कर दें।
- माहू के नियंत्रण–हेतु कीटनाशी दवाओं का फसलों पर छिड़काव करके रोग को फैलने से बचाया जा सकता है।

ब. धनियां के रोग (Diseases of coriander)

धनियां (*कोरीएन्ड्रम सैटाइवम – Coriandrum sativum*) की खेती राजस्थान, गुजरात, मध्य प्रदेश, तमिलनाडु, उत्तर प्रदेश आदि राज्यों में की जाती है। इसका उपयोग औषधि तथा भोजन में मसाले के लिए किया जाता है। इसकी हरी पत्तियों का उपयोग सॉस, चटनी, तरी में सुगंध के लिए करते हैं। धनियां की फसल में बहुत से रोग लगते हैं जिनका वर्णन नीचे किया गया हः

1. म्लानि (Wilt)

लक्षण

यह रोग पौधे की किसी भी अवस्था में हो सकता है। शुरू में संक्रमण मूलांकुर पर होता है जहां भूरी विक्षति तथा ऊतकों का विगलन होता है तथा अंत में पौधे भूमि से बाहर निकलने से पहले ही मर जाते हैं। पौधे के मृदा से बाहर निकलने पर बीजपत्राधर पर विक्षतियां विकसित होती हैं जो आपस में धीरे–धीरे मिल जाती हैं और चारों तरफ से घेरा बना लेती हैं। इससे यह भाग मुलायम हो जाता है और कोशिकाएं अलग–अलग हो जाती हैं। अंत में संक्रमण के फैलने पर पौद गिरकर मर जाती है। पौधे की प्रौढ़ अवस्था में म्लानि के स्पष्ट लक्षण दिखाई देते हैं, जिसमें पौधा पहले पीला होता है तथा पौधे की निचली पत्तिया कुंचित

हो जाती हैं। धीरे–धीरे लक्षण पौधे के शीर्ष भाग पर भी दिखाई देते हैं तथा निचली पत्तियां सूख जाती हैं और पौधा मुरझा जाता है। प्रभावित पौधा बौना रह जाता है और उस पर फूल एवं फल कम लगते हैं।

रोगकारक एवं रोग-अनुकूल परिवेश

यह रोग *फ्यूजेरियम ऑक्सीस्पोरम* फ. स्पी *कॉरीएन्डेरी* *(Fusarium oxysporum* f. sp. *corianderi)* नामक कवक से होता है। यह कवक मृदा में रहता है और क्लेमाइड़ोस्पोरो के रूप में जीवित शेष रहता है। उचित वातावरण की उपस्थिति में क्लेमाइडोस्पोर एवं बृहद् कोनिडियम पैदा करते हैं जिनके द्वारा पौधों में द्वितीयक संक्रमण होता है। इस रोग के विकास के लिए लगभग 28° सेल्सियस तापमान और 5.8–6.9 पीएच अनुकूल होते हैं। मृदा में 52 प्रतिशत नमी होने पर यह रोग सबसे अधिक होता है।

रोग-प्रबंधन

इस रोग का प्रबंधन निम्नलिखित प्रकार से किया जा सकता है:

- 3–4 साल का फसल चक्र अपनाएं।
- संक्रमित पौधों के अवशेषों को खेत से इकट्ठा करके जला दें।
- गार्मियों में खेत की गहरी जुताई करें तथा कुछ दिनों के लिए खेत खुला रखें।
- खेत में खली मिलाकर मृदा का पी. एच. 8.2 से ऊपर रखने से रोग कम लगता है।

- बीजों को कार्बेन्डाजिम (2.0 ग्राम / किग्रा. बीज की दर) से उपचारित करें।
- बीजों को *ट्राइकोडर्मा विरिडी* कल्चर (4 ग्राम / किग्रा. बीज की दर) से उपचारित करने पर रोग की तीव्रता कम हो जाती है।

2. तना पिटिका (Stem gall)

लक्षण

इस रोग के लक्षण पौधे के सभी वायव भागों पर रसौली की तरह दिखाई देते हैं। यह पीटिका शुरू में मुलायम तथा गूदेदार होती है तथा बाद में कठोर एवं काष्ठिल हो जाती हं। वृंत पर अनियमित विकृति दिखाई देती हैं तथा फूल एवं फलों की अतिवृद्धि हो जाती है।

रोगकारक एवं रोग-अनुकूल परिवेश

यह रोग, *प्रोटोमाइसीज मैक्रोस्पोरस (Protomyces macrosporus)* नामक कवक से होता है। यह रोग मृदा एवं बीज उत्पन्न प्रकृति का है। रोगकारक मृदा में क्लेमाइडोस्पोर के रूप में जीवित शेष रहता है। यह क्लेमाइडोस्पोर मृदा में छह वर्ष से अधिक समय तक जीवित रह सकता है। क्लेमाइडोस्पोर जल की उपस्थिति में अंकुरित होकर छोटी थैली बनाते हैं जिसमें से 100–200 बीजाणु बाहर निकलते हैं। ये बीजाणु खमीर की तरह कली विधि से वृद्धि करते हैं और पौधों को संक्रमित करते हैं। पोटेशियम तथा नाइट्रोजन उर्वरक रोग की तीव्रता को कम करते हैं जबकि फॉस्फोरस इसकी तीव्रता को बढ़ाता है। रोग के संक्रमण के लिए मृदा का पी.एच. 7.5 अच्छा होता है परंतु 9.5 पी.एच. पर भी संक्रमण हो जाता है, हालांकि इस पी.एच. पर धनिया

के उत्पादन पर प्रभाव पड़ता है। इस रोग के विकास के लिए निम्नतम एवं उच्चतम तापमान क्रमशः 8.1 और 22.6° सेल्सियस तथा आर्द्रता 65.8 प्रतिशत अच्छे होते हैं।

रोग-प्रबंधन

इस रोग का प्रबंधन निम्नलिखित प्रकार से किया जा सकता है:

- इस रोग से बचाव के लिए फसल की बुआई, 16 अक्टूबर से 16 नवंबर के बीच में करनी चाहिए।
- संतुलित खाद एवं उर्वरकों, जैसे 7:50:25 एन.पी.के., का प्रयोग करें।
- बुआई के लिए स्वस्थ एवं साफ बीजों का प्रयोग करें।
- संक्रमित पौधों के अवशेषों का इकट्ठा करके नष्ट कर दें।
- रोग–प्रतिरोधी किस्मों जैसे जेडी–1, पी– 5365–91, पंत हरीतिमा, यूडी–20. रेर–41, पंत–1, सी.आई.एम.ए. पी.–2053 की बोआई करें।
- बीजोपचार के लिए कार्बेन्डाजिम + कैप्टोजोल (1:1 अनुपात) या थीरम का प्रयोग करें।
- फसलों पर छिड़काव के लिए कार्बेन्डाजिम या मैंकोजेब का प्रयोग किया जा सकता है।

3. चूर्णिल आसिता (Powdery mildew)

लक्षण

इस रोग के लक्षण पत्तियों की दोनों सतहों, पुष्पक्रमों तथा बीजों पर सफेद आटे की तरह धब्बों के रूप मे दिखाई देते हैं। ये धब्बे छोटे, बदरंग चूर्ण के रूप में सभी तरफ पाए जाते हैं। पौधे के अधिकतर भाग सफेद चूर्ण या आटे के धब्बे के रूप में ढके होते हैं। कवकजाल एवं कवक के बीजाणुओं की एक सतह बन जाती है। रोग का प्रकोप बढ़ने पर संक्रमित डंठल अपरिपक्व अवस्था में सूखने लगते हैं। फूलों से बीज नहीं बनते हैं या बहुत कम बनते हैं।

रोगकारक एवं रोग-अनुकूल परिवेश

यह रोग *एरीसाइफी पॉलीगोनी (Erysiphe polygoni)* नामक कवक से होता है। यह अविकल्पी परजीवी कवक है। रोगकारक मरे हुए पौधों के अवशेषों पर क्लिस्टोथिसिया के रूप में जीवित शेष रहते हैं तथा अगली फसल में रोग लगने के लिए प्राथमिक संसर्ग के स्रोत है। इसके अतिरिक्त यह कवक कोनिडियमों के रूप में उस क्षेत्र में पाए जाने वाले दूसरे पोषक पौधों पर जीवित रहते हैं। कोनिडियम धनिया पर प्राथमिक संक्रमण करते है। ये कोनिडियम हवा के द्वारा फैलकर पौधों में द्वितीयक संक्रमण करते है। कोनिडियमों का अंकुरण 20–40° सेल्सियस तापमान पर अच्छा होता है। सूखी हुई मृदा तथा अधिक नाइट्रोजनयुक्त उर्वरक, इस रोग की तीव्रता बढ़ाने में सहायक होते हैं।

रोग-प्रबंधन

इस रोग का प्रबंधन निम्नलिखित प्रकार से किया जा सकता है:

- इस रोग से बचाव के लिए कर्षण क्रियाओं (जैसे संक्रमित पौधों) के अवशेषों को खेत से निकाल कर नष्ट कर दें।
- संतुलित खाद एवं उर्वरकों का प्रयोग करें।
- बीजों की बुआई पहले करें।
- सहनशील किस्मों, जैसे सी.आई.एम.ए.पी. 2053 सी. आई.एम.ए.पी. 2096, का प्रयोग करके इस रोग से बचाया जा सकता है।
- कोसान, सल्टाफ, कैराथेन, थीयोवीट, मोरोसाइड, कार्बेन्डाजिम थायोफेनेट मेथिल आदि का प्रयोग छिड़काव के रूप में किया सकता है। डायनोकैप का छिड़काव फूल आने के समय, बीज के बनने के समय तथा पूर्ण बीज बनने के समय पर करने पर रोग का प्रभाव कम होता है।

अध्याय – 26

खुंबी के रोग (Diseases of mushroom)

खुंबी एक प्रकार का मासल कवक है, जो एक स्वादिष्ट एवं पौष्टिक शुद्ध भोजन है। प्रकृति में पाई जाने वाली सभी खुंबी खाने योग्य नहीं होती, उनमें से कुछ विषैली भी होती हैं। अभी तक विश्व भर में खुंबी की 1600 से अधिक किस्में मिल चुकी हैं जिनमें से 100 प्रकार की खुंबी हमारे भोजन में सम्मिलित हो चुकी हैं। विश्व में इस समय 40 प्रकार की खुंबी व्यावसायिक रूप में उगाई जा रही हैं, जिनमें 3 प्रकार की खुंबी – सफेद बटन खुंबी, शुक्ति खुंबी(ऑयस्टर खुंबी) और धान पुआल खुंबी भारत में अधिक लोकप्रिय हैं। भारत खुंबी का व्यवसायिक उत्पादन सन् 1971 में आरंभ हुआ। उस समय इसका वार्षिक उत्पादन 100 टन था जो अब बढ़कर 120,000 टन (सन् 2011) से भी अधिक हो गया है। खुंबी की खेती आर्थिक रूप से महत्वपूर्ण तो है ही, साथ ही समेकित ग्रामीण विकास कार्यक्रम में आमदनी बढ़ाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकती है और पर्यावरण संरक्षण में भी लाभदायक है। खुंबी कम कैलोरी ऊर्जा का भोजन है जिसमें प्रोटीन, विटामिन और लवणों की मात्रा काफी होती है। सामन्यतः

खुंबी में शुष्क भार के अनुसार 55 प्रतिशत कार्बोहाइड्रेट, 32 प्रतिशत प्रोटीन, 2 प्रतिशत वसा तथा शेष लवण और विटामिन होते हैं। खुंबी, थयोमीन (विटामीन बी$_1$), राइबोफ्लोविन (बी$_2$) नियासिन, पेन्टोथेनिक अम्ल (विटामिन बी–कॉम्पलेक्स), बायोटिन, फोलिक अम्ल, विटामिन 'सी', 'डी', 'ए' और 'के' का बहुत अच्छा स्रोत है और इनमें से अधिकतर विटामिन खुंबी को पकाने के बाद भी बचे रहते है। लवणों में फॉस्फोरस, पोटेशियम, कॉपर और लौह, खुंबी में पर्याप्त मात्रा में होते हैं। इनके अलावा सूक्ष्म तत्त्व कॉपर, सोडियम, कैल्शियम और मैग्नीशियम भी होते हैं। खुंबी प्रोटीन का बहुत अच्छा स्रोत है और हमारी समुचित वृद्धि के लिए आवश्यक सभी 9 ऐमीनों अम्ल इनमें पाए जाते हैं। मशरूम में निहित प्रोटीन का 71 से 90 प्रतिशत हिस्सा सफेद बटन–खुंबी का है। अधिक नमी वाले वातावरण में तापमान जब 21–22° सेल्सियस के ऊपर पहुंचाने लगता है तो 'खुंबी घर' में विभिन्न प्रकाार के कीटों तथा सूक्ष्म जीवों का तथा उनके द्वारा फैलाए जाने वाले रोग का प्रकोप भी बढ़ जाता है। खुंबी में बहुत से रोग लगते हैं जिससे उपज में कमी आ जाती है, जिनका वर्णन नीचे किया गया है।

अ. कंपोस्ट में लगने वाले कवकीय रोग

खुंबी एक विशेष प्रकार से तैयार कंपोस्ट पर उगाई जाती है। यदि कंपोस्ट ठीक ढंग से तैयार नहीं किया जाता है तो कंपोस्ट पर खुंबी के साथ–साथ दूसरे फफूंद भी उग आते हैं और खुंबी के साथ उगने लगते हैं। वे फसल को कमजोर बना देते हैं। इनसे एक विशेष प्रकार का विषैला तत्त्व भी निकलता है जो खुंबी के कवकजाल की वृद्धि के लिए घातक होता है। इन दोनों ही स्थितियों में खुंबी के उत्पादन में कमी आती है। इन फफूंदों या कवकों के लक्षण तथा प्रबंधन का वर्णन आगे किया गया है।

1. पीली फफूंद (Yellow mould)

यह *माइसीलिपथौरा लूटिआ (Mycelipthora lutea)*, *क्राइजोस्पोरियम मरडेरियम (Chrysoporium merdarium)*, *सेपेडोनयिम क्राइजोस्परमम (Sepedonium chrysospermum)* नामक फफूंदों के द्वारा होता है। पीले भूरे फफूंद की परत, जो किनारों पर सफेद होती है, कंपोस्ट के ऊपरी हिस्से में धब्बे के रूप में दिखाई पड़ती है। जिस कंपोस्ट में नाइट्रोजन की मात्रा आवश्यकता से ज्यादा होती है उसी में से यह दिखाई पड़ती हैं। इसके हो जाने पर 0.15 प्रतिशत कैल्शियम नाइपो सॉल्यूशन का छिड़काव करें।

2. हरी फफूंद (Green mould)

कंपोस्ट केसिंग, खुंबी के बीज के दानों और खुंबी के डंठलों पर छोटे नीले–हरे धब्बे के रूप में इस कवक की बढ़वार दिखाई देती है। खुंबी के डंठल और टोपी पर भी सूखे और भूरे धब्बे नजर आते हैं।

3. जैतूनी हरी फफूंद (Olive-green mould)

आरंभ में कंपोस्ट इस कवक की सफेद छोटे से गेंद जैसी संरचनाएं उभरती हैं जो बाद में जैतून जैसी हरी हो जाती हैं। *कीटोमियम ओलिवेसियम (Chaetomium olivaceam)* कवक कंपोस्ट बनाते समय ऑक्सीजन की कमी होने से वृद्धि करता है। पुराने कंपोस्ट तथा पुराने केसिंग लेयर के कारण मुख्य रूप से विसंक्रमण होता है।

4. भूरी परत फफूंद (Brown plaster mould)

कंपोस्ट या केसिंग की मिट्टी की सतह पर इस कवक के सफेद गोल धब्बे उभर आते हैं जो बाद में हल्के या जंग जैसे भूरे हो जाते हैं। इन स्थानों पर खुंबी या तो देर से निकलती हैं या बिल्कुल नहीं निकलती। बीज बोते समय और फल लगने के समय उच्च तापमान और कंपोस्ट में ज्यादा नमी से इस कवक

की बढ़वार अधिक होती है और स्थिति बिगड़ जाती है।

5. लिप्स्टिक फफूंद (Lipstick mould)

स्पोरेन्डोनेमा पर्प्यूरिसेन्स (Sporendonema purpurescens) नामक फफूंद कंपोस्ट एवं केसिंग मृदा पर छोटे–छोटे हरे धब्बे के रूप में दिखाई देती है। कभी–कभी यह कवक खुंबी पर भी उत्पन्न होते हैं जिससे खुंबी भूरी हो जाती है तथा उस पर हरी कवक उगने लगती है।

6. सफेद परत फफूंद (White plaster mould)

स्कोप्यूलेरियोप्सिस फीमीकोला (Scopulariopsis fimicola) नामक फफूंद कंपोस्ट एवं केसिंग मृदा एवं कंपोस्ट पर सफेद कवकजाल के रूप में उगने लगती है जो बाद में गुलाबी रंग की हो जाती है।

7. आभासी ट्रफल (False truffle)

डिहलीयोमाइसीज माइक्रोस्पोरस (Diehliomyces microsporus) नामक फफूंद कंपोस्ट एवं केसिंग मृदा पर दानेदार गुच्छे के रूप में दिखाई देती है। प्रांरभिक अवस्था में खुंबी कलिकाओं (छोटी खुंबी) के समान दिखती है परंतु बाद में हल्की भूरी हो जाती हैं।

रोग-प्रबंधन

कंपोस्ट में लगने वाली कवकीय (फफूंदी) रोगों का प्रबधन निम्नलिखित प्रकार से किया जा सकता है :

- लंबी विधि द्वारा कंपोस्ट बनाते समय, मुर्गी की खाद का प्रयोग कंपोस्ट बनाने के लिए ना करें। छोटी विधि में मुर्गी की खाद का प्रयोग पास्चुरीकृत कंपोस्ट बनाते समय अच्छी तरह से मिला कर करें।
- कंपोस्ट एवं केसिंग मिश्रण ठीक से तैयार करें, जिसमें पर्याप्त हवा का आदान–प्रदान किया गया हो।

- कंपोस्ट मिश्रण तैयार करते समय अधिक न दबाएं तथा उसमें नमी (68–70 प्रतिशत से) अधिक न हो।
- कंपोस्ट का पीएच मान 7.5 से कम रखें तथा अमोनिया का कोई अंश न छोड़ें।
- रोग संक्रमित कंपोस्ट को क्यारी से हटा दें तथा बेविस्टीन (0.05 प्रतिशत), टाम्सिन (0.1 प्रतिशत) डायथेन एम–45 (0.2 प्रतिशत) या सोडियम हाइपोक्लोराइड (0.15 प्रतिशत) का छिड़काव रोग के लक्षण दिखाई देने पर या उससे पहले आवश्यकतानुसार 10 दिन के अंतराल पर करें।

ब. खुंबी के रोग

1. सूत्रजाल (Cobweb)

लक्षण

सूत्रजाल रोग पहले केसिंग मृदा पर छोटे सफेद के रूप में दिखाई देता है, जो बाद में पास में उगी खुंबी पर धूसर सफेद कवकजाल के रूप में फैल जाता है। यह कवक शुरू में सफेद-सलेटी रंग होता है और बाद में लाल रंग का हो जाता है। यह केसिंग की सतह पर रहता है और बटन खुंबी के ऊपर उगकर उसे चारों ओर से ढक लेता है। इस रोग के लगने से खुंबी मुलायम भूरी नजर आती हैं और इनसे दुर्गंध आने लगती है।

रोगकारक एवं रोग-अनुकूल परिवेश

खुंबी में यह रोग *क्लैडोबोट्रियम डेन्ड्रोयड्स* (*Cladobotryum dendroides*) नामक कवक से होता है। यह रोगकारक प्रायः मृदा में रहता है तथा ये केसिंग या खुंबी पर संक्रमित खुंबी अवशेष तथा मृदा में उपस्थित बीजाणु तथा कवकजाल वहां पर काम करने वाले श्रमिकों द्वारा पहुंचते हैं। इस रोग की वृद्धि अधिक आपेक्षिक आर्द्रता एवं 25–30° सेल्सियस तापमान पर अधिक होती है।

रोग-प्रबंधन

इस रोग का प्रबंधन निम्नलिखित प्रकार से किया जा सकता है:

- फसल उगने के दौरान अत्यधिक नमी को कम करें।
- संक्रमित खुंबी को निकाल कर नष्ट कर दें।
- केसिंग लेयर का निर्माण समुचित ढंग से करें तथा केसिंग मिश्रण को 50° सेल्सियस पर 4 घंटे तक उपचारित करें।
- 10 दिनों के अंतराल पर 0.05 प्रतिशत बेविस्टिन या 0.2 प्रतिशत डाइथेन एम – 45 का छिड़काव करें।
- खुंबी घर की सफाई पर विशेष ध्यान दें तथा साल में कम से कम एक बार 5 प्रतिशत फार्मेलीन का घोल (0.5–1.0 लिटर/मीटर वर्ग क्षेत्र) छिड़कर उसे रोगाणु रहित करें।

2. सूखा बुलबुला (Dry bubble)

लक्षण

खुंबी की टोपी पर हल्के भूरे धब्बे नजर आते हैं। खुंबी आकारहीन, शुष्क और चीमड़ हो जाती है। इसका आकार छोटा हो जाता है और एक ओर झुक जाता है। तना बीच से फटने लगता है।

रोगकारक एवं रोग-अनुकूल परिवेश

यह रोग *वर्टिसिलियम फंजिकोला* (*Verticillium funjicola*) नामक कवक से होता है। यह कवक संक्रमित केसिंग मृदा से खुंबी प्रक्षेत्र में पहुचता है। इसके अलावा यह रोग एक क्यारी से दूसरी क्यारी पर संक्रमित औजारों, श्रमिकों के हाथों तथा कपड़ों, मक्खियों, बरूथियों (माइट) के द्वारा फैलता है। यह कवक के बीजाणु कवकजाल मृदा तथा प्रयोग किए गए कंपोस्ट में एक

साल से अधिक समय तक उत्तरजीवी बना रहता है। इस रोग के विकास के लिए 20° सेल्सियस तापमान उत्तम होता है। इस रोगकारक की वृद्धि 24–27° सेल्सियस तापमान पर अधिक होती है। अधिक आपेक्षित आर्दता, हवा का आवागमन ठीक न होना, तुड़ाई में देरी और 16° सेल्सियस से अधिक तापमान रोग की वृद्धि तथा फैलाव में मदद करते हैं।

रोग-प्रबंधन

इस रोग का प्रबंधन निम्नलिखित प्रकार से किया जा सकता है:

- फसल कक्ष को साफ सुथरा रखें।
- 10 दिनों के अंतराल पर 0.5 प्रतिशत बेविस्टिन और 0. 2 प्रतिशत डायथेन एम-45 घोल का छिड़काव करें।

3. गीला बुलबुला (Wet bubble)

लक्षण

खुंबी विकसित नजर आती हैं परंतु तना सूखा हुआ लगता है। रोग से प्रभावित भागों पर उजले रंग का कवक उगने लगता है। खुंबी सड़ जाती है और उसमें से बदबू आने लगती है।

रोगकारक एवं रोग-अनुकूल परिवेश

यह रोग, *माइकोगोने पर्नीसीओसा* (*Mycogone perniciosa*) नामक कवक से होता है। यह रोगकारक, *एगेरिकस वाइस्पोरस* (बटन खुंबी) के साथ–साथ *ए. कम्प्रेस्ट्रिस, प्ल्यूरोटस झरंगी, प्ले. नेब्रोडेन्सिस, ए. बाइस्पोरस, ए. वीटॉकिस* को भी संक्रमित कर सकता है। इस रोगकारक का फैलाव केसिंग मृदा, प्रयोग की गई कंपोस्ट, संक्रमित भूसा, हवा, जल बरूथी (माइट) तथा मक्खियों के द्वारा होता है। यह कवक क्लेमाइडोस्पोसरों के रूप में तीन साल से अधिक समय तक केसिंग मृदा में जीवित रह सकता है तथा रोग–संक्रमण को प्राथमिक स्रोत है। कवक की

वृद्धि के लिए 24–32° सेल्सियस तापमान अच्छा माना गया है तथा पीएच. 6.0 होनी चाहिए।

रोग-प्रबंधन

इस रोग का प्रबंधन निम्नलिखित प्रकार से किया जा सकता है:

- फसल कक्ष में और उसके आसपास साफ सफाई का ध्यान रखें।
- केसिंग लेयर समुचित रूप से तैयार करें।

4. भूरा दाग (Brown bubble)

लक्षण

यह रोग सफेद बटन खुंबी का एक सर्वव्यापी एवं भयानक रोग है। इस रोग में खुंबियों की टोपियों की सतह पर गहरे भूरे एवं अनियंत्रित दाग दिखाई देते हैं। ये दाग सतह से थोड़े धंसें होते है तथा उनके किनारे रेशमी दिखते हैं। रोगग्रस्त खुंबियों की टोपियां फट जाती है; जिससे उनका आकार नष्ट हो जाता है। रोग के लक्षणों का प्रकट होना इस बात पर निर्भर करता है कि पानी के छिड़काव के समय टोपियां कितनी गीली हो जाती हैं। उच्च तापमान पर टोपियों पर जब संक्रमण तीव्र हो जाता हैं तो धब्बे पूरी खुंबी पर फैल जाते हैं ओर खुंबी वेरूप हो जाती हैं। टोपियां जीवाण्विक संक्रमण के कारण सड़ने लगती हैं जिससे बदबू आने लगती है।

रोगकारक एवं रोग-अनुकूल परिवेश

यह रोग, *स्यूडोमोनास टोलेसी* (*Pseudomonas toalasi*) नामक कवक से होता है। यह जीवाणु खुंबी में प्रयोग में आने वाली विभिन्न सामग्रियों की सतहों पर, कचरे में तथा औजारों में जीवित रहता है। यह जीवाणु मक्खियों, बरूथियों, उत्पादनकक्षों में चलने वाली मशीनो आदि से फैलता है। इसके अलावा जीवाणु कचरे, खुंबी के बीजाणुओं, पानी की बूंदो तथा खुंबी तोड़ने वाले

श्रमिकों के हाथों द्वारा भी फैलते हैं। इस रोग की वृद्धि 20° सेल्सियस तापमान तथा टोपियों पर पानी होने पर अधिक होती है। उच्च तापमान, अधिक आर्द्रता तथा खुंबी की टोपियों के बार–बार गीला होने पर यह रोग महामारी का रूप ले सकता है।

रोग-प्रबंधन

इस रोग का प्रबंधन निम्नलिखित प्रकार से किया जा सकता है:

- उगाने के लिए तापमान 20° सेल्सियस से कम हो, आपेक्षिक आर्द्रता 85 प्रतिशत से कम हो और जल की बूंदें टोपियों पर से 2-3 घंटे से अधिक न रुकने पाए।
- संक्रमित खुंबी उगाने के स्थान की साफ–सफाई पर विशेष ध्यान दें।
- रोग के फैलने से पहले 125 मिली. 10 प्रतिशत क्लोरीन घोल को 100 लिटर पानी में मिलाकर 100 वर्ग मीटर में छिड़काव करें।
- यदि रोग अधिक मात्रा में हो तो स्ट्रेप्टोमाइसिन (200 मि.ग्रा./लिटर पानी में), ऑक्सीटेट्रासाइक्लिन (300 मिग्रा./प्रति लिटर पानी में) का घोल बनाकर खुंबियों पर छिड़काव करें।
- इस रोग का प्रतिवर्ष संक्रमण की संभावना होने पर 0.5 प्रतिशत फार्मेलिन से केसिन सतह को उपचरित करें।

5. पीला दाग रोग (Yellow blotch)

लक्षण

इस रोग में टोपियों पर विभिन्न आकार के पीले दाग दिखाई देते हैं। जब यह रोग पिन हेड अवस्था में दिखाई देता है तो संपूर्ण फलनकाय या कुछ भाग को प्रभावित करता है। संक्रमित फलनकाय छोटा एवं पीले रंग का हो जाता है। अधिक

आपेक्षिक आर्द्रता (90 प्रतिशत से अधिक) होने पर संक्रमित फलनकाय, का आलेप दिखाई देता है जो कि इस रोग का प्रमुख लक्षण है। यदि आपेक्षिक आर्द्रता 75 प्रतिशत से कम हो तो दागदार फलन जले हुए वर्ण की तरह दिखाई देते हैं।

रोगकारक एवं रोग-अनुकूल परिवेश

यह रोग, *स्यूडोमोनास एगेरेसी* (*Pseudomonas agaraci*) नामक जीवाणु से होता है। इस रोग का आपतन गर्म तथा आर्द्र परिस्थिति में अधिक होता है। इस रोग के जीवाणु आसानी से खुंबी प्रक्षेत्र में जल की बूंदों, श्रमिकों के औजार, खुंबी मक्खी के द्वारा फैलते हैं। अधिक आपेक्षिक आर्द्रता की अवस्था में फलनकाय आलेप की तरह दिखाई देते हैं तथा अन्य में फलनकार्य का सड़ना शुरू हो जाता है जिससे 24 घंटे के अंतर्गत सड़ने की गंध आने लगती है। फलनकाय पर जल की सतह बनी रहे तो इस रोग के जल्दी संक्रमण होने की संभावना बढ़ जाती है।

रोग-प्रबंधन

इस रोग का प्रबंधन निम्नलिखित प्रकार से किया जा सकता है:

- खुंबी प्रक्षेत्र को साफ-सुथरा रखें।
- फलनकाय पर जल के ठहरने से बचाना चाहिए।
- खुंबी उगाने वाले कमरे में समुचित हवादारी की व्यवस्था हो।
- जल का छिड़काव सावधानी से करें।
- अधिक जल के प्रयोग से बचें।
- 100–150 पीपीएम सांद्रता वाले क्लोरीन युक्त जल का 3–5 दिन के अंतराल पर छिड़काव करें।
- आक्सीटेट्रासाइक्लिन या स्ट्रेप्टोसाइक्लिन 150–200 मिग्रा. प्रति लिटर पानी में घोल का छिड़काव करें।

6. खुंबी का मृदु विगलन (Soft rot)

लक्षण

इस रोग के प्रमुख लक्षण के रूप में खुंबी की टोपियों पर चिपचिपे पीले दाग दिखाई देते हैं। यदि ठीक प्रकार से शीत शृंखला कर प्रबंध नहीं हो तो यह रोग कटाई उपरांत भी फैलता है। जब आपेक्षित आर्द्रता 90 प्रतिशत से ज्यादा होती है तो खुंबी अपने स्थान पर ही 20–48 घंटे में गलने लगती है।

रोगकारक एवं रोग-अनुकूल परिवेश

यह रोग *बरखोल्डेरिया ग्लैडियोलाई पैथोवार एगेरीकोला* (*Burkholdiria gladioli* pv- *agaricola*) नामक जीवाणु से होता है। इसके जीवाणु केसिंग मृदा, संक्रमित खुंबी के अवशेषों में जीवित शेष रहते हैं। यह रोग सफेद बटन खुंबी एवं धींगरी खुंबी में अधिक फैलता है। जब तापमान 25–28° सेल्सियस तथा आपेक्षिक आर्द्रता अधिक हो तो रोग की वृद्धि अधिक होती है और फसल को अधिक नुकसान होता है।

रोग-प्रबंधन

चूंकि यह रोग कटाई-उपरांत भी फैलता है इसलिए इस की रोकथाम के खुंबी प्रक्षेत्र के साथ-साथ खुंबी के परिवहन एवं भंडारण पर भी ध्यान देना चाहिए।

- खुंबी प्रक्षेत्र में वायु के आवगमन का उचित प्रबंध करें। खुंबी में जल सावधानी के साथ उचित मात्रा में दें। अधिक जल का प्रयोग न करें।
- रोग का संक्रमण होने पर क्लोरीन-युक्त जल (100–150 पीपीएम) से सिंचाई करें।
- खुंबी प्रक्षेत्र एवं डिब्बा-बंदी क्षेत्र को साफ-सुथरा रखें।

खंड – 3

शोभाकारी पौधों के रोग

(Diseases of Ornamentals)

अध्याय – 27

गुलाब के रोग (Diseases of rose)

शोभाकरी पौधों में गुलाब (*रोजा स्पीसीज* – ***Rosa spp.***) का अपना स्थान है। भारत में गुलाब को सबसे ज्यादा पसंद किया जाता है। भारत में गुलाब बहुत से रंगों में उपलब्ध है। इसके ताजे फूलों का प्रयोग (जैसे गुलदस्ता) के अलावा इसमे गुलाब का तेल, गुलाब जल तथा गुलकंद बनाया जाता है। भारत में गुलाब की खेत 4330 हेक्टेयर क्षेत्रफेल में की जाती है जिससे 874 मिलियन तथा उतपादन होता है। गुलाब की खेती मुख्यतः तमिलनाडु, कर्नाटक, महाराष्ट्र तथा पश्चिम बंगाल राज्यों में की जाती है। गुलाब के उत्पादन में बीमारियों का प्रकोप अधिक होता है जिसमे उत्पादन तथा गुणवत्ता प्रभावित होती है। इस अध्याय में गुलाब के प्रमुख रोगो के लक्षण, रोग कारक, रोग अनुकूल पर्यावरण तथा उचित प्रबंधन का संक्षिप्त वर्णन किया गया है।

1. गुलाब की कैंकर (Rose canker)

लक्षण

प्रारंभ मे इस रोग के लक्षण तने पर प्रायः पीले या लाल रंग के धब्बे के रूप मे दिखाई देते हैं, जो बाद में भूरे या काले रंग के हो जाते हैं। काले, फ़टे हुए धब्बे बदरंग ऊतक पर पाए जाते हैं तथा ऊतकों पर कवक की फलनकायी संरचना पाई जाती है, जिसमें बीजाणु पैदा होते हैं।

रोगकारक एवं रोग-अनुकूल परिवेश

यह रोग, *कोनियोथीरियम* जाति (*Coniothyrium spp.*) नामक कवक द्वारा होता है। यह कवक साल के ठंडे मौसम में उस समय अधिक सक्रिय होता हैं, जब गुलाब के पौधे सक्रिय रूप में वृद्धि नहीं करते हैं। यह रोगकारक कवक बहुत से बीजाणु पैदा करता है जो अंकुरित होकर, तनों के काट-छांट के स्थान से या घाव वाले स्थान से पौधे में प्रवेश करते हैं। यह कवक अधिक सक्रिय रोगकारक नहीं होता और जब गुलाब के पौधे में सक्रिय वृद्धि होती है तो उस समय रोगकारक संक्रमण नहीं करता है। कवक पौधे की प्रसुप्तावस्था में बीजाणु पैदा करता है जो हवा के द्वारा पौधे के अन्य काट–छांट के स्थान पर पहुंचता है। इस रोग की वृद्धि के लिए अनुकूल वातावरण होने पर रोग की तीव्रता बढ़ जाती है।

रोग–प्रबंधन

इस रोग का प्रबंधन निम्नलिखित प्रकार से किया जा सकता है:

- संक्रमित पौधें के अवशेषों को कटाई करके निकाल दें। पौधे की काट–छांट ठंढ शुरू होने से पहले करें।

- काट–छांट के बाद, पौधों पर कॉपर ऑक्सीक्लोराइड (0.25 प्रतिशत) या कार्बेन्डाजिम (0.1 प्रतिशत) का घोल बनाकर छिड़काव करें।
- पौधों को नई वृद्धि आने तक बचाएं रखें।

2. शयामव्रण (Anthracnose)

लक्षण

रोग के लक्षण शुरू में पत्तियों पर लगभग 0.5 सेमी व्यास के काले धब्बे के रूप में दिखाई देते हैं। वृद्धि होने पर धब्बे बैंगनी या भूरे रंग के हो जाते हैं। अंत में ये हल्के भूरे हो जाते हैं एवं इनके किनारे लाल–बैंगनी रंग के हो जाते हैं। पौधों के तने तथा डंठल भी इस रोग से ग्रसित होते हैं। विक्षतियों के बढने पर छोटे, काले कवक के फलनकाय एसरवुलसों के बिंदु, कागजनुमा, भूरे धब्बे के केंद्र में दिखाई देते हैं। नमीयुक्त मौसम मे पत्तियों पर धब्बों का बनना, पीलापन, अत्यधिक पत्तियों का गिरना तथा धब्बे के स्थान पर छेद होना प्रायः अधिक होता है।

रोगकारक एवं रोग-अनुकूल परिवेश

यह रोग, *स्फेसीलोमा रोजेरम (Sphaceloma rosarum)* नामक कवक से होता है। यह कवक पौधे की संक्रमित पत्तियों तथा टहनियों की पुरानी विक्षतियों पर जीवित रहता है। गर्म, बसंत मौसम में कवक का विकास अधिक होता है। पुरानी विक्षतियों पर पाए जाने वाले एसरवुलसों से बहुत से कोनिडियम निकलते हैं। ये कोनिडियम जल या हवा द्वारा नई पत्तियों तथा टहनियों पर पहुंचते हैं। नमीयुक्त मौसम इस रोग के विकास के लिए मददगार होता है।

रोग-प्रबंधन

इस रोग का प्रबंधन निम्नलिखित प्रकार से किया जा सकता है:

- संक्रमित पौधों के रोगी भाग की काट–छांट करें।
- संक्रमित पौधों के अवशेषों जैसे पत्तियों तथा तनों को खेत से निकाल कर नष्ट दें।
- पौधों पर उन कवकनाशियों का छिडकाव करें जो काला धब्बा रोग की रोकथाम के लिए सुझाए गए हैं।

3. रतुआ/किट्ट रोग (Rust disease)

लक्षण

गुलाब का रतुआ एक महत्वपूर्ण तथा सामान्यतः पाया जाने वाला रोग है। इस रोग के लक्षण बसंत मौसम में सबसे पहले पत्तियों की निचली सतह पर हल्के नारंगी तथा पीले रंग के बीजाणु के स्फोट के रूप में दिखाई देते हैं। बाद में इस प्रकार के बीजाणु (एसियोस्पोर) के स्फोट पत्तियों की ऊपरी सतह पर और अधिक स्पष्ट रूप से दिखाई देते हैं। जैसे ही गर्मी बढने लगती हैं। कवक की यूरेडियल बीजाणु लाल-भूरे से नारंगी रंग के हो जाते हैं कवक की यह अवस्था 1-14 दिन के अंतराल पर एक फसल मौसम में कई बार होती है। पत्तियों के साथ-साथ मुलायम शाखाओं तथा फूलों पर भी इस रोग के लक्षण देखे जा सकते हैं। रोग के लक्षण देखने पर इसे आसानी से पहचाना जा सकता है।

रोगकारक एवं रोग-अनुकूल परिवेश

गुलाब में रतुआ, *फ्रैगमिडियम जाति (Phragmidium spp.)* नामक कवक से होता है। यह अविकल्पी परजीवी है तथा इसका संवर्धन नहीं किया जा सकता है। इस रोगकारक की नौ जातियां पाई गई हैं। यह रोगकारक टेलियोस्पोरों के रूप में भूमि पर गिरी हुई पत्तियों या संक्रमित केन या शाखाओं पर उत्तरजीवी रहता है। इसके बीजाणु हवा द्वारा एक स्थान से दूसरे स्थान पर तथा प्रत्तियों पर पहुंचते हैं और अंकुरित होकर रंध्र द्वारा पौधे के अंदर प्रवेश करके उसे संक्रमित करते हैं। इस रोगकारक का कोई वैकल्पिक पोषक पौधा नहीं होता है और इसकी सभी अवस्थाएं गुलाब के पौधे पर ही पूरी होती हैं। रोगकारक के बीजाणु एसियो स्पोरों और यूरेडियोस्पोरों के रूप में हवा में फैलते हैं और पाधे में द्वितीयक संक्रमण करते हैं। बीजाणु के अंकुरण के लिए ठंडा तापमान और कम से कम 2 घंटे लगातार नमी की आवश्यकता होती है जिससे जननलिका रंध्र द्वारा पत्तियों के अंदर प्रवेश करती है। रोग की तीव्रता ठंडे तापमान तथा अधिक नमी होने पर अधिक होती है।

रोग-प्रबंधन

इस रोग का प्रबंधन निम्नलिखित प्रकार से किया जा सकता है:

- संक्रमित पौधों के अवशेषों जैसे पत्तियों एवं शाखाओं को खेत से इकट्ठा करके नष्ट कर दें।
- संक्रमित शाखाओं को काट–छांट कर पौधे से अलग कर दें।
- पौधों को अधिक सघन न रखें, जिससे पौधों के पास अधिक नमी न रहे।

- रोग के लक्षण दिखाई देने पर फसलों पर मैंकोजेब (0.25 प्रतिशत) का 10-15 दिन के अंतराल पर छिड़काव करते रहें।

4. काली चित्ती (Black spot disease)

लक्षण

इस रोग में लक्षण के रूप में पत्तियों पर छोटे, गोलाकार लगभग 2 मि.मी. व्यास के गहरे भूरे रंग के धब्बे दिखाई देते हैं। इन धब्बों के किनारे झालर की तरह होते हैं, जिनके चारों ओर का क्षेत्र पीला पड़ जाता है, जो इस रोग का विशेष लक्षण है। अधिक संक्रमण बढ़ने पर, ये छोटे–छोटे धब्बे आपस में मिलकर बड़ा आकार ले लेते हैं जिससे पत्तियों का अधिकांश क्षेत्र इन धब्बों से ढक जाता है। परिणास्वरूप, संक्रमित पत्तियां झड़ने लगती हैं। लकड़ियों पर बैंगनी लाल रंग के अनियमित आकर के उठे हुए धब्बे दिखाई देते हैं।

रोगकारक एवं रोग-अनुकूल परिवेश

यह रोग, *डिप्लोकार्पोन रोजी (Diplocarpon rosae)* नामक कवक द्वारा होता है। यह कवक प्रायः संक्रमित पत्तियों तथा टहनियों पर जीवित शेष रहता है। रोगकारक कवकजाल, पूर्ण या लैंगिग अवस्था के रूप जीवित रहता है। जैसे ही तापमान बढ़ता है, यह कवक कोनिडियम पैदा करता है, जो हवा या वर्षा की बूंदों द्वारा नई एवं विकसित पत्तियों पर पहुंचते हैं। ये कोनिडियम स्वतंत्र जल एवं नमी की उपस्थिति में अंकुरित होते हैं और पत्तियों में संक्रमण करते हैं। ये कवक अविकल्पी परजीवी होने के कारण, पोषक पौधों की कोशिकाओं में हौस्टोरिया पैदा करते हैं। रोग का संक्रमण बढ़ने पर पत्तियों पर काले धब्बे स्पष्ट रूप

से दिखाई देते हैं जिन पर कोनिडियम बनते है, जो द्‌वितीयक संक्रमण के स्रोत होते हैं। रोग का संक्रमण प्रायः निचली तथा पौधे की अंदर की पत्तियों पर अधिक होता है, क्योंकि उस जगह पर स्वतंत्र नमी एवं जल लंबे समय तक रहता है जो कोनिडियमों के अंकुरण तथा जननलिका के पौधों मे प्रवेश में सहायक होता है।

रोग–प्रबंधन

इस रोग का प्रबंधन निम्नलिखित प्रकार से किया जा सकता है:

- रोग-ग्रसित पौधों के अवशेषों तथा पत्तियों को खेत से इकट्‌ठा करके जला दें।
- रोगी पौधों की टहनियों की छंटाई करते रहना चाहिए।
- पौधों पर रोग के लक्षण दिखाई देने पर कार्बेन्डाजिम (0.05 प्रतिशत), मैंकोजेब (0.25 प्रतिशत) का पानी में घोल बनाकर 10–15 दिनों के अंतराल पर छिड़काव करें।
- जड़ों को 0° सेल्सियस तापमान पर भंड़ारित करें।

5. चूर्णिल आसिता (Powdery mildew)

लक्षण

गुलाब की चूर्णिल आसिता एक गंभीर रोग है। इस रोग के लक्षण पत्तियों तथा टहनियों पर छोटे, सफेद रंग के धब्बे के रूप में दिखाई. देते हैं। पत्तियां पीली होकर ऊपर की ओर मुड़ने लगती हैं। कवक के कवकजाल तथा बीजाणु, सफेद चूर्ण की तरह पुरानी च संक्रमित पत्तियों पर फैले होते हैं। प्रभावित

कलियां खुलने में असमर्थ होती हैं और फूलों की पंखुडियां अपना रंग खोने लगती हैं और अंत में झड़ जाती हैं।

रोगकारक एवं रोग-अनुकूल परिवेश

यह रोग, *स्फैरोथेका पैनोसा वैर रोजी (Sphaerotheca pannosa var. rosae)* नामक कवक से होता है। यह कवक प्रसुप्त कवकजाल या क्लिस्टोथिसिया के रूप में संक्रमित टहनियों एवं पत्तियों पर उत्तरजीवी बना रहता है। बसंत ऋतु में वातावरण गर्म होने पर प्रसुप्त कवकजाल सक्रिय हो जाता है और अलैंगिक बीजाणु या कोनिडियम पैदा करता है जबकि क्लिस्टोथिसिया अंकुरित होकर एस्कोस्पोर बनाता है। कोनिडियम तथा एस्कोस्पोर हवा द्वारा रोगग्राही नए पौधों पर पहुंचते हैं। बीजाणु के अंकुरण के लिए 21.6° सेल्सियस तापमान तथा 98 प्रतिशत आपेक्षिक आर्द्रता अनुकूलतम होते हैं। 32.2 सेल्सियस तापमान तथा स्वतंत्र नमी की उपस्थिति में बीजाणु अंकुरित नहीं हो पाते हैं। बीजाणु अंकुरित होकर जनन-नलिका बनाते हैं और सीधे ऊपर की कोशिकाओं को भेदते हैं तथा कोशिकाओं में चूषकांग (हौस्टोरिया) बनाते हैं जिसकी सहायता से कवक पौधों से पोषण ग्रहण करते रहते हैं। संक्रमण सफल होने पर कवकजाल विकसित होते हैं और बहुत से द्वितीयक कोनिडियम बनते हैं जो हवा द्वारा फैलकर दूसरे पौधों या पौधे के भाग को संक्रमित करते हैं।

रोग-प्रबंधन

इस रोग का प्रबंधन निम्नलिखित प्रकार से किया जा सकता है:

- संक्रमित शाखाओं की मौसम के अंत में छंटाई कर उन्हे जला दें।

- संक्रमित पौधों के अवशेषों तथा खरपतवारों को खेत से निकालकार नष्ट कर दें।
- रोग के लक्षण दिखाई देने पर पौधों पर कार्बेन्डाजिम (0.1 प्रतिशत) या कैराथेन (0.2 प्रतिशत) या घुलनशील सल्फर (0.2 प्रतिशत) या थायोफेनेट मेथिल (0.1 प्रतिशत) का पानी में घोल बनाकर 10–15 दिनों के अंतराल पर पौधों पर छिड़काव करें।

6. शीर्षारंभी क्षय (Die back)

लक्षण

इस रोग के संक्रमण से पौधा सिरे से नीचे की ओर सूखने लगता है। यह रोग टहनियों के कटे हुए भागों से शुरू होता है जिसमें शाखाएं, तना एवं जड़ें ऊपरी सिरे से नीचे की ओर सूख जाते हैं। पौधे का प्रभावित भाग काला पड़ जाता है। रोगग्रस्त तने या जड़ को फाड़कर देखने पर भीतर से ऊतक भूरे नजर आते हैं।

रोगकारक एवं रोग-अनुकूल परिवेश

यह रोग, गुलाब में विभिन्न प्रकार के कवकों जैसे *लेप्टोस्फेरिया कोनियोथिरियम (Leptosphaeria coniothyrium) बोट्रियोडिप्लोडिया थियोब्रोमी (Botryodiplodia theobromae), या डिप्लोडिया जाति (Diplodia* sp.*)* के द्वारा होता है। ये सभी रोगकारक संक्रमित पौधों की टहनियों तथा शाखाओं पर उत्तरजीवी बने रहते हैं। पौधों में संक्रमण उन कमजोर पौधों में अधिक होता है, जिन की पत्तियां रोग के कारण झड़ गई हैं या पौधों के पाले या धूप से प्रभावित होने पर अधिक संक्रमण होता है। नम वातावरण में रोग अधिक होता है। इसके अलावा खेत में जल-

निकास की व्यवस्था ठीक न होने या पोषक तत्वों की कमी के कारण भी पौधे इस रोग के प्रति अधिक रोगग्राही हो जाते हैं।

रोग-प्रबंधन

इस रोग का प्रबंधन निम्नलिखित प्रकार से किया जा सकता है:

- संक्रमित पौधों, पत्तियों, टहनियों को इकट्ठा करके जला दें।
- प्रभावित टहनियों के रोगग्रस्त भाग को सूखी हुई जगह से 10 सेमी. तक काट दें और काट–छांट की दिशा तिरछी रखें जिससे कटे हुए भाग पर पानी इकट्ठा न रहे।
- कटे हुए भाग पर बोर्डो पेस्ट (नीला थोथा 100 ग्राम + बुझा हुआ चूना 100 ग्राम प्रति लिटर पानी में) का लेप लगाएं।

7. रोज मोजेक (Rose mosaic)

लक्षण

इस रोग के लक्षण पत्तियों पर चित्तीनुमा धब्बे के रूप में दिखाई देते हैं। पत्तियों का आकार विकृत हो जाता है, पत्तियां लहरदार, और पीलापन लिए होती हैं या उन की शिराएं पीली हो जाती हैं। संक्रमित पौधों का विकास कम हो जाता है। गर्मियों में इस रोग के लक्षण दिखाई नहीं देते हैं, लेकिन ठंड शुरू होने पर लक्षण पुनः दिखाई देने लगते हैं। पौधा छोटा रह जाता है तथा फूलों की पैदावार व गुणवत्ता में कमी आ जाती है। संक्रमित पौधे भूमि में अच्छी तरह स्थापित नहीं हो पाते हैं।

रोगकारक एवं रोग-अनुकूल परिवेश

यह रोग रोज मोजेक विषाणु *(Rose mosaic virus)* नामक विषाणु से होता है।

रोग-प्रबंधन

इस रोग के प्रबंधन के लिए निम्नलिखित उपाय किए जा सकते हैः

- रोपण हेतु स्वस्थ, विषाणुरहित पौधों का ही उपयोग करें।
- संक्रमित पौधों को बाग से निकाल कर नष्ट कर दें।
- संवर्धन के लिए स्वस्थ पौधों का चुनाव करें।

अध्याय – 28

ग्लैडियोलस के रोग (Diseases of gladiolus)

ग्लेडिओलस (*स्पाइनेसिया ओलेरेसिया एल. – Gladiolus* spp.) घनकंद से उगने वाला दूसरा कर्तित पुष्प दूसरा महत्वपूर्ण (कट फ्लावर) है। भारत में इसकी खेती 19वीं शताब्दी से की जा सकती है। अधिक गरम एवं अधिक ठंड इसकी गुणवत्ता को प्रभावित करते हैं। इसके आकर्षक पुष्पपुज और बहुत से रंग के फूलों के कारण इसे सजावट के लिए किनारों में तथा मामलों भी उगाते हैं। ग्लेडियोंलस के सिटैसिनस संकर जाति के घनकंद में स्टार्च (65–78 प्रतिशत) तथा प्रोटीन (12–18 प्रतिशत) होती है। ग्लोडियोलस अम्ल *पेनिसिलियम ग्लोडिओलस* से संक्रमित घनकंदो से पैदा प्रमुख रोगों का वर्णन किया गया है।

1. म्लानि रोग (Wilt)

लक्षण

इस रोग के लक्षण पौधों में पत्ती की नोग का अंतर्धारीय क्षेत्र पीला दिखाई देने लगता है जो नीचे की ओर बढ़ता हुआ पूरी पत्ते पर फैल जाता है। बाद में संक्रमित पत्तियां भूरी होकर सूख जाती हैं। इसके अलावा अन्य लक्षण है। पौधों की वृद्धि का रुकना, पत्तो का मुड़ जाना व झुकना आदि। अंत में पौधा मुरझाकर पीला पड़ जाता है तथा समय से पहले ही मर जाता है। इस रोग से प्रभावित पौधे बड़ी आसानी से भूमी से निकाले जा सकते हैं। घनकंद से निकलने वाली जड़ो पर भी भूरे रंग के धब्बे दिखाई देते हैं। भंडारण के समय सड़न, घनकंद के निचले भाग तक ही सीमित रहती है जिससे वह सूख जाता है जबकि खेत में विद्यमान संक्रमित मे विगलन हो जाती है। अधिक तीव्र संक्रमण होने गोल या अंडाकार धब्बे भी दिखाई देते हैं परिणामस्वरूप सिकुड़कर सख्त हो जाता है।

रोगकारक एवं रोग-अनुकूल परिवेश

यह रोग, *फ्युजेरियम ऑक्सीस्पोनम फ. स्पी ग्लोडिआलाई (Fusarium oxysporum f. sp. gladioli)* नामक कवक से होता है। घनकंदो का प्राथमिक संक्रमण भूमि से या पिछले वर्ष क घनकंद के अंतर्हित संक्रमण से होता है जो नए घनकंदो में बोआई के बाद फैल जाता है। यह रोग संक्रमित मिट्टी व दूषित

जल से भी फैल सकता है। पौधों या घनकंदो की भूमि–जनित सूत्रकृमि या विषाणुओं से पूर्ववृत्ति के कारण भी इस रोग का प्रकोप बढ़ता है।

रोग-प्रबंधन

इस रोग का प्रबंधन निम्नलिखित उपायों से किया जा सकता है:

- संक्रमित पौधे के अवशेषों या घनकंदों को खेत से निकाल कर नष्ट कर दें।
- रोग-प्रतिरोधी किस्में जैसे अल्वाना, ऐप्रिकॉट ग्लो, सोबेनिर, हॉपमैन्ज ग्लोरी, सिल्विया, धीरज, व्हाइट, फ्रेंडशिप, व्हाइट, प्रॉस्पेरिटी व सहनशील किस्में जैसे ऑस्ट्रेलियन फेयर व मंसूर आदि की बुआई करें।
- घनकंदो को भूमि से फसल समाप्त होने पर जल्दी निकालें।
- रोगग्रस्त घनकंदों की छंटाई करके उन्हे नष्ट कर दें।
- खेत में जल-निकास की उचित व्यवस्था करें, जिससे खेत में पानी न रुकने पाए।
- कार्बनिक व जैविक पलवारों का उपयोग भी घनकंद सड़न रोग रोकने के लिए किया जा सकता है।
- गर्मियों के महीनों (अप्रेल-जून) में संक्रमित भूमि को अच्छी तरह जोत कर उसमें गोबर की खाद मिला लें। फिर उसमें हल्की सिंचाई कर लें और उसे सफेद पारदर्शी पॉलिथीन (100 गेज मोटी) से ढक दें।
- घनकंदों को गर्म पानी में 53–55° सेल्सियस तापमान पर आधे घंटे के लिए उपचारित करने से घनकंद सड़न रोग का संक्रमण रुक जाता है। गर्म पानी से उपचार करते समय फफूंदनाशियों जैसे कार्बेन्डाजिम (1.0 ग्राम प्रति लिटर पानी में) या कैप्टान या थीरम या जिनेब (1.

0 ग्राम प्रति लिटर पानी में) को भी साथ मिला लें तो इसका प्रभाव और भी अधिक होता है तथा रोग को नियंत्रित किया जा सकता है।

- घनकंदों को खेत से निकालने के बाद और लगाने से पहले कवींटल (2.5 ग्राम) या नीमाजल (1.0 मिली.) प्रति लिटर पानी में घोल बनाकर आधे घंटे तक डुबोकर रखें और अच्छी तरह छाया में सुखा लें।
- पौधों पर रोग के लक्षण दिखाई देने पर कार्बेन्डाजिम (1.0 ग्राम) या कवींटल (2.5 ग्राम) या साफ (2.0 ग्राम) प्रति लिटर पानी में घोल बनाकर प्रभावित पौधों की जड़ों व उसके आसपास डालें।

2. धूसर फफूंदी (Grey mould disease)

लक्षण

घनकंदों को भूमि से निकालने पर उन पर छोटे–छोटे गोलाकार लाल कत्थई धब्बे दिखाई देते है जिनके बीच में गड्ढा बन जाता है। भंडारण के समय ये घनकंद मुलायम व स्पंजी भी हो जाते हैं। अतः इस रोग को स्पंजी विगलन भी कहते हैं। बाद में घनकंदों पर काले रंग के कवक के स्क्लेरोशिया भी बनने लगते हैं। पत्तियों पर विभिन्न आकार के गोल या अंडाकार, पीले-भूरे धब्बे दिखाई देते हैं जिनके किनारे लाल कत्थई होते हैं। गर्म, सूखे वातावरण में इन धब्बो का आकार सीमित रहता है परंतु नई पत्तियां आने पर अधिकतर ठंडे वातावरण में धब्बों का आकार बढ़ने लगता है। फूलों पर भी इसी तरह के धब्बे दिखाई देते हैं जो शुरू में पीले–कत्थई रंग के और बाद में गहरे रंग के हो जाते हैं। वर्षा के पश्चात् फूल मुलायम होकर सड़ जाते हैं पंखुडियों पर रोगकारक के बीजाणु भारी मात्रा में बनते हैं, जिससे उन पर बहुत ही छोटे–छोटे पारभासी, जलीय धब्बे बनते हैं जो बाद में हल्के भूरे रंग के हो जाते हैं। अंततः पूरा फूल चिपचिपा

व मुलायम होकर, ठंडे व नमीदार वातावरण में पूरी तरह सड़ जाता है। पौधों के तने, भूमि की सतह से लगने वाले भाग पूरी तरह से भूरे–काले रंग के हो जाते हैं, जिससे तने के चारों ओर से पौधा सड़ जाता है, और परिणास्वरूप गिर जाता है।

रोगकारक एवं रोग-अनुकूल परिवेश

इस रोग *बोट्राइटिस ग्लैडिऑलोरम (Botrytis gladiolorum)* नामक कवक से होता है। यह रेगकारक भूमि में संक्रमित पौधों के अवशेषों या कचरे पर जीवित रहता है। ठंडा व नमीदार वातावरण इस रोग के फैलने के लिए बड़ा ही उपयुक्त होता है। पत्तियों एवं निकाले हुए घनकंदो पर इस रोग के संक्रमण के लिए 12.8° से 18.3° सेल्सियस तापमान बहुत ही उपयुक्त पाया जाता है।

रोग-प्रबंधन

इस रोग का प्रबंधन निम्नलिखित प्रकार से किया जा सकता है :

- भंडारण से पूर्व घनकंदों को कुछ समय के लिए धूप में सुखाने से रोगकारक नष्ट हो जाते हैं।
- बुआई के लिए स्वस्थ घनकंदों का प्रयोग करें।
- बुआई या भंडारण से पहले घनकंदों को (2.5 ग्राम) या .नीमाजल (10 मि.ली) प्रति लिटर पानी में घोल बनाकर उपचारित करें।
- संक्रमित पौधों एवं फूलदार टहनियों को निकालकर नष्ट कर दें।
- भूमि को सौर ऊर्जा विधि सौर्यन से उपचारित करें।
- घनकंदों को 52° सेल्सियस तापमान पर गर्म पानी में 1.0 प्रति लिटर पानी की दर से कार्बेन्डाजिम मिला कर आधे घंटे डुबाकर रखें, और बाद में उन्हें छाया में सुखा लें।

- पौधों पर रोग दिखाई देने पर, क्वींटल (2.5 ग्राम) या नीमाजल (10 मि.ली.) या कार्बेन्डाजिम (1.0 ग्राम) या टॉप्सिन–एम (1.0 ग्राम) प्रति लिटर पानी के घोल से 10–15 दिनों के अंतराल पर आवश्यकतानुसार 2 से 3 छिड़काव पौधों पर करें। रोग के लक्षण प्रकट होने से पहले मैन्कोजेब, केप्टान, जिनेब, डाइक्लोरान या डैकोनिल (2.5 ग्राम प्रति लिटर पानी) आदि का छिड़काव भी इस रोग के नियंत्रण के लिए किया जा सकता है।

3. कर्वुलेरिया अंगभारी रोग (Curvularia blight)

लक्षण

इस रोग से पत्तियां पीली हो जाती हैं और उनकी नोक पर भूरापन दिखाई देता है। पत्तियों पर गोल या अंडाकार धब्बे भी दिखाई देते हैं जो रोग के बने रहने पर अनियमित आकार के हो जाते हैं। ये धब्बे पत्तियों की लंबाई के साथ–साथ पूरी पत्तियों पर फैल जाते हैं। धब्बे शुरू में हल्के पीले रंग के होते हैं, जो बाद में गहरे भूरे रंग में परिवर्तित हो जाते हैं। धब्बों के किनारे कत्थई रंग के होते हैं। पत्ती के अंदर के भाग रोगकारक के काले रंग के बीजाणुओं से भरे होते हैं। पूरी पत्ती संक्रमित होकर टूट जाती है। फूलों की पंखुड़ियों पर भूरे अंडाकार धब्बे दिखाई देते हैं। से जलीय धब्बे प्रारंभ में रंगहीन होते हैं, और बीजाणुओं के बनने के बाद भूरे या काले रंग के हो जाते हैं। इस रोग के लक्षण घनकंदों पर भी दिखाई देते हैं। घनकंदो पर दबे हुए काले रंग के धब्बे बनते हैं जो सख्त होकर कॉर्क की तरह दिखते हैं।

रोगकारक एवं रोग-अनुकूल परिवेश

यह रोग, *कर्बुलेरिया ट्राइफोलाई* फ. स्पी. *ग्लैडिओलाई* (*Curvularia trifolii* f.sp.*Gladiolii*) नामक कवक से होता है। इस रोग के बीजाणु पौधों के अवशेषों या मृदा में जीवित शेष रहते हैं। यह एक भूमिजनित रोग है, जिसके रोगकारक भूमि में तीन वर्ष

या उससे अधिक समय तक जीवित रहते हैं। यह रोग छोटे घनकंदों से उगाए गए पौधों के लिए हानिकारक होता है और इसके बीजाणु पौधों व घनकंदों को भूमि की सतह पर या उसके नीचे ही संक्रमित कर देते हैं। संक्रमित घनकंद की बुआई करने पर पौधे भूमि के नीचे ही मर जाते हैं या पत्तियों पर बिना कोई लक्षण दिखाई दिए ही संक्रमित पौधे मर जाते हैं। यह रोग गर्म व नमीदार वातावरण में गंभीर रूप लेता है। संक्रमित पौधों के अवशेषों व रोगाणुओं से संक्रमित मिट्टी अगली फसल के लिए प्राथमिक संक्रमण का स्रोत बन जाती है।

रोग-प्रबंधन

इस रोग का प्रबंधन निम्नलिखित प्रकार से किया जा सकता है :

- संक्रमित पौधों के अवशेषों को खेत से निकालकर नष्ट कर दें।
- बुआई के लिए स्वस्थ घनकंदों का प्रयोग करें।
- घनकंदों का संक्रमण रोकने के लिए उन्हें तभी निकालें जब भूमि सूखी हो। निकालने के तुरंत बाद उन्हें कवकनाशी से उपचारित करें। पौधों पर मैन्कोजेब (0. 25 प्रतिशत) का पानी में घोल बनाकर 15 दिनों के अंतराल पर 2-3छिड़काव करें।

4. पर्णचित्ती (Leaf spot)

लक्षण

ग्लैडिओलस पर कई प्रकार के धब्बे दिखाई देते हैं जो कवक की विभिन्न जातियों द्वारा संक्रमित होते हैं। इनके रोगकारक एवं प्रमुख लक्षणों का वर्णन नीचे किया गया है।

(अ) आल्टरनेरिया पर्ण चित्ती (Alternaria Leaf spot)

यह रोग *आल्टरनेरिया फ़ैसीक्युलेटा (Alternaria faciculata)* एवं *ए. टेनुइस (tenuis)* नामक कवकों द्वारा होता है। इस रोग के

लक्षण पत्तियों के ऊपरी भाग एवं किनारों पर मैले, गहरे भूरे या काले रंग के अनियमित आकार के धब्बे के रूप में दिखाई देते हैं।

(ब) सेप्टोरिया पर्ण चित्ती (Septoria leaf spot)

यह रोग, *सैप्टोरिया ग्लैडियोलाई (Septoria gladioli)* नामक कवक से होता है। इस रोगकारक का संक्रमण देश के समशीतोष्ण भागों में अधिक होता है। इस कवक का संक्रमण पत्तियों तक ही सीमित रहता है और वह भी उन पौधों में जो छोटे धनकंदों से उगाए जाते हैं। फूलों पर गोल, भूरे या बैंगनी भूरे, मध्यम आकार के धंसे हुए धब्बे बनते हैं जिनके केंद्र में काले रंग के बीजाणु-पुंज पाए जाते हैं। नम वातावरण में बीजाणु बाहर निकल आते हैं और तेजी से रोग को फैलाते हैं।

(स) स्टेमफाइलियम पर्ण चित्ती (Stemphyllium Leaf spot)

यह रोग *स्टेमफाइलियम* जाती *(Stemphyllium* spp.*)* नामक कवक द्वारा होता है। *स्टेमफाइलियम* जाति भी पत्तियों पर तीव्र रूप से आक्रमण करती है, जिससे पत्तियां एवं फूल लगने से पहले ही मर जाते हैं। यह रोग सर्दियों में नमीदार वातावरण में प्रकट होता है और इसमें पत्तों पर छोटे लाल कत्थई रंग के धब्बे दिखाई देते हैं जो पारभासी, हल्के पीले रंग के एवं अंगूठीनुमा क्षेत्र से घिरे होते हैं।

इनके अतिरिक्त, ग्लैडिओलस पर कुछ अन्य कवक भी धब्बे बनाते हैं जैसे ड्रेश्लेरा (Dreschlera) कॉलैटोट्रइकम, (Colletotrichum), फाइलोस्टिक्टा (Phyllosticta) एवं माइकोस्फीरेला (Mycosphaerella), ।

रोग-प्रबंधन

ग्लैडिओलस के पर्ण चित्ती रोगों के प्रबंधन के लिए निम्नलिखित उपाए किए जाने चाहिए:

- संक्रमित पौधों के अवशेषों को खेत से निकाल कर नष्ट कर दें।
- गर्मियों में खेत की गहरी जुताई करके कुछ समय के लिए खुला छोड़ दें।
- बुआई के लिए स्वस्थ एवं बडे घनकंदों का चुनाव करें।
- पौधों पर किसी कवकनाशी जैसे मैंकोजेब (0.25 प्रतिशत), कॉपर ऑक्सीक्लोराइड (0.3 प्रतिशत) या कार्बेन्डाजिम (0.1 प्रतिशत) का घोल बनाकर 2–3 छिड़काव करें।

5. घनकंद विगलन (Corm rot)

लक्षण

यह रोग भंडारण के समय घनकंदों पर दिखाई देता है। घनकंदों पर बडे, लाल–कत्थई रंग के दबे हुए धब्बे दिखते हैं जिनके मध्य में गुलाबी रंग के कवक के बीजाणु बनते हैं जो कम तापमान पर हरी फफूंदी से भर जाते हैं। कवक घनकंदों के संवहनी ऊतक तक फैल जाती है। भंडारण में यह रोग उस समय अधिक होता है जब घनकंद भूमि से निकालने के उपरांत, बिना उपचारित किए हुए ही भंडार में अधिक नमी वाली जगह पर इकट्ठे बंद करके रख दिए जाते हैं। यह रोग घनकंदो के अंतर्हित संक्रमण से फैलता है।

रोगकारक एवं रोग-अनुकूल परिवेश

यह रोग, *पेनिसिलियम ग्लेडिओलाई (Penicillium gladioli)* तथा *पेनिसिलियम* की अन्य जातियों के द्वारा होता है। इस कवक के बीजाणु घनकंदों एवं उनके अवशेषों पर जीवित रहते हैं। इसके बीजाणु हवा में भंडारण स्थान पर पाए जाते हैं।

घनकंदों की सड़न भंडारणगृह में आर्द्रता अधिक होने पर बढ़ जाती है।

रोग-प्रबंधन

इस रोग का प्रबंधन निम्नलिख्ति प्रकार से किया जा सकता है :

- बुआई के लिए स्वस्थ घनकंदों का प्रयोग करें। घनकंदों को भूमि में लगाने से पहले सौर ऊर्जा से या क्वींटल (2.5 ग्राम) या नीमाजल (10 मिली.) का प्रति लिटर पानी में घोल बनाकर उपचारित करें।
- खेत से निकालने के बाद घनकंदों को छाया में सुखा लें।
- भंडारण से पहले घनकंदों को मैन्कोजेब या थीरम (2.5–3.0 ग्राम प्रति लिटर पानी) में 30 मिनट तक भिगोकर छाया में सुखा लें।

6. विषाणु–जनित रोग (Viral diseases of gladiolus)

(अ) कुकुंबर मोजेक विषाणु (Cucumber mosaic virus)

इस विषाणु द्वारा संक्रमित रोग का प्रमुख लक्षण पत्तियों पर सफेद टूटती हुई धारियों का दिखाई देना है। जिन किस्मों में रंगीन फूल लगते हैं, उन फूलों के रंग में विभिन्नता पाई जाती है और सफेद धारियां भी दिखाई देती हैं। पीले व सफेद फूल वाली किस्मों में फूल विकृत हो जाते हैं और पौधों की वृद्धि भी रुक जाती है। घनकंदों पर झुर्रियां भी दिखाई देती हैं। इस रोग के विषाणु को माहू कीट फैलाते हैं।

(ब) ऐस्टर येलोज विषाणु (Aster yellows virus)

इस विषाणु के संक्रमण से पौधों में कई तरह के लक्षण दिखाई देते हैं, जैसे असमय अंकुरण, पौधों के ऊपरी भाग का

घासनुमा होना, कमजोर शाखाएं, जड़ों का प्रभावित होना, पौधों की वृद्धि का रुकना एवं फूलदार टहनियों का कमानी की भांति मुड़ जाना, आदि। ऐसे पौधे नोक से नीचे की ओर मरने लगते हैं और रोगग्रस्त घनकंद भी नीचे से सड़ जाते हैं। इस विषाणु को पत्ती के हॉपर वर्ग के कीट फैलाते हैं।

(स) टमाटर वलय चित्ती विषाणु (Tomato ring spot virus)

यह विषाणु फूलों पर बिना किसी स्पष्ट लक्षण के (जैसे चित्ती या धारियों का दीखना) पौधों और फूलदार टहनियों की वृद्धि को रोक देता है। यह विषाणु *जिफिनीमा* नामक सूत्रकृमि के माध्यम से फैलता है जो भूमि में रहता है।

रोग-प्रबंधन

इन विषाणु रोगों के प्रबधंन हेतु निम्नलिखित उपायों से पाधों को बचाया जा सकता हैं:

- इन सभी प्रकार के विषाणुओं को नियंत्रित करने के लिए बीन, तम्बाकू, टमाटर, खीरा, व सूर्यमुखी कुल के किसी भी पौधे की बोआई ग्लैडिओलस के पौधों से काफी दूर करें।
- संक्रमित पौधों को उखाड़कर नष्ट कर दें।
- विषाणुओं को फैलाने वाले कीटों के लिए कीटनाशियों जैसे मैलाथियान, मैटासिस्टॉक्स, मैटासिड, मोनोक्रोटोफास, डाइमेकॉन, नुवॉन, नुवाक्रॉन इत्यादि का छिड़काव 2.0 मिली. प्रति लिटर पानी की दर से करें।
- सूत्रकृमि के नियंत्रण के लिए भूमि को फोरेट या कार्बेफ्यूरान से 60 किग्रा. प्रति हेक्टेयर की दर से उपाचारित करें।

- फूल काटने वाले औजारों को ऐथिल अल्कोहॉल में थोड़ी देर तक डुबाकर रखें और सुखा लें।
- खनिज तेल या ऐल्युमिनियम फॉइल के उपयोग से विषाणुओं को फैलाने वाले कीट दूर भागते हैं। अतः इनका उपयोग भी विषाणुओं द्वारा संक्रमित रोगों के नियंत्रण के लिए महत्वपूर्ण है।

अध्याय – 29

कार्नेशन के रोग (Diseases of carnation)

कार्नेशन के कट फ्लावर (कर्तित पुष्प) का अंतरराष्ट्रीय बाजार में प्रमुख स्थान है कार्नेशन का (*डाइऐन्थ स्पीसज –* Dianthus spp.) का कर्तित पुष्प में बहुत बड़ा योगदान है। भारत में इसकी खेती सघन रूप में नासिक, पुणे, श्रीनगर, बेंगलूर, कोयम्बटूर, दिल्ली तथा कोलकाता मे की जाती है। कर्तित पुष्प के उत्पादन के लिए कलिम्पांग, शिमला, सोलन, कुल्लू, ऊटी, नैनीताल, चौबटिया, कोडाइकनाल आदि स्थानों की जलवायु उपयुक्त होती है। कर्तित पुष्प के 70–90 सेमी. तने के लंबाई के साथ स्वस्थ एवं चमकीले फूल की कीमत बाजार में अच्छी मिलती है। कार्नेशन के तेल का प्रयोग इत्र में किया जाता है। इसके फूल पूरे साल, विभिन्न रंगों के पाए जाते हैं। अन्य फूलों की तरह कार्नेशन में भी कवकों, जीवाणुओं तथा विषाणुओं के द्वारा रोग पैदा होते है जो फूल की पैदावार तथा इसकी गुणवत्ता को कम करते हैं, जिससे बाजार में मूल्य कम मिलता है। इस अध्याय में कार्नेशन के प्रमुख रोगो के लक्षण, रोगकारक, रोग अनुकूल परिवेश तथा उनके उचित प्रबंधन का वर्णन संक्षिप्त में किया गया है

1. म्लानि रोग (Wilt)

लक्षण

इस रोग के कारण पौधे की निचली पत्तियां पीली पड़ने लगती हैं। तने पर भूमि की सतह के पास सड़न होने लगती है तथा यह सड़न धीरे–धीरे ऊपर की ओर बढ़ने लगती है और कुछ समय बाद पौधा मुरझा जाता है। भूमि के पास तना गलकर नरम पड़ जाता है, जिससे पौधा भूमि से आसानी से निकल जाता है। प्रभावित पौधों के तने पर बीच में दरारें पड़ जाती हैं तथा तने का छिलका हटाकर देखने पर ऊतक हल्के भूरे रंग के दिखाई देते हैं। यह भूरापन ऊपर की ओर बढ़ने लगता है और पौधे के सूखने पर सफेद हो जाता है। म्लानि के लक्षण कई बार पौधे के एक तरफ ही होते हैं। इस रोग के प्रभाव से जड़ें काली पड़कर सड़ जाती हैं और पौधा धीरे–धीरे मर जाता है।

रोगकारक एवं रोग-अनुकूल परिवेश

यह रोग, *फ्यूजेरियम ऑक्सीस्पोरम* फ. स्पी. *डाइएन्थाई* (*Fusarium oxysporum* f. sp. *dianthi*) नामक कवक से होता है।

रोग-प्रबंधन

इस रोग का प्रबंधन निम्नलिखित प्रकार से किया जा सकता है:

- रोपण हेतु रोगरहित पौधों का ही उपयोग करें।
- पौद की कलमें रोगणुरहित मृदा में ही तैयार करें।
- कार्नेशन की कलमों को मृदा में लगाने से पहले मृदा को फार्मेलीन (1 भाग फार्मेलीन 7 भाग पानी में मिलाकर) से उपचारित करें या मृदा को 4–5 सप्ताह तक सौर्यन द्वारा उपचारित करें।
- लंबा फसल चक्र (3 साल) अपनाएं।
- रोगग्रस्त पौधों के अवशेषों को इकट्ठा करके नष्ट कर दें।

- पौधों में रोग के लक्षण दिखाई देने पर, तने के आसपास की भूमि पर कार्बेन्डाजिम (0.1 प्रतिशत) के पानी का घोल बनाकर सिंचाई करें।

2. जड़ एवं तना विगलन (Root and stem rot)

लक्षण

इस रोग के संक्रमण से पौधों की पत्तियां सड़कर मुरझा जाती हैं। संक्रमित पौधे भूमि से आसानी से जड़सहित उखाड़े जा सकते हैं। जड़ के आसपास कवक का सफेद कवकजाल लिपटा रहता है जिस पर छोटे–छोटे सरसों के बीज जैसे कवक के स्क्लेरोशिया दिखाई देते हैं जो प्रारंभ में सफेद या हल्के पीले तथा बाद में गहरे भूरे रंग के हो जाते हैं। पौधे की मूसला जड़ सड़ जाती है। अधिक तापमान होने पर पौधे अंत में पूर्णरूप से मुरझाकर मर जाते हैं।

रोगकारक एवं रोग-अनुकूल परिवेश

यह रोग *राइजोक्टोनिया सोलेनी* (*Rhizocotonia solani*) नामक कवक से होता है। यह रोगकारक स्क्लेरोशिया के रूप में उत्तरजीवी बना रहता है। इसके 200 से अधिक पोषक पौधे हैं। इस रोग के विकास के लिए अधिक नमीयुक्त मृदा एवं अधिक तापमान (30–35° सेल्सियस) की दशाएं अनुकूल होती हैं। यह कवक सिंचाई-जल तथा कृषियंत्रों द्वारा फैलता है।

रोग-प्रबंधन

इस रोग का प्रबंधन निम्नलिखित प्रकार से किया जा सकता है:

- संक्रमित पौधों के अवशेषों को खेत से इकट्ठा करके नष्ट कर दें।
- गर्मियों में खेत की गहरी जुताई करके 15–20 दिनों के लिए खुला छोड़ दें।

- 3–4 वर्ष का फसलचक्र अपनाएं, जिसमें गेहूं, जौ, मक्का को सम्मिलित करें।
- पौद को फार्मेलीन (एक भाग फार्मेलीन में 7 भाग पानी मिलाकर) द्वारा उपचारित मृदा में ही लगाएं या मृदा को सौर्यन से 4 से 5 सप्ताह तक उपाचारित करना भी लाभप्रद है।
- संतुलित उर्वरकों जैसे नाइट्रोजन, फॉस्फोरस एवं पोटाश का प्रयोग करें।
- रोग के लक्षण दिखाई देने पर रोगग्रस्त पौधों के तने के आसपास हेग्जाकोनाजोल (1 मिली.) या टैब्यूकोनाजोल (1 मिली.) या डाइफेनोकोनाजोल (1 मिली.) या प्रॉपीनेब (3 ग्राम) का एक लिटर पानी में घोल बनाकर सिंचाई करें।

3. पर्ण चित्ती एवं अंगमारी रोग (Leaf spot and blight)

लक्षण

इस रोग के लक्षण पत्तियों पर छोटे–छोटे बैंगनी रंग के गोलाकार या लंबवत् तथा सूखे धब्बों के रुप में दिखाई देते हैं। नम वातावरण में धब्बे आकार में बढ़ने लगते हैं। इन धब्बों के किनारे बैंगनी रंग के तथा केंद्रीय भाग स्लेटी रंग का होता हैं। बाद में रोग बढ़ने पर छोटे–छोटे धब्बे आपस में मिलकर पत्तियों का बहुत सा भाग घेर लेते हैं, जिससे पत्ता झुलस जाता है। यह रोग तने को भी संक्रमित करता है तथा पौधे के आधार में सड़न पैदा करता है। इस रोग से प्रभावित फूलों की गुणवत्ता पर भी प्रतिकूल असर पड़ता है।

रोगकारक एवं रोग-अनुकूल परिवेश

यह रोग *एल्टरनेरिया डाइएन्थाई* (*Alternaria dianthi*) नामक कवक से होता है। यह हवा द्वारा फैलने वाला गंभीर रोग है। यह रोगकारक संक्रमित पौधों के अवशेषों, जीवित पौधों तथा मृदा में

उत्तरजीवी होते हैं। इस रोग का फैलाव कलम के द्वारा भी होता है। इस कवक के कोनिडियम हवा द्वारा एक स्थान से दूसरे स्थान तक पहुंचते हैं। इस रोग के संक्रमण के लिए पानी का छिड़काव, छिड़काव विधि से सिंचाई, पौधशाला में अतिरिक्त नमी का होना तथा स्थिर हवा आदि सहायक होते हैं। पौधे की सघन रोपाई तथा अधिक पर्णीय वृद्धि इस रोग के बढ़ने में सहायक होती है। रोग की वृद्धि के लिए अधिक तापमान तथा आपेक्षिक आर्द्रता आवश्यक होते हैं।

रोग-प्रबंधन

इस रोग का प्रबंधन निम्नलिखित प्रकार से किया जा सकता है:

- संक्रमित पौधों की पत्तियों को तोड़कर जला दें।
- संक्रमित पौधों के अवशेषों को खेत से निकालकर नष्ट कर दें।
- रोग के लक्षण दिखाई देने पर पौधों पर ब्लाइटॉक्स – 50 (0.3 प्रतिशत) या मैन्कोजेब (0.25 प्रतिशत) या कार्बेन्डाजिम (0.1 प्रतिशत) का पानी में घोल बनाकर 10–15 दिनों के अंतराल पर 2 से 3 बार पौधों पर छिड़काव करें।

4. पुश्प-म्लानि रोग (Flower wilt)

लक्षण

इस रोग के लक्षण फूलों की पंखुड़ियों पर गोल, अंडाकार, छोटे–छोटे हल्के भूरे रंग के धब्बे के रूप में दिखाई देते हैं। बाद में प्रभावित पंखुड़ियां व कलियां भूरे रंग की हो जाती हैं। पंखुड़ियों एवं कलियों पर स्लेटी रंग के कवक की वृद्धि साफ दिखाई देती है। संक्रमित फूल मुरझाने लगते हैं। इस रोग से फूलों की पैदावार को भारी नुकसान होता है तथा फूलों का स्पंजीपन तथा गुणवत्ता कम हो जाती है।

रोगकारक एवं रोग-अनुकूल परिवेश

यह रोग, *बोट्रिटिस सिनेरिया* (*Botrytis cinerea*) नामक कवक से होता है।

रोग-प्रबंधन

इस रोग का प्रबंधन निम्नलिखित प्रकार से किया जा सकता है:

- संक्रमित पौधों तथा फूलों के अवशेषों को खेत से इकट्ठा करके नष्ट कर दें।
- पौधों पर जीनेब या कैप्टान (2.0 ग्राम प्रति लिटर पानी) का घोल बनाकर छिड़काव करें।
- पौधों के बीच में अंतर अधिक रखें।

5. इर्विनिया जीवाणुज म्लानि रोग (Erwinia bacterial wilt)

लक्षण

इस रोग के संक्रमण के कारण पौधे छोटे रह जाते हैं। प्रारंभ में पौधों में इसके लक्षण आने पर टहनियां मुड़ने लगती हैं तथा पौधे धीरे–धीरे मुरझाने लगते हैं। इस रोग के लक्षण पौधे के निचले भाग में देखने को मिलते हैं। पौधा नीचे से ऊपर की तरफ मुरझाने लगता है और कुछ समय बाद पूरा पौधा मर जाता है।

रोगकारक एवं रोग-अनुकूल परिवेश

यह रोग *इर्विनिया क्राइसैन्थेमाइ* उपजाति डाइऐन्थाइ (*Erwinia chrysanthemi* subsp. *dianthi*) नया नाम : *डिकिया डैन्थीकोला* (*Dickeya danthicola*) नामक जीवाणु से होता है। इस जीवाणु के बीजाणु संक्रमित पौधों के अवशेषों तथा मृदा में जीवित शेष रहते हैं। बीजाणु का संक्रमण हवा, वर्षा की बूदों, मृदा, संक्रमित कलमों तथा सिंचाई जल के द्वारा होता है।

रोग-प्रबंधन

इस रोग का प्रबंधन निम्नलिखित प्रकार से किया जा सकता है:

• रोगग्रसित पौधों को जड़-सहित उखाड़कर नष्ट कर दें।

• पिछली फसल के बचे हुए अवशेषों को नष्ट कर दें।

• कृषि में प्रयोग होने वाले उपकरणों को ब्लीचिंग पाउडर या ऐथिल अल्कोहल से उपाचारित करने के बाद ही प्रयोग करें।

• पौधों के पास की भूमि को स्ट्रेप्टोसाइक्लिन (10 ग्राम प्रति 100 लिटर पानी) से उपचारित करें।

6. बरखोल्डेरिया जीवाणुज म्लानि (Burkholderia bacterial wilt)

लक्षण

इस रोग के संक्रमण से पौधों का ऊपरी भाग अचानक मुरझाने लगता है या पौधों की कुछ शाखाएं मुरझाने लगती हैं। तने का आधार भाग फटने लगता है। प्रभावित पौधे की जड़ें सड़ने लगती हैं। तने के संवहनी ऊतक पीले से भूरे रंग के हो जाते हैं। तने का बाहरी छिल्का आसानी से अलग होने लगता है जो छूने पर लसलसा लगता है।

रोगकारक एवं रोग-अनुकूल परिवेश

यह रोग, *बरखोल्डेरिया कैरियोफिली* (*Burkholderia caryophylli*) नामक जीवाणु से होता हैं। यह जीवाणु संक्रमित पौधों तथा भूमि में पड़े पौधों के अवशेषों पर उत्तरजीवी बना रहता है जो इस रोग के संक्रमण के लिए प्राथमिक स्रोत का कार्य करता है। यह जीवाणु जल या मृदा द्वारा फैलता है। इस रोग की वृद्धि के लिए लगभग 30° सेल्सियस तापमान उत्तम होता है।

रोग-प्रबंधन

इस रोग का प्रबंधन निम्नलिखित प्रकार से किया जा सकता है:

- संक्रमित पौधों के अवशेषों को खेत से निकाल पर नष्ट कर दें।
- खेत की सफाई पर विशेष ध्यान रखें।
- रोपाई के लिए रोग–रहित कलमों का चुनाव करें।
- छिड़काव विधि से सिंचाई न करें।

7. कार्नेशन के विषाणु–जनित रोग (Viral diseases of carnation)

कार्नेशन पर कार्नेशन कर्बुर विषाणु, कार्नेशन बीन कर्बुर विषाणु व कार्नेशन वलय चित्ति विषाणु का संक्रमण भी होता है। इनके लक्षण, पोषक पौधों तथा प्राकृतिक फैलाव का वर्णन नीचे किया गया है।

(अ) कर्बुर विषाणु (Mottle)

यह रोग कार्नेशन कर्बुर विषाणु (*Carnation mottle virus*) द्वारा होता है। इस रोग से पत्तियां चितकबरी हो जाती हैं। यह विषाणु खेत में काम करने वाले लोगों तथा काटने वाले चाकू से फैलता है। इस विषाणु का प्रकोप जल-निकास के पानी से भी हो सकता है।

(ब) शिरा कर्बुर विषाणु (Vein mottle)

यह रोग कार्नेशन शिरा कर्बुर विषाणु (*Carnation vein mottle virus*) द्वारा होता है। इस रोग में नई पत्तियों की शिराएं हल्की पीली हो जाती हैं। पत्तियों पर पीले धब्बे दिखाई देते हैं। पुरानी पत्तियों पर कोई भी लक्षण दिखाई नहीं देता है। यह विषाणु माहू द्वारा स्थानांतरित होता है या कभी-कभी कलम काटने वाले चाकू से भी फैलता है।

(स) वलय चित्ती (Ring spot)

यह रोग वलय चित्ती विषाणु (*Carnation ring spot virus*) द्वारा होता है। इस रोग में पत्तियों पर छोटे 1–2 सेमी. के छल्ले बनते हैं, परंतु कभी–कभी संकेंद्रीय छल्ले भी दिखाई देते हैं। पत्तियां छोटी, पीली तथा कर्बुर (चितकबरी) भी हो जाती हैं। संक्रमित पौधे बौने रह जाते हैं। यह विषाणु कलम काटने वाले चाकू से फैलता है।

रोग-प्रबंधन

इस रोग का प्रबंधन निम्नलिखित प्रकार से किया जा सकता है:

- स्वस्थ पौधों से कलम तैयार करें।
- प्रयोग में आने वाले चाकू को ऐथिल अल्कोहल से उपचारित करें।
- माहू के नियंत्रण के लिए कीटनाशी दवाओं का पौधों पर छिड़काव करें।
- संक्रमित पौधों को खेत से निकालकर नष्ट कर दें।

अध्याय – 30

गेंदे के रोग (Diseases of marigold)

गेंदा *(टैजेटीज इरेक्टा – Tagetes erecta)* एक बहुत ही प्रसिद्ध फूल है। इसे उगाना बहुत आसान होने के कारण लोगों में यह बहुत प्रिय है। कम समय में ही बेचने लायक फूल के तैयार होने, फूल के आकर्षक रंग, आकार तथा काफी समय तक रहने के कारण फूल उगाने वाले को मोहित करता है। भारत में यह एक मुख्य उगाने वाला फूल है जिसका प्रयोग धार्मिक एवं समाजिक समारोहों में माला या अनेक रूप में किया जाता है। गेंदा को उगाने के लिए पौधों की ऊंची वृद्धि एवं फूल खिलने के लिए मध्यम जलवायु आवश्यक होती है। अधिक तापमान होने पर पौधे की बढ़वार रुक जाती है तथा फूलों के आकार एवं उत्पादन प्रभावित होते हैं। गेंदे के तेल से इत्र तैयार किया जाता है। पत्तियों के रस को कान में डालने पर दर्द कम हो जाता है। इसके फूल के अर्क से खून शुद्ध होता है तथा खूनी बवासीर को ठीक करता है। इसके अलावा आंखों की बीमारियों तथा व्रण (अलसर) से बचाता है। गेंदे की फसल कवकों, जीवाणुओं तथा विषाणुओं द्वारा होने वाले अनेक रोगों से प्रभावित होती है, जिससे इन फूलों का उत्पादन एवं गुणवत्ता

कम हो जाती है और फूलों का बाजार में उचित मूल्य नहीं मिल पाता। इस अध्याय में गेंदे के कुछ प्रमुख रोगों के लक्षण, रोगकारक, रोग अनुकूल परिवेश तथा उनके उचित प्रबंधन के विषय में वर्णन किया गया है।

1. फ्यूजेरियम म्लानि (Fusarium wilt)

लक्षण

इस रोग के लक्षण नर्सरी के पौधों तथा बड़े पौधों में दिखाई देते हैं। नर्सरी के पौधों में सक्रमण होने पर पौद मुरझाकर मर जाती है। बड़े पौधे भी मुरझा जाते हैं तथा कभी–कभी पीले होकर सूख जाते हैं। पुराने पौधों में संवहनी ऊतक में काली धारी बन जाती है। पौधे की जड़ें संख्या में कम हो जाती हैं तथा सड़ने लगती हैं। नम मौसम में संक्रमित तने पर कवक के बीजाणु बनते हैं।

रोगकारक एवं रोग-अनुकूल परिवेश

यह रोग, *फ्यूजेरियम ऑक्सीस्पोरम* उपजाती *कैलिस्टेफी* (*Fusarium oxysporum* f. sp. *callistephi*) नामक कवक द्वारा होता है। यह रोगकारक पौधों के अवशेषों तथा मृदा में कई सालों तक क्लैमाइडोस्पोरिडिया के रूप में उत्तरजीवी बना रहता है जो इस रोग के संक्रमण का प्रमुख स्रोत है। अनुकूल वातावरण मिलने पर कवक के बीजाणु अंकुरित होते हैं और पौधों की जड़ों को संक्रमित करते हैं।

रोग-प्रबंधन

इस रोग का प्रबंधन निम्नलिखित प्रकार से किया जा सकता है:

- गर्मियों में खेत की गहरी जुताई करें तथा 15–20 दिनों तक खुला छोड़ दें।

- संक्रमित पौधों को खेत से निकाल कर नष्ट कर दें।
- रोग के लक्षण दिखाई देने पर पौधों की जड़ों के पास मैन्कोजेब (0.2 प्रतिशत) या कॉपर ऑक्सीक्लोराइड (0.2 प्रतिशत) या कार्बेन्डाजिम (0.1 प्रतिशत) का पानी में घोल बनाकर 10 दिनों के अंतराल पर सिंचाई करें।
- गेंदे की खेती के लिए 2–3 साल का फसल चक्र अपनाएं।

2. ग्रीवा विगलन रोग (Collar rot)

लक्षण

गेंदे के पौधों में सक्रमण, भूमि से लगे हुए तने से शुरू होकर जड़ों तक जाता है। कुछ समय पश्चात जड़ें पूरी तरह सड़ जाती हैं। संक्रमण से पत्तियां मुरझाने लगती हैं तथा अंत में पौधा मर जाता है। संक्रमित भाग में कवक के छोटे–छोटे, सरसों के दाने के आकार के काले या भूरे रंग के स्क्लेरोशिया दिखाई देते हैं। संक्रमण *फाइटोफ्थोरा* या पीथियम के द्वारा होने पर सफेद कवकजाल दिखाई देते हैं।

रोगकारक एवं रोग-अनुकूल परिवेश

यह रोग पौधों में कई कवकों जैसे *राइजोक्टोनिया सोलेनी* (*Rhizoctonia solani*) *फाइटोफ्थोरा क्रीप्टेजिया (Phytophthora cryptagea) पीथियम अल्टीमम* (*Pythium ultimum*) और *स्क्लेरोशियम रॉल्फसाई* (*Sclerotium rolfsii*) द्वारा होता है। ये सभी रोगकारक पौधों के अवशेषों तथा मृदा में कवकजाल एवं स्क्लेरोशिया के रूप में उत्तरजीवी बने रहते हैं। इस रोग की वृद्धि के लिए गर्म एवं नम वातावरण सहायक होता है। अधिक सघन पौधों के रोपण करने से भी रोग का प्रभाव अधिक हो जाता है।

रोग-प्रबंधन

इस रोग का प्रबंधन निम्नलिखित प्रकार से किया जा सकता है:

- गेंदे की खेती के लिए भूमि के किसी भी भाग का प्रयोग तीन या चार वर्ष से अधिक न करें।
- पौधों की बहुत अधिक सघन रोपाई न करें।
- पौधों के पास की भूमि को कार्बेन्डाजिम (0.1 प्रतिशत) का पानी में घोल बनाकर उपचारित करें।

3. चूर्णिल आसिता (Powdery mildew)

लक्षण

प्रारंभ में पत्तियों पर छोटे–छोटे सफेद धब्बे दिखाई देते हैं, जो बाद में सफेद पाउडर की तरह पत्तियों पर फैल जाते हैं। कुछ समय पश्चात् पूरी पत्ती सफेद चूर्ण से ढक जाती है। सफेद चूर्ण के अंदर कवक के कोनिडियम एवं कवकजाल होते हैं। अधिक संक्रमण होने पर पत्तियां सिकुड़कर मुड़ जाती है तथा मुरझाने लगती है। कुछ समय पश्चात् संक्रमित पत्तियां गिर जाती हैं।

रोगकारक एवं रोग-अनुकूल परिवेश

यह रोग, *लेवील्यूला टैनरिका* (*Leveillula tanrica*) नामक कवक द्वारा होता है। यह रोगकारक मृदा में पड़े संक्रमित पौधों के अवशेषों पर उत्तरजीवी बना रहता है। यह आने वाले दूसरे साल के पौधों में संक्रमण के लिए प्राथमिक स्रोत का कार्य करता है। यह रोग अधिक गर्म एवं नम वातावरण में नहीं होता। इस रोगकारक के बीजाणु का फैलाव हवा के द्वारा होता है।

रोग-प्रबंधन

इस रोग का प्रबंधन निम्नलिखित प्रकार से किया जा सकता है:

- फसल के बचे हुए अवशेषों को खेत से निकाल कर, जला कर नष्ट कर दें।
- पौधों पर जैसे ही रोग के लक्षण दिखाई दें, घुलनशील सल्फर (500 ग्राम) या सल्फेक्स (300 ग्राम) या कार्बेन्डाजिम (50 ग्राम) का प्रति 100 लिटर पानी में घोल बनाकर छिड़काव करें।

4. जीवाणु म्लानि (Bacterial wilt)

लक्षण

इस रोग के संक्रमण के कारण पौधे छोटे रह जाते हैं तथा पत्तियां पीली होने लगती हैं। पौधे का ऊपरी भाग मुरझाने लगता है तथा बाद में पूरा पौधा समय से पहले मुरझा जाता है। पौधों के तने से गाढ़ा पदार्थ निकलने लगता है जो बदबूदार होता है। कुछ समय पश्चात् तना नरम पड़कर सड़ने लगता है। जीवाणु से होने वाले इस रोग में पौधे तेजी से मरते हैं। संक्रमित पौधे, पहले लक्षण दिखने के 7–14 दिन के अंदर ही मुरझाकर मर जाते हैं।

रोगकारक एवं रोग-अनुकूल परिवेश

यह रोग, *राल्स्टोनिया सोलेनेसियरम रेस 1* (*Ralstonia solanacearum race* ,1) नामक जीवाणु से होता है। इस जीवाणु के बीजाणु पौधों के अवशेषों तथा मृदा में 1–2 साल या अधिक साल तक जीवित शेष रहते हैं। इस रोग का फैलाव, मृदा, संक्रमित पौद, सिंचाई जल तथा खेत में काम करने वाले श्रमिकों द्वारा होता है। इस रोग की वृद्धि के लिए 20–35° सेल्सियस

तापमान अनुकूलतम है। मृदा तापमान 21° सेल्सियस से कम होने पर रोग के लक्षण नहीं दिखाई देते हैं।

रोग-प्रबंधन

इस रोग का प्रबंधन निम्नलिखित प्रकार से किया जा सकता है:

- संक्रमित पौधों को खेत से निकाल कर नष्ट कर दें।
- गेंदे के फूल की खेती एक जगह पर दो या तीन वर्ष से अधिक न करें।
- इस रोग के प्रबंधन के लिए कोई भी जीवाणुनाशी इस पर पूर्ण रूप से नियंत्रण नहीं करता। फिर भी पौधों के पास की मृदा को स्ट्रप्टोसाइक्लिन (10 ग्राम प्रति 100 लिटर पानी) का घोल बनाकर उपचारित करने से लाभ होता है।
- रोग–प्रतिरोधक क्षमता वाली किस्में उगाएं।

4. बोट्रिटिस पुष्प अंगमारी (Botrytis flower blight)

लक्षण

इस रोग के लक्षण फूलों की पंखुडियों एवं फूलों की डंठलों पर अनियमित आकार के भूरे रंग के धब्बों के रूप में दिखाई देते हैं। कलियां भूरी हो जाती हैं और जलीय धब्बे दिखाई देते हैं। संक्रमित कलियां खिल नहीं पाती हैं और बिना खिले ही नम वातावरण में गिर जाती हैं। संक्रमित भाग पर रोगकारक के कवकजाल एवं बीजाणु बहुत संख्या में धूसर रंग की बढ़वार के साथ दिखाई देते हैं।

रोगकारक एवं रोग-अनुकूल परिवेश

यह रोग *बोट्रिटिस सिनेरिया* (*Botrytis cineria*) नामक कवक से होता है। यह रोगकारक बहुत से पौधों की जातियों, विशेषकर फूल वाले पौधों कार्नेशन, गुलदाउदी, जिरनेरियम तथा पेटुनिया को संक्रमित करता है। रोगकारक कोनिडियमों के रूप में जीवित तथा मृत ऊतकों पर उत्तरजीवी बना रहता है। अनुकूल वातावरण, जैसे 85 प्रतिशत से अधिक आपेक्षिक आर्द्रता, पौधों की सतह पर स्वतंत्र जल का होना तथा 22–25° सेल्सियस तापमान, में कवक के बीजाणु अंकुरित होकर पौधेके अंदर प्रवेश करते हैं और पौधों को संक्रमित कर देते हैं।

रोग-प्रबंधन

इस रोग का प्रबंधन निम्नलिखित प्रकार से किया जा सकता है:

- गिरी हुई संक्रमित कलियों, फूलों तथा पौधों के सभी भागों को खेत से निकाल कर नष्ट कर दें।
- गेंदा की फसलों की सिंचाई फुव्वारा विधि से न करें।
- पौधों पर कवकनाशी दवाओं जैसे थायोफेनेट मेथिल (0. 2 प्रतिशत), कोसाइड (0.1 प्रतिशत), मैंकोजेब (0.25 प्रतिशत), क्लोरोथैलोनिल (0.1 प्रतिशत), एजोक्सीस्ट्रोबीन, आइप्रोडियोन आदि का आवश्यकतानुसार छिड़काव करें।

अध्याय – 31

गुलदाउदी के रोग

(Diseases of chrysanthemum)

गुलदाऊदी *(क्राइसेन्थेमम जाति– chrysanthemum* spp.) एक लोकप्रिय शोभाकारी फसल है तथा गुलाब के बाद इसका विश्व में महत्वपूर्ण स्थान है। इसकी खेती सुंदरता के लिए तथा व्यापारिक प्रयोजन के लिए की जाती है। गुलदाउदी से कर्तित पुष्प को सबसे अच्छा माना जाता है जो 7–10 दिन तक अच्छी अवस्था में रह सकता है। इसकी खेती भारत में सबसे अधिक कर्नाटक राज्य में की जाती है। इसके बाद तमिलनाडु, आध्र प्रदेश, महाराष्ट्र, राजस्थान तथा बिहार आते हैं। इसमें विभिन्न आकार एवं रंग के फूल खिलते हैं। इसके फूल के उत्पादन एवं गुणवत्ता पर रोगों का बहुत बुरा प्रभाव पड़ता है। गुलदाउदी के प्रमुख रोगों एवं उनका प्रबंधन का वर्णन नीचे किया गया है।

1. तना एवं जड़ विगलन रोग (Stem and root rot)

लक्षण

पौधशाला में पौधे तने के आधार से सड़ने लगते हैं तथा

प्रभावित पौधे छोटे रह जाते हैं। अगर तने पर घाव हों तो स्थापित पौधों पर भी कवक संक्रमण करता है जिससे पौधे अचानक मुरझाने लगते हैं। राइजोक्टोनिया कवक प्रमुख रूप से भूमि की सतह से पौधे पर आक्रमण करता है, जिससे तने के संक्रमित भाग पर हल्के भूरे रंग के कवक के कवकजाल भी दिखाई देते हैं। पीथियम के संक्रमण में जड़े किनारों से सड़ने लगती हैं। जड़ें भूरे या काले रंग में परिवर्तित होने लगती हैं तथा संक्रमित पौधे का अधिकतर भाग काला पड़ने लगता है। अंततः जड़ें पूरी तरह से नष्ट हो जाती हैं और पौधा सूख जाता है।

रोगकारक एवं रोग-अनुकूल परिवेश

यह रोग, *पीथियम जातियों* (*Pythium* spp.) एवं *राइजोक्टोनिया* जातियों (*Rhizoctonia* spp.) आदि कवकों के द्वारा होता है। ये दोनों प्रकार के कवक पौधों के अवशेषों तथा मृदा पर उत्तरजीवी बने रहते हैं। कवक के बीजाणु जल या मृदा द्वारा फैलते हैं। इस रोग की वृद्धि अधिक नमी तथा गर्म तापमान पर अधिक होती है।

रोग-प्रबंधन

इस रोग का प्रबंधन निम्नलिखित प्रकार से किया जा सकता है:

- पौद लगाने से पहले भूमि का उपचार करें।
- भूमि का उपचार सौर ऊर्जा से पारदर्शी पॉलिथीन सौर्यन की सहायता से या फार्मेलीन (5 प्रतिशत) या 1 भाग फार्मेलीन + 7 भाग पानी से किया जा सकता है।
- भूमि की थीरम या डायथेन एम– 45 (0.25 प्रतिशत) का घोल बनाकर समय–समय पर सिंचाई करें।

- प्रभावित पौधों के अवशेषों को खेत से निकालकर नष्ट कर दें।

2. तना विगलन व म्लानि (Stem rot and wilt)

लक्षण

इस रोग के लक्षण कलियों के फूलने के बाद दिखाई देते हैं। लेकिन पौधों में संक्रमण कलम की जड़ों के उगने के समय ही हो जाता है। इस रोग के संक्रमण के प्रभाव से पौधे छोटे रह जाते हैं तथा तने का भूमि के पास का भाग गहरे भूरे रंग का हो जाता है और सूखने लगता है। पौधे में संवहनी ऊतक गहरे भूरे रंग के हो जाते हैं तथा पौधे के निचले हिस्से के पत्ते पीले पड़ने लगते हैं। अंत में पौधा पूरी तरह से मुरझा जाता है।

रोगकारक एवं रोग-अनुकूल परिवेश

यह रोग, *फ्यूजेरियम ऑक्सीस्पोरम* (*Fusarium oxysporum*) नामक कवक से होता है। यह कवक संक्रमित पौधों के अवशेषों तथा मृदा में क्लैमाइडोस्पोरों तथा बीजाणु के रूप में काफी समय तक उत्तरजीवी बना रहता है। इसके बीजाणु हवा, धूल एवं वर्षा द्वारा फैलते हैं। जड़ की उपस्थिति में क्लैमाइडोस्पोर एवं बीजाणु अनुकूल परिस्थिति मिलने पर अंकुरित होते हैं और रोगग्राही पाधों की जड़ों को संक्रमित कर देते हैं। कवक जाइलम में प्रवेश करते हैं और ऊपर की तरफ फैलकर संवहनी ऊतकों की नलिका को बंद कर देते हैं जिससे जल का बहाव जड़ से पौधे के अन्य भागों में नहीं पहुंच पाता है। इस रोग की वृद्धि अधिक तापमान (लगभग 30° सेल्सियस) पर अधिक होती है।

रोग-प्रबंधन

इस रोग का प्रबंधन निम्नलिखित प्रकार से किया जा सकता है:

- संक्रमित पौधों को उखाड़कर नष्ट कर दें।
- भूमि को अच्छी तरह से सफेद पारदर्शी पॉलिथीन (100 गेज मोटी) द्वारा सौर ऊर्जा से 4 से 5 सप्ताह तक या फार्मेलीन (1 भाग फार्मेलीन + 7 भाग पानी) से उपचारित करें।
- प्रभावित पौधों के आसपास की भूमि को मैन्कोजेब (0.25 प्रतिशत) या कार्बेन्डाजिम (0.1 प्रतिशत) का घोल बनाकर सिंचाई करें।
- पौधों को खेत में लगाने से पहले उनकी जड़ों को कार्बेन्डाजिम (0.1 प्रतिशत) के घोल में 30 मिनट तक डुबाकर उपचारित करें।

3. चूर्णिल आसिता (Powdery mildew)

लक्षण

प्रारंभ में रोग के लक्षण पत्तियों की ऊपरी सतह एवं कोमल टहनियों पर कवक की सफेद या स्लेटी रंग की चूर्णिल बढ़वार दिखाई देती है जिसके उपरांत संक्रमित पत्तियां भूरी होकर विकृत हो जाती हैं और फिर सूख कर गिर जाती हैं। संक्रमित पौधे बौने रह जाते हैं और उनमें फूल भी नही लगते हैं।

रोगकारक एवं रोग-अनुकूल परिवेश

यह रोग, *ऑइडियम क्राइसेन्थेमी* (*Oidium chrysanthemi*) नामक कवक से होता है। ये रोगकारक जीवित पौधों पर उत्तरजीवी बने रहते हैं, लेकिन संक्रमित पौधों के अवशेषों पर क्लिस्टोथिसिया

के रूप में उत्तरजीवी होते हैं जो इस रोग के संक्रमण के प्राथमिक स्रोत है। इसके बीजाणु हवा द्वारा एक स्थान से दूसरे स्थान तक पहुंचते हैं और पौधों में द्वितीयक संक्रमण करते हैं। इस रोग के विकास के लिए गर्म दिन एवं ठंडी रातें तथा मध्यम तापमान (25–30° सेल्सियस) सहायक होते हैं। चूर्णिल आसिता रोग के विकास एवं फैलाव के लिए सूखी अवस्था, सघन पौधे, खराब हवा का आवगमन तथा कम प्रकाश आदि कारक उत्तरदायी होते हैं।

रोग-प्रबंधन

इस रोग का प्रबंधन निम्नलिखित प्रकार से किया जा सकता है:

- पौधों को उचित दूरी पर लगाएं तथा उनमें हवा का आवागमन सुचारु रूप से हो
- वातावरण को शुष्क रखें।
- पौधों पर डाइमकैप (1.0 मिली.) या थायोफैनट मेथिल या कार्बेन्डाजिम या बेनलेट (1.0 ग्राम) या घुलनशील सल्फर (2.5 ग्राम) का प्रति लिटर पानी में घोल बनाकर 7–10 दिनों के अंतराल पर छिड़काव करें। इसके अतिरिक्त माइक्लोब्युटेनील और पेनकोयजोल कवकनाशी का भी प्रयोग किया जा सकता है।

4. धूसर फफूंदी अंगमारी (Gray mould blight)

लक्षण

इस रोग के लक्षण पौधों पर पौधशाला से लेकर, फूल बेचने तक किसी भी समय दिखाई देते हैं। संक्रमित पौधे के तने के आधार का भाग पूरी तरह से नष्ट हो जाता है। पत्तियों पर धूसर रंग के धब्बे बनते हैं जो किनारों से अंदर की तरफ बढ़ते हैं।

फूलों पर संक्रमण होने पर पंखुडियों पर भूरे रंग के जलीय धब्बे बनते हैं जिससे फूलों की गुणवत्ता पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है।

रोगकारक एवं रोग-अनुकूल परिवेश

यह रोग, *बोट्रिटिस सिनेरिया* (*Botrytis cineria*) नामक कवक से होता है। यह रोगकारक संक्रमित पौधों के अवशेषों तथा दूसरे पोषक पौधों पर जीवित शेष रहता है। यह कवक स्वस्थ हरे ऊतकों पर तब तक आक्रमण नहीं करता जब तक कोई घाव या मृत क्षेत्र न हो, या सीधे गिरी हुई पत्तियों एवं पंखुड़ियों पर वृद्धि करता है। यह कवक पहले पौधों के अवशेषों पर वृद्धि करता है, फिर स्वस्थ पौधों को संक्रमित करता है। अधिक आपेक्षिक आर्द्रता की उपस्थिति में कवक संक्रमित ऊतकों पर बीजाणु पैदा करता है। ये बीजाणु हवा द्वारा एक स्थान से दूसरे स्थान पर पहुंचते हैं। बीजाणु नमी की उपस्थिति में अंकुरित होते हैं और पौधे को संक्रमित कर देते हैं। नम वातावरण एवं पौधां के घने होने पर रोग की तीव्रता बढ़ जाती है।

रोग-प्रबंधन

इस रोग का प्रबंधन निम्नलिखित प्रकार से किया जा सकता है:

- पौधों के बीच का फासला अधिक रखें ताकि हवा अच्छी तरह से प्रवाहित हो सके और पौधों के आसपास का वातावरण नम न हों।
- पुराने पौधे से फूलों को अलग करके पौधों को नष्ट कर दें।
- संक्रमित पौधों एवं उनके अवशेषों को खेत से निकाल कर नष्ट कर दें।
- पौधों पर कैप्टाफ (1.0 ग्राम) या थीरम (3.0 ग्राम) का

प्रति लिटर पानी में घोल बनाकर 15 दिन के अंतराल पौधों पर 2 से 3 छिड़काव करें।

5. रतुआ (Rust)

लक्षण

इस रोग में पत्तियों की निचली सतह पर स्फोट बनते हैं जो शुरू में हल्के पीले रंग के होते हैं और बाद में भूरे रंग के हो जाते हैं। इन स्फोटों के एकदम ऊपर पत्तों की ऊपरी सतह थोड़ी धंसी हुई होती है और आसपास के क्षेत्र अपेक्षाकृत हल्के रंग के होते हैं। इस रोग की तीव्रता बढ़ने पर पत्तियों का अधिकांश भाग खराब हो जाता है तथा पत्तियां बाद में गिर जाती हैं एवं फलों का उत्पादन कम हो जाता है। *पक्सिनिया होरियाना* द्वारा पत्तियों की निचली सतह पर सफेद रंग के स्फोट दिखाई देते हैं तथा ऊपरी सतह पर हल्के हरे से पीले रंगे के धब्बे बनते हैं। शुरू में गठे हुए मोमी गुलाबी रंग के स्फोट बनते हैं जो बाद में कवक के बीजाणु पैदा होने पर, सफेद रंग में बदल जाते हैं।

रोगकारक एवं रोग-अनुकूल परिवेश

यह रोग *पक्सिनिया क्राईसैन्थेमी* (*Puccinia chrysanthemi*) तथा *प. होरियाना* (*P. horiana*) नामक कवकों से होता है। *प. होरियाना* टिलियोस्पोरों के रूप में गुलदाउदी के पौधों पर उत्तरजीवी बने रहते हैं। टिलियोस्पोर जो पत्तियों के स्फोट में होते हैं, अंकुरित होकर बेसिडियम बीजाणु पैदा करते हैं। ये बेसिडियम बीजाणु हवा द्वारा फैलते हैं तथा अंकुरित होकर जनन–नलिका से पौधों की पत्तियों में प्रवेश करके उसे संक्रमित करते हैं। *प. क्राइसैन्थेमी* संभवतः यूरेडोस्पोरों या कवकजाल के रूप में पुरानी पत्तियों पर उत्तरजीवी बना रहता है। इस रोग के विकास के लिए ठंडा, नमीयुक्त मौसम सहायक होता है।

रोग-प्रबंधन

इस रोग का प्रबंधन निम्नलिखित प्रकार से किया जा सकता है:

- रोगग्रस्त भागों को काट कर जला दें।
- पौधों पर मैन्कोजेब (2.5 ग्राम प्रति लिटर पानी), क्लोरेथैलोनील (2.0 ग्राम) या कापर ऑक्सीक्लोराइड (3.0 ग्राम), कैरोथेन (0.25 प्रतिशत) का 10 से 14 दिनों के अंतराल पर छिड़काव करें।

6. जीवाणुज अंगमारी (Bacterial blight)

लक्षण

इस रोग के सबसे पहले लक्षण के रूप में पौधों की कुछ-एक टहनियां मुरझाने लगती हैं जो रात में पूर्वावस्था में आ जाती है। बाद में, तने की चोटी भूरी हो जाती है, और सख्त होकर नष्ट हो जाती है। तनों की मज्जा जेली की तरह हो जाती है तथा बीच से खोखली हो जाती है। जिसके ऊपर भूरे रंग की धारियां अधार की तरफ जाती हुई दिखती हैं। संक्रमित मज्जा छोटी रह जाती है तथा कानी होकर मर जाती है।

रोगकारक एवं रोग-अनुकूल परिवेश

यह रोग, *इर्विनिया क्राईसैन्थेमी* (*Erwinia chrysanthemi*) नया नाम : डिकिया डैडेन्टी (Dickeya dadantii) नामक जीवाणु से होता है। ये जीवाणु मृदा, संक्रमित पौधों के अवशेषों तथा खरपतवारों पर उत्तरजीवी बने रहते हैं। अधिक तापमान (26–32° सेल्सियस), एवं अधिक आपेक्षिक आर्द्रता, एवं स्वतंत्र जल आदि इसके फैलाव में सहायता करें।

रोग-प्रबंधन

इस रोग का प्रबंधन निम्नलिखित प्रकार से किया जा सकता है:

- भूमि का फार्मेलीन या सौर ऊर्जा सौर्यन से उपचार करें।
- रोगरहित कलमों का ही उपयोग करें।
- कलमों के कटे हुए भागों को स्ट्रेप्टोसाइक्लिन (100 मिग्रा. लिटर पानी में) का घोल बनाकर उपचारित करें।

7. जीवाणु पर्ण चित्ती (Bacterial leaf spot)

लक्षण

इस रोग के लक्षण पत्तियों पर गोल या अंडाकार छोटे गहरे भूरे से काले रंग के धब्बे के रूप में दिखाई देते हैं। धब्बे बाद में, आपस में मिलकर बड़े धब्बे बनाते हैं। रोग के लक्षण सर्वप्रथम निचली पत्तियों पर दिखाई देते हैं जो धीरे–धीरे ऊपर की ओर बढ़ते हैं और कलियों को भी संक्रमित कर देते हैं। बाद में ये धब्बे भंगुर होकर फट जाते हैं। यह रोग गमले के एक तरफ के पौधों में फैलता है।

रोगकारक एवं रोग-अनुकूल परिवेश

यह रोग *स्यूडोमोनास सिकोराई* (*Pseudomonas cichorii*) नामक जीवाणु से होता है। यह जीवाणु गुलदाउदी के अलावा लगभग 60 अन्य पौधों, जैसे सब्जियों तथा शोभाकरी पौधों को भी संक्रमित करता है। इसके अलावा यह संक्रमित पौधों के अवशेषों पर उत्तरजीवी बना रहता है। यह जीवाणु वर्षा की बूंदों तथा वर्षा के झोकों से एक स्थान से दूसरे स्थान पर पहुंचता है। इस रोग के विकास के लिए, अधिक आपेक्षिक आर्द्रता एवं लंबे समय तक

पत्तियों पर स्वतंत्र जल की उपस्थिति सहायक होती है।

रोग-प्रबंधन

इस रोग का प्रबंधन निम्नलिखित प्रकार से किया जा सकता है:

- रोपाई हेतु रोगरहित कलमों का ही चयन करें।
- संक्रमित पौधों के अवशेषों को खेत से निकाल कर नष्ट कर दें।
- पौधों के बीच से सही ढंग से हवा का आवागमन सुनिश्चित करें।
- वर्षा के मौसम में स्ट्रेप्टोसाइक्लिन (100 मिग्रा. प्रति लिटर पानी) का घोल बनाकर पौधों पर छिड़काव करें।

8. गुलादाउदी के विषाणु-जनित रोग

गुलदावदी में विषाणु एवं विषाणुभ (वायरायड) जनित रोग भी लगते हैं। इनमें अबीजाणुता (एस्पर्मी) और स्पॉटेड म्लानि रोग तथा विषाणु द्वारा क्लोरोटिक मोटेल एवं विषाणुभ स्टंट रोग शामिल हैं, जिनका वर्णन नीचे दिया गया है।

(अ) अबीजता विषाणु रोग (Aspermy)

यह रोग टोमैटो अबीजता विषाणु (*Tomato aspermy virus*) नामक विषाणु द्वारा होता है। इस रोग से प्रभावित पौधे के फूल विकृत हो जाते हैं तथा पौधे छोटे रह जाते हैं। गुलाबी, लाल तथा कांस रंग के फूलों का रंग एक समान नही होता है लेकिन पत्तियों पर रोग के स्पष्ट लक्षण दिखाई नहीं देते हैं, जबकि कुछ जातियों में रोग, लक्षण–रहित होते है। इस रोग के विषाणु लाही (एफिड) के अलावा, खेत में काम करते समय, प्रयोग में आने वाले औजारों तथा वानस्पतिक संवर्धन द्वारा भी स्थानांतरित होते हैं।

(ब) चित्तीदार म्लानि रोग (spotted wilt)

यह रोग टमाटर के चित्तीदार म्लानि विषाणु इम्पेशिएन्ट्स ऊतकक्षयी चित्तीदार म्लानि विषाणु (*Impatients necrotic spotted wilt virus)* नामक विषाणुओं द्वारा होता है। इस रोग के लक्षण प्रायः पौधे में एक तरफ दिखाई देते हैं। गुलदाउदी की कुछ जातियों में पत्तियों पर छल्ले बन जाते हैं। पत्तियां विकृत हो जाती हैं तथा काले ऊतकक्षय के लक्षण दिखाई देते हैं। तने पर गहरे ऊतकक्षयी हो जाते हैं। यह विषाणु रसाद (थ्रिप्स) के आलावा प्रयोग में आने वाले चाकू से भी स्थनांतरित होता है। यह गुलदाउदी के अलावा डहेलिया तथा अन्य पौधों पर जीवित शेष रहता है।

(स) गुलदाउदी का स्तंभन (hrysanthemum stunt

यह रोग गुलदाउदी के स्तंभन विषाणुभ (*Chrysanthemum stunt viroid*) के द्वारा होता है। इस विषाणुभ (वायरायड) के संक्रमण से पौधे छोटे रह जाते हैं, पत्तियां पीली, सीधी रहती हैं तथा किनारे आकार में नहीं बढ़ते जिससे पत्ते सख्त दिखाई देते हैं। फूल छोटे रह जाते हैं एवं वे लाल या कांसे रंग के हो जाते हैं और समय से 7–10 दिन पहले खिल जाते हैं। विषाणुभ घाव के माध्यम से चाकू या वानस्पतिक संवर्धन आदि से फैलता है।

(द) हरिमाहीन कर्बुर (Chlorotic mottle)

यह रोग गुलदाउदी के हरिमाहीन कर्बुर विषाणुभ (*Chrysanthemum* chlorotic mottle viroid) के द्वारा होता है। इस रोग में पहले पत्तियां चितकबरी तथा बाद में पूर्ण रूप से पीली हो जाती हैं। अक्सर इस रोग के विषय में पोषक तत्वों की कमी के लक्षण से भ्रम पैदा हो जाता है। तापमान 20° सेल्सियस के

लगभग होता है तो इस रोग के लक्षण स्पष्ट दिखाई नहीं देते। यह रोग खेत में काम करते समय प्रयोग में आने वाले औजारों तथा वानस्पतिक संवर्धन द्वारा फैलता है।

रोग-प्रबंधन

विषाणु–जनित रोगों का प्रबंधन निम्नलिखित प्रकार से किया जा सकता है:

- प्रभावित पौधों की काट–छांट करने के लिए जो औजार उपयोग किए जाते हैं उनका स्वस्थ पौधों पर प्रयोग न करें या उन्हें कीटाणुरहित करने के बाद ही प्रयोग करें।
- स्वस्थ पौधों का रोपण करें।
- विषाणुओं के संक्रमण के रोकथाम के लिए ऊपर-लिखित प्रबंधन-उपायों के अतिरिक्त रोगवाहक कीटों की रोकथाम के लिए कीटनाशी रसायनों का प्रयोग करें।

संदर्भ साहित्य (References)

- **Agrios, H.N. (2005).** *Plant Pathology*. Elsevier Academic Press, New York, 922 pp.
- **Blancard, D. (1992).** *Tomato Diseases* Wolfe Publishing Ltd., 212 pp.
- **Blancard, D., Lecoq, H. and Pitrat, M. (1991).** *Cucurbit Diseases*. Manson Publishing, London, 299 pp.
- **Brandes, G.A., Cordero, T. M. and Skiles, R.I. (1959).** *Compendium of Plant Diseases.* Rohan & Company Philadelphia, 264 pp.
- **Chaube, H.S. and Pundir, V. S. (2005).** *Crop Diseases and their Management.* Prentice hall of India Pvt. Ltd., New Delhi, 703 pp.
- (गुमनाम) (2012) सब्जी फसल उत्पादन की तकनीकियां (2012)। शाकीय विज्ञान संभाग एवं कृषि प्रौद्योगिकी सूचना केन्द्र भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली, 55 पन्ने।
- **Gupta, S. K. and Thind, T. S. (2006).** *Disease Problems in Vegetable Production.* Scientific Publishers (India), P.O. Box 91, Jodhpur, 576 pp.
- **Janse, J.D. (2006).** *Phytobacteriology: Principle and Practice.* CABI Publishing Wallingford Oxfordshire OX108DE, U.K, 360 pp.
- **Naqvi, S.A.M. H. (2004)** *Diseases of Fruits and Vegetables.* Vol. II. Kluwer Academic Publishers, The Netherlands, 686 p.

- **Pathak, V. N. (1988).** *Diseases of Fruit Crops.* Oxford and IBH Publishing Co., New Delhi, 319 pp..
- **Singh, R.S. (1997).** *Plant Diseases*. Oxford and IBH Publishing Co., New Delhi., 319 pp..
- **Singh R.S. (1986).** *Diseases of Vegetable Crops.* Oxford and IBH Publishing Co., New Delhi 362 pp..
- Singh S. J. (1996). *Advances in Diseases of Fruit Crops in India.* Kalyani Publishers. Ludhiana, 491 pp.
- **शर्मा, आर० के० एवं दीबा कामिल (2011)**. मशरूम उत्पादन। पादप रोगविज्ञान संभाग, भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली – 110012, पृष्ठ 101
- **शोभनाथ विश्वकर्मा (2009).** फलों के रोग, वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग, मानव संसाधन विकास मंत्रालय, भारत सरकार, 172 पृष्ठ।
- **शोभनाथ विश्वकर्मा (2011)**. सब्जियों के प्रमुख रोग एवं उनका प्रबंधन, वैज्ञानिक तथा शब्दावली आयोग, मानव संसाधन विकास मंत्रालय, भारत सरकार, 210 पृष्ठ।
- **Tewari, A. N. (2000).** *Identification of Plant Diseases and their Control* (Field Diagnosis Manual). G. B. Pant University of Agriculture and Technology, Pantnagar, U.S. Nagar, Uttarakhand, 88 pp.
- **Verma, L. R. and Sharma, R. C. (1999).** *Diseases of Horticultural Crops.* Indus Publishing Co., New Delhi, 724 pp.

परिशिष्ट – 1

बागवानी फसलों के रोगों के प्रबंधन के लिए प्रयोग में आने वाले प्रमुख कृषि रसायन

क्र. स.	सामान्य नाम	व्यापारिक नाम	दर	प्रयोग विधि	उपयोगिता
कवकनाशी एवं जीवाणनाशी					
1.	गंधक–धूल (चूर्ण)	गंधक–धूल (चूर्ण) / सल्फर डस्ट	20–30 किग्रा. / हे.	बुरकाव	चुर्णिल आसिता रोगों के लिए
2.	घुलनशील गंधक	सल्फेक्स माइक्रोसल	2.0–2.5 किग्रा. / हे.	छिड़काव	चुर्णिल आसिता रोगों के नियंत्रण के लिए
3.	जाइरैम	कोरोजेट, जाइराइड, हेक्साजिर, क्यूमान–एल	2.0–2.5 किग्रा. / हे.	छिड़काव	आलू व टमाटर के झुलसा रोग, कद्दूवर्गीय सब्जियों में श्यामव्रण आदि रोगों के लिए।

4.	मैंकोजेब	एन्डोफिन एम–45, डायथेन एम–45, डिफेन्ड एम–45, एम गार्ड – 45	2.0–2.5 किग्रा. /हे.	छिड़काव	आलू तथा टमाटर के झुलसा रोग, पर्णचित्ती, प्याज का बैंगनी धब्बा रोग, गोभीवर्गीय फसलों का काली पर्णचित्ती रोग, गाजर का झुलसा रोग, अरबी का झुलसा रोग, गोभीवर्गीय फसलों का श्वेत किट्ट रोगमृदुरोमिल आसिता रोग (सभी सब्जियों में) मटर का किट्ट रोग
5.	जिनेब	डायथेन जेड–78 हेक्साथेन	2.0–2.5 किग्रा. /हे.	छिड़काव	मैंकेजेब के समान।

6.	थइरैम	थइरैम, हैक्साथीर थाइराइड	2.5 किग्रा. बीज 25 – 30 किग्रा. /हे.	बीजोपचार बुरकाव	बीज व मृदा उपचार में प्रयोग होता है। स्क्लेरोटिनिया रोग के नियंत्रण तथा पौधशाला में मृदा के उपचार के लिए।
7.	रिडोमिल एम. जेड.–72 (मैंकोजेब + मेटालेक्सिल)	रिडोमिल एम.जेड. – 72 मैटको	2.5 किग्रा. /हे.	छिड़काव	आलू एवं टमाटर के झुलसा रोग, अदरक का प्रकंद गलन रोग, मृदुरोमिल आसिता हेतु।
8.	मेटालेक्सिल	एप्रॉन 35 डब्ल्यू. एस.	3.4 किग्रा. /हे. बीज	बीजोपचार	मुदुरोमिल आसिता हेतु।
9.	कॉपर आक्सीक्लोराइड	ब्लाइटॉक्स –50, फाइटोलान ब्लू, कॉपर–50	3 ग्रा./ किग्रा. बीज या कंद 0.3 प्रतिशत	बीजोपचार बुरकाव	अदरक, हल्दी एवं अरबी के कंदो को उपचारित करने में प्रयोग किया जाता है। सभी सब्जियों के बीजोपचार हेतु

10.	वैपाम (एम. एस.डी.सी.)	वैपाम	1.5–2.5 लिटर / 10 वग्र मीटर क्षेत्र	मुदा उपचार	पौधशाला में मृदावासी रोगजनक कवक, गोलकृमि के नियंत्रण के लिए।
11.	कैप्टॉन आर्थोसाइड	हेक्साकैप	2.5 ग्रा. /कि.ग्रा. बीज, 0.2 प्रतिशत 30.0 किग्रा. /हे.	बीजोपचार छिड़काव बुरकाव	सभी सब्जियों के बीजोपचार एवं कई पर्णचित्ती रोगों में लाभकारी है। मृदा रोगजनक की रोकथाम में भी लाभकारी है।
12.	क्लोराथैलोनिल	कवच, डेकोनिल	0.25 प्रतिशत	छिड़काव	एल्टर्नेरिया पर्णाचित्ती तथा अन्य बहुत से अन्य रोगो के लिए।
13.	डिनाकैप	कैराथेन	0.06 प्रतिशत	छिड़काव	सभी सब्जियों के चूर्णिल आसिता रोग हेतु।

14.	थायोफेनेट	सर्कोबीन एम टाप्सीन एम	0.05–1.5 प्रतिशत	छिड़काव	चूर्णिल आसिता स्क्लेरोटिनिया, तना एवं फल सड़न रोग हेतु।
15.	ट्राइडेमार्फ	कैलिक्सीन	0.05–0.1 प्रतिशत	छिड़काव	चूर्णिल आसिता रोग
16.	ट्राइडेमेफान	बेलेटान	1–2 ग्रा./ किग्रा. बीज. बीज	बीजोपचार	सभी सब्जियों में बीजोपचार
17.	बेनोमिल	बेनलेट	1 ग्रा./ किग्रा. बीज., 15 – 20 किग्रा./हे.	बीजोपचार मृदा उपचार	बीजोपचार, मृदावासी रोग जनक विशेष रूप से फ्यूजेरियम म्लानि रोग में लाभकारी।
18.	कार्बेन्डाजिम	बेविस्टीन, डेरोसाल बेनगार्ड, जैकेस्टीन	1–2 ग्रा./ किग्रा. बीज., 0.5 – 1.0 किग्रा./हे.	बीजोपचार, छिड़काव	सभी सब्जियों में बीजापचार तथा फामोप्सिंस रोग, फामोप्सिस फल विगलन तथा स्क्लेरोटिनिया तना एवं फल विगलन रोग हेतु

19.	कार्बाक्सिन	वाइटावैक्स 75 प्रतिशत डब्ल्यू. पी.	2.5 ग्रा / किग्रा. बीज	बीजोपचार	बीजापचार में लाभप्रद।
20.	कोन्टाफ	हेक्साकोनेजोल	1 लिटर / हे.	छिड़काव	रतुआ रोग
21.	ब्लीचिंग पाउडर	कैल्सियम हाइपोक्लोराइड	25 किग्रा. / हे.	बुरकाव	जीवाणुज तना सड़न रोग
22.	स्ट्रेप्टोसाइक्लिन	स्ट्रेप्टोसाइक्लिन	50–200 मिग्रा / लिटर	छिड़काव	जीवाणुज रोगों की रोकथाम में लाभकारी।
कीटनाशी					
23.	डाइमेथोएट	रोगर, मिलगार्ड, साइगान	0.1 प्रतिशत	छिड़काव	पत्ती चूसने वाली कीटों के लिए, जैसे ऐफिड, जैसिड, सफेद मक्खी आदि।
24.	ऑक्सीमेथिल डिमेटान	मेटासिस्टॉक्स	0.1 प्रतिशत	छिड़काव	पत्ती चूसने वाली कीटों के लिए, जैसे लाही (ऐफिड), जैसिड, सफेद मक्खी आदि।

25.	एन्डोसल्फान	थायोडान, इन्डोसेल	0.1–0.2 प्रतिशत	छिड़काव	काटने एवं चबाने वाले कीटों के लिए, जैसे इल्ली, भृंग तथा तना एवं फल वेधक आदि।
26.	कार्बारिल	सेविन, किलेक्स, कार्बारिल	0.1 – 0.2 प्रतिशत	छिड़काव	काटने एवं चबाने वाले कीटों के लिए, जैसे इल्ली, भृंग तथा तना एवं फल वेधक आदि।
27.	मोनोक्रोटोफॉस	नुवाक्रान	0.1 प्रतिशत	छिड़काव	काटने एवं चूसने वाले कीटों के लिए।
28.	फॉस्फोमिडान	डिमेक्रान	0.05 प्रतिशत	छिड़काव	चुसने वाले कीटों के लिए।
29.	कार्बोफ्यूरान	फुराडान –3जी	1–2 ग्रा. / वर्ग मीटर	बुरकाव	काटने वाले कीटों के लिए।
30.	फोरेट	थायमेट 10जी	1–1.5 ग्रा. / वर्ग मीटर	बुरकाव	काटने वाले कीटों के लिए।
31.	डाइक्लोरवास	नूवान	0. 05–0. 1	छिड़काव	काटने एवं चबाने वाले कीटों के लिए।

परिशिष्ट – 2

बागवानी फसलों के रोगों के प्रबंधन के लिए प्रयोग में आने वाले जैविक कवकनाशी एवं जीवाणुनाशी।

1.	ट्राइकोडर्मा हार्जिनियम	पंत बायोकंट्रोल एजेंट–1	5–10 ग्रा. / किग्रा. बीज 10 ग्रा. / लि पानी 2.5 किग्रा. / 250 किग्रा गोबर की खाद / हे.	बीजोपचार पौधे उपचार मृदा उपचार	बीजजनित व मृदाजनित रोगों की रोकथाम हेतु। सब्जियों में बीजजनित रोगों की रोकथाम हेतु। मृदा उपचार हेतु।
2.	स्यूडोमोनास फ्लोरिसेन्स	पंत बायोकंट्रोल एजेंट–2	यथोपरि		तदैव
3.	ट्राइकोडर्मा हार्जिनियम + स्यूडोमोनास फ्लोरिसेन्स	पंत बायोकंट्रोल एजेंट–3	यथोपरि		तदैव

4.	ट्राइकोडर्मा विरिडि	बायोगार्ड ट्राइकोगार्ड	5–10 ग्रा./ किग्रा.	बीजोपचार	बीजजनित व मृदाजनित रोगों की रोकथाम हेतु।
5.	ट्राइकोडर्मा हार्जिनियम + स्यूडोमोनास विरिडि	बायोगार्ड ट्राइकोगार्ड	यथोपरि		तदैव

हिन्दी–अंग्रजी शब्दावली

अंकुरण	sprouting, germination
अंगमारी	blight
अंडधानी	oogonium
अंतः कोशिकीय	intracellular
अंतर्वेश, अंतर्विष्ट	inclusion
अंतर्वेशी	intercalary
अंतस्थ कलिका	terminal bud
अंसक्राम्य	Immune
अक्षीय	axial
अग्र	apex, tip
अग्र अंगमारी	tip blight
अति सघन खेती	over intensive cultivation
अति सिंचाई	over irrigation
अतिपक्व	overripe
अतिरिक्त, सहायक, गौण	accessory
अतिवृद्धि	hypertrophy
अधःकुंचन	epinasty
अधोभूमिक	hypogeal

अधोवृद्धि	hyponasty
अनियत पर्णचित्ती	irregular leaf spot
अनुप्रयोग	application
अनेकधा सस्यन	multiple cropping
अन्योन्य क्रिया	interaction
अपघटन	decomposition
अपसामान्य (असाधारण)	abnormal
अपाक्ष	dorsal
अम्लीय मृदा	acidic soil
अलैंगिक जनन	asexual reproduction
अवपंकी	Slimy
अवशिष्ट प्रभाव	residual effect
अवांछित का निष्कासन, अपवांछन	roguing
अवांछित पौधा	rogue plant
अवायवी अपघटन	anaerobic decomposition
अवायवी जीवाणु	anaerobic bacteria
अवायवीय, अनाक्सीय	anaerobic
अवायुजीव, अनाक्सीजीव	anaerobe
अविकल्पी	obligate
अविकल्पी परजीवी	obligate parasite
अवृंत	sessile

अष्ठिल फल	stone fruit
आतपदाह, द्रवदाह	scald
आपतन	incidence
आपेक्षिक आद्रता	relative humidity
आमासी, (शल्क)कंद	pseudo bulb
आयतरूप, दीर्घायत	oblong
आर्द्रगलन रोग	damping off disease
आर्द्रता	humidity
आवरण	coat
आवास, पर्यावास	habitat
आसन्न, संलग्न, निकटवर्ती	adjacent
उत्कृष्ट पदार्थ	quality product
उत्तरजीविता	survival
उत्परिवर्तन	mutation
उद्‌वर्ध	outgrowth
उद्‌वर्धन	enation
उन्मूलन	eradication
उपचार	remedy
उपनिवेशन	colonization
ऊतकक्षय	necrosis
ऊतकक्षयी लक्षण	necrotic symptom

ऊतकक्षयी वलय	necrotic ring
एकधा–सस्यन	monoculture
एकबीजपत्री	monocotyledon
एकबीजाणुता	monosporangia
एकांतर	alternate
एसर्बुलस	acervulus
एसीडियम बीजाणु, एसीडियोस्पोर	aecidiospore
ऐन्थ्रैक्नोज, श्यामव्रण	anthracnose
ऐस्कस बीजाणु	ascospore
कंड	smut
कंद	tuber
कंदवर्गीय शाक	root vegetables
कंपोस्ट	compost
कच्छु	scab
कज्जल	soot
कज्जली दाग	sooty blotch
कर्बुरन	mottling
कलिका अंगमारी	bud blight
कलिका, कली	bud
कवकज़ाल	mycelium
कवकतंतु	hypha
कवकमूल कवक	mycorrhiza fungi

कवकमूल	mycorrhiza
कवकविज्ञान	mycology
कवकविज्ञानी	mycologist
कशाभिका	flagella
कृष्ण क्रोड रोग	black heart disease
कारण संबंध	causal relationship
काला अनावृत कंड	black loose smut
काला कंड	black smut
काला कीलक, कृष्ण कीलक	black wart
काला तना	black stem
काला तना किट्ट	black stem rust
काला मूल	block root
काला मूल विगलन	block root rot
काला विगलन, कृष्ण विगलन	block rot
काला सिरा रोग	black tip disease
काला स्कर्फ	black scurf
काली चित्ती	block spot
काली चित्ती कैंकर	black spot canker
काली मेखला	black leg
काली वलय चित्ती	black ring spot
कॉपर कवकनाशी	copper fungicide

कूट स्तंभ	pseudo stem
कृषि, जुताई	cultivation
कृषिजोपजाति	cultivar, cultivated variety
कृष्ण शाखा	black arm
कैंकर रोग	canker
कोणीय पर्णचित्ती	angular leaf spot
कोनिडियम	conidium
कोनिडियमधर	conidiophore
क्लोवर का स्क्लेरोटिनिया रोग	clover sclerotinia
क्षणिक सूक्ष्मजीव	transient microbe
क्षय	decay
क्षरण	leakage
क्षुप, झाड़ी	shrub
खट्टा	sour
खरपतवार	weed
खराब होना, खराबी	spoilage
गंधक	sulphur
गर्त, गुठली	pit
गर्तन, गड्ढे बनाना	pitting
गहन	intensive
गांठ, पर्वसंधि	node

गुच्छा	cluster
गुच्छित चूड	bunchy top
गुठली	nut, stone
गुठलीदार फल, अष्ठिल फल	stone fruit
गुणन, प्रगुणन	multiplication
गुलाबी रोग	pink disease
गेरूआ, नारंगी किट्ट	orange rust
गोंदार्ति	gummosis
ग्रंथिल मूल, गांठदार जड़	club root
ग्रस्त	infested
ग्रीवा	collar
ग्रीवा–विगलन	neck rot, collar rot
घनकंद	corm
घनाकार संरचना	club like structure
चर	motile
चित्तीदार म्लानि	spotted wilt
चिपचिपा	sticky
चुकंदर का मूलाग्र विगलन	tip rot of beet
चूना–गंधक	lime sulpuhr
चूर्णिल आसिता	powdery mildew
च्यवन, क्षरण	leakage
छाल शल्कता	psorosis

छिड़काव सिंचाई, सक्त्र सिंचाई	sprinkler irrigation
छिड़काव, फुहारण	spraying
छिलका	peal, rind
छीलना	pealing
जंगवर्णता	rusting
जड़ निकलना	striping
जीर्णता	senescence
जीव	organism
जीवाणु	bacteria
जीवाणु निवेशन	bacterization
जीवाणु संवर्ध	bacterial culture
जीवाणुज गोंदार्ति	bacterial gumosis
जीवाणुज म्लानि	bacterial wilt
जीवाणुनाशी	bactericide
जीवाणुनाशी	bactericidal, bacteriophage
जीवाणु–वद्धि	bacterial growth
जीवाण्विक, जीवाणुक	bacterial
जीवाण्कि अंगमारी	bacterial blight
जीवाण्विक निवेशन	bacterial inoculation
जीवाण्विक सक्रियता	bacterial activity

जीवाण्विक स्फोटिका	bacterial pustule
जीवित शेष दर, उत्तरजीविता दर	survival rate
जीवीय	biotic
जीवीय कारक	biotic factor
जैव पदार्थ	organic substance
जैविक कारक	biological agent
झोंका रोग	blast
ठूंठ, मूड	stubble
डंठल	seed stalk
डाली कलम	stem cutting
तंतुजटा	rhizomorph
तना कैंकर, तनाव्रण	stem canker
तनावर्गीय शाक	stem vegetable
ताल, ताड	palm
तिक्त विगलन	bitter rot
तीव्रता	intensity
दंडाणु	bacillus
दक्षता	efficiency
दग्धाग्र	tip burn
दाग, धब्बा	blotch
दृढ फल, गुठली	nut
द्विबीजपत्री	dicotyledon

धूमन	fumigation
नम	moist
नमी	moisture
निक्षालन	leaching
निक्षेपण	deposition
निरोध	prevention, detention
निरोधक	preventive measure
निवारण	prevention
निषिक्तांड	oospore
निष्पत्रण	defoliation
नीली फफूंदी	blue mould
पटल	lamina
पटलिका	lamella
पट्टीय मोजेक	stripe mosaic
पत्रक, पर्णक	leaf let
पपड़ी	scale
परजीविता	parasitism
परजीवी	parasite
परजीवी मूल	parasite root
परागण	pollination

परिदाह	scorch
परिधीय	peripheral
परिपक्व	ripe
परिपक्वन अवस्था	ripening stage
परिवेशी	ambient
परिवेशी ताप	ambient temperature
पर्ण कृमि	leaf worm
पर्ण चित्ती	leaf spot
पर्ण–गुच्छन	rosetting
पर्णच्छद	leaf sheath
पर्ण परिदाह	leaf scorch
पर्णपाती	deciduous
पर्णवृंत	petiole, leaf stalk
पर्णाभ वृंत	phyllode
पर्णाभता	phyllody
पर्व, पोरी	internode
पर्वसंधि	node
पलवार संवर्धन	mulch culture
पश्चमारी	die-back
पर्श्व, पार्श्विक	lateral
पाद / तल विगलन	foot rot

पादप रोग	plant disease
पादप–आविषालु	phytotoxic
पादप–परजीवी	plant parasite
पादपपोषी	plant host
पादप–वृद्धि नियामक	plant growth regulator
पारस्परिक क्रिया, अन्योन्य क्रिया	interaction
पिथियम विगलन	pythium rot
पीएच मान	pH value
पीड़क	pest
पुटिका	vesicle
पुष्पगुच्छ	panicle
पुष्पाग्र म्लानि	blossom wilt
पुष्पाग्र विगलन	blossom end rot
पुष्पावली–वृंतक	peduncle
पूर्व उपचार	pre-treatment
पृथक्कृत	isolate
पेड़ी कुंठन	ratoon stunting
पेड़ी फसल, रतून सस्य	ratoon
पैक करना, संवेष्टन	packing
पैकिंग केंद्र, संवेष्टन केंद्र	packing centre
पैकेज, संवेश्टन	package

पौद रोग	seedling disease
पौध लगाना, रोपण	planting
प्रकंद	root stock rhizome
प्रकाश-संश्लेषण	photosynthesis
प्रकीर्णन	dispersal
प्रजाति	race
प्रतिजीवाणु कारक	antibacterial agent
प्रतिजीविता	antibiosis
प्रतिदीप्ति	fluorescence
प्रतिनिवेशन, प्रति-संरोपण	cross-inoculation
प्रतिरक्षित	immune
प्रध्वंस (रोग), झोंका रोग	blast
प्रभावी	effective
प्ररोह	shoot
प्रसुप्ति	dormancy
प्राथमिक परजीवी	primary parasite
प्राथमिक लक्षण	primary symptom
प्राथमिक संरोप	primary inoculum
फफोला किट्ट	blister rust
फलक (of leaf)	blade
फल विगलन	fruit rot

फलक	lamina of leaf
फलभित्ति	pericarp
फसल चक्र	crop rotation
फाइटोफ्थोरा स्तंभ कैंकर	phytophthora trunk canker
फाइलम, संघ	phylum
फुल्लन	swelling
फुहार, फुहारा, छिड़काव करना	spray
फुहार, सीकर	sprayer
फुहारण	spraying
फूलना, सूजन	swelling
फ्लोम, पोषवाह	phloem
बंध्यकरण, निर्जर्मीकरण	sterilization
बहवार्षिक, बहुवर्षी, चिरस्थायी	perennial
बहुकलिका	multiple bud
बाह्यत्वचा	epidermis
बाह्यफलभित्ति	exocarp
बीज अंगमारी	seed blight
बीज उपचार	seed treatment
बीज नली	seed tube
बीज निवेश, बीज संरोपण	seed inoculation
बीज बोना, बीज वपन	seeding

बीजपत्र	cotyledon
बीजाणु	spore
बीजाणु प्रकीर्णन	spore dissemination
बीजाणुक–जनन	sporulation
बीजाणुजनन	sporogenesis
बीजाणुधानी	sporangium
बीजाणुधानी-धर	sporangiophore, sporophore
बीजाणुधानी-पुंज सोरस	sorus
बीजाणुनाशी	sporicide
बीजावरण	seed coat
बीजोढ़	seed borne
बैसिडियोमाइसिटीज	basidiomycetes
बोना, बोआई करना	sowing
बौछारी सिंचाई	spray irrigation, overhead irrigation
ब्लॉच–पिट	blotch pit
भंडार, संग्रह	storage
भंडारण क्षति	storage loss
भंडारण जीवन	storage life
भूमि सुधार	land reform

भून्युपरिक	epigeal
भूरा विगलन	brown rot
भूरी चित्ती	brown spot
भूस्तारी	stolon
भौतिक नियंत्रण	physical control
मंजरी, पुष्पपुंज	blossom
मंद मोजेक	mild mosaic
मज्जा	pith
मज्जा विवर्णीभवन	pith discoloration
ममीकरण, ममीभूताष्य	mummification
मल्चकृषि	mulch cultivation
मात्रा	dose
मानसून	monsoon
मिट्टी, मष्दा	soil
मिश्रित कृषि, मिश्रित खेती	mixed cultivation
मिश्रित फसल	mixed crop
मिश्रित सस्यन	mixed cropping
मुकुल	bud
मुहबंदी, प्लग लगाना	plugging
मूल क्षेत्र	root zone
मूल तंत्र	root system
मूल विगलन	root rot

मूल, जड़	root
मूल-अर्बुद	root tumour
मूलगांठ	root knot
मूल परजीवी	primary parasite
मूलपरिवेशी	rhizosphere
मूलप्रदेश	root region
मूलाग्र विगलन	root tip, rot
मूलाभ	rhizoid
मूलिका	rootlet
मूसला जड़	tap root
मृतजीवी	saprophyte
मृतजीवी, पूतिजीवी	saprophytic
मृदा आर्द्रता	soil moisture
मृदा संरोपण, मृदा निवेशन	soil inoculation
मृदा–उत्पन्न रोग	soil borne disease
मृदा–जल–निकास	soil drainage
मृदावासी कवक	soil inhabiting fungi
मृदूतक	parenchyma
मृदूतक कोशिका	parenchyma cell
मृदुरोमिल आसिता	downy mildew
मृदोढ़	soil borne

मोजेक	mosaic
म्लानि	wilt
रतुआ, किट्ट	rust
रासायनिक नियंत्रण	chemical control
रिक्तिका	vacuole
रिसाव, स्राव	exudate
रुद्धवद्धि	hypoplasia
रूपांतरण	transformation
रोग-रोधक, रोग-रोधी, रोग-निरोधी	prophylactic
रोगजनक	pathogen
रोगजनक कवक	pathogenic fungi
रोगजनन	pathogenesis
रोगजनकता	pathogenicity
रोगवाहक	vector
रोगाणु	germ
रोगकारक, रोगकारी	disease causative agent
रोजेट	rosette
रोपण	grafting, planting
रोपण–ऋतु	planting season
रोपणी वृक्ष	nursery tree

लक्षण	symptom
लघुबीजाणु	microspore
लघुबीजाणुधानी	microsporangia
लाल किट्ट	red rust
लैंगिक जनन	sexual reproduction
वरण, चयन	selection
वर्णक	pigment
वर्तिकाग्र	stigma
वर्तुल, वृत्ताकार	circular
वलय चित्ती	ring spot
वलय चित्ती विषाणु	ring spot virus
वलय विगलन	ring rot
वल्कुट पाषवाह	cortex phloem
वल्कुट, कॉर्टेक्स	cortex
वष्पोत्सर्जन	transpiration
वातजनिक	aerogenic
वातरंध्र क्षेत्र	lenticel area
वायुजीवी	aerobic
वायुजीवी जीवाणु	aerobic bacteria
वाष्प	vapour
वाहक	carrier

बाह्यदलपुंज, कैलिक्स	calyx
विकल्पी	facultative
विकृत, विरूपित	distorted
विकृतिजनक, रोगजनक	pathogen
विक्षति	lesion
विगलन	rot
विघटन	disntegration
विभज्योतक	meristem
विरंजन चूर्ण	bleaching powder
विरलमारी पीड़क	sporadic pest
विरूपति	distorted
विरोधी	antagonist
विरोधी क्षमता	antagonistic capacity
विरोधी सूक्ष्मजीवी / सूक्ष्मजीव	antagonistic micro-organism
विलगन	abscission
विशेष-क्षेत्री जलवायु,	microclimate
विषाणु	virus
विसर्जन	discharge
विसर्पी लता	creeper
वेधन, प्रवश	penetration

वैकल्पिक, एकांतर	alternate
व्यवस्थित	systematic
व्याकुंचित पर्ण	crinckle leaf
व्याकुचित मोजेक	crinkle mosaic
शल्क पत्र	scale leaf
शल्क, पपड़ी	scale
शल्ककंद विगलन	bulb rot
शाक	herb
शिखर	apex, crown
शिखर किणक	crown wart
शिखर पिटिका	crown gall
शिरा	vein
शीर्ष दाब लगाना	tip layering
शीर्ष, शिखर, अग्र	apex
शुद्ध संवर्ध	pure culture
शेष सस्य	crop residue
श्लेष्मक	mucilage
श्यामव्रण	anthracnose
संकेंद्री, संकेंद्रिक	centric
संक्रमण	infection
संरक्षण सस्य	cover crop
संरक्षी	protective

संरोप	inoculum
संरोपण	inoculation
संवहनी पूल	vascular bundle
सक्ष्मपोषी उर्वरक	micronutrient fertilizer
सड़ा–सूखा फल	mummified fruit
सबिंदु	centric
समीप रोपण, घना रोपण	close planting
सर्वांगी रोग	systemic disease
सस्य कर्म	crop culture
सस्य, फसल	crop
सस्यावर्तन, फसलचक्र	crop rotation
सहजीवन, सहजीविता	symbiosis
सहजीवी	symbiotic
सहनशील किस्म	tolerant variety
सांद्रता	concentration
सापेक्ष आर्द्रता	relative humidity
सामान्य पर्ण चित्ती	common leaf spot
सामान्य मोजेक	common mosaic
सामान्य स्कैब/कच्छु	common scab
सार्थक	significant
सार्थकता	significance

सिरा, अग्रस्थ, अंत्य, अंतस्थ	terminal
सुग्राहिता	susceptibility
सुप्त बीजाणु	resting spore
सूक्ष्म जलवायु	microclimate
सूक्ष्म पोषकतत्व	micronutrient
सूक्ष्मजीव	microorganism, microbe
सूक्ष्मजीवी कोशिका	microbial cell
सूक्ष्मजीवी क्रिया	microbial activity
सूक्ष्मदर्शी	microscope
स्कैब, कच्छु	scab
सेक्त्र	sprinkler
स्तंभ–अंत विगलन	stem end rot
स्थानिक सूक्ष्मजीव	native microbe
स्फीत	turgid
स्फोट, स्फोटिका	pustule
स्राव	exudate
स्वमल्च मृदा	self mulching soil
हरिमाहीन	chlorotic
हरिमाहीनता	chlorosis
हल चलाना, जोतना, जुताई	ploughing
हल्का पीला, पेल येलो	pale yellow

आम में गुच्छा रोग के कायिक विकृति के लक्षण

आम में गुच्छा रोग के पुष्पक्रम विकृति के लक्षण

आम की पत्तियों पर श्यामव्रण रोग के लक्षण

आम के फलों पर श्यामव्रण रोग के लक्षण

केला की पत्तियों पर सिगाटोका रोग के लक्षण

केला के फलों पर श्यामव्रण रोग के लक्षण

केला के गुच्छ शीर्ष रोग के लक्षण

नींबू का गोंदार्ति रोग

नींबू के श्यामव्रण पश्चमारी शीर्षारंभी के लक्षण

नींबू की पत्तियों पर कैंकर के लक्षण

नींबू के फल पर कैंकर के लक्षण

नींबू का हरितमा रोग के लक्षण

पपीते का पर्ण–कुंचन रोग

पपीते का पर्ण–कुंचन रोग

अनार का जीवाणुज पर्णचित्ती रोग

अनन्नास का अंतः विगलन रोग

बेर के चूर्णिल आसिता रोग के लक्षण

सेव में मार्सोनिना पर्ण–चित्ती रोग

सेव के फलों पर स्कैब रोग के लक्षण

सेव के फलों पर तिक्त विगलन रोग के लक्षण

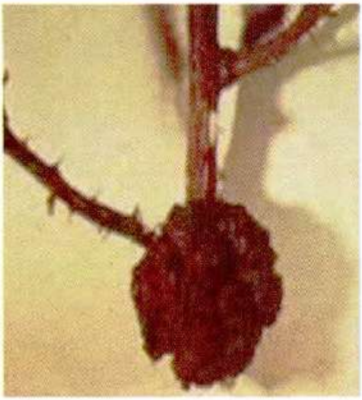

आड़ू का शिखर पिटिका रोग के लक्षण

आलू का पछेती अंगमारी रोग

आलू का अगेती अंगमारी रोग

आलू का स्केब रोग

टमाटर का पछेती अंगमारी रोग

टमाटर का जीवाणुज म्लानि रोग

टमाटर का मोजेक रोग

बैंगन का फोमोप्सिस अंगमारी एवं फल विगलन रोग

बैंगन का स्क्लेरोटिनिया म्लानि रोग

बैंगन का जीवाणुविक म्लानि रोग

बैंगन का छोटी पत्ती रोग

मिर्च का श्यामव्रण तथा फल विगलन रोग

मिर्च का पर्ण कुंचन रोग

फूलगोभी की पत्तियों पर मृदुरोमिल आसिता रोग के लक्षण

गांठगोभी की पत्ती पर एल्टरनेरिया अंगमारी रोग के लक्षण

फूलगोभी की पत्तियों पर V आकार

फूलगोभी के फूल में सड़न रोग के लक्षण

लौकी की पत्तियों पर श्यामव्रण रोग के लक्षण

तोरई की पत्तियों पर चूर्णिल आसिता रोग के लक्षण

तोरई की पत्तियों पर मोजेक रोग के लक्षण

मटर में रतुआ रोग

मटर की पत्तियों पर चूर्णिल आसिता रोग

भिण्डी की पत्तियों पर सरकोस्पोरा पर्णचित्ती रोग

भिण्डी की पीला शिरा मोजेक रोग

प्याज का नील लोहित दाग रोग

अरबी का फाइटोफ्थोरा अंगमारी रोग

अदरक का प्रकंद विगलन रोग

हल्दी का पर्ण चित्ती रोग

हल्दी का पर्ण दाग रोग

पालक का सर्कोस्पोरा पर्णचित्ती रोग

धनिया का तना पीटिका रोग

खुम्भ के कम्पोस्ट में हरा फफूंद रोग

ग्लेडियोलस का म्लानि रोग

ग्लेडियोलस का ग्रे या स्लेटी कवक रोग

ग्लेडियोलस का धनकंद सड़न

गुलदाउदी का तना एवं जड़ सड़न रोग

गुलदाउदी का चूर्णील आसिता रोग

गुलदाउदी का रतुआ रोग

गुलदाउदी का जीवाणुज झुलसा रोग

गुलदाउदी का जीवाणुज पर्ण चित्ती रोग

GMGIPN - 24 HRD/ND/2018 - 1000 Books

© भारत सरकार
प्रकाशन नियंत्रक

PED-1001
1000-2018 (DSK-II)

ISBN 978-81-939664-3-3

मूल्य :
Price: ₹ 199/-

Mobile App of Administrative Terms Glossary is now available in Google Play Store.

Step-1: Search CSTT • Step-2: Download • Step-3: Open to use

वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग
मानव संसाधन विकास मंत्रालय (उच्चतर शिक्षा विभाग), भारत सरकार
पश्चिमी खंड-7, रामकृष्णपुरम, नई दिल्ली - 110066.

Commission for Scientific and Technical Terminology
Ministry of Human Resource Development
(Department of Higher Education), Govt. of India
West Block-7, R.K. Puram, New Delhi - 110066.
☎ 011-26105211 • Website: www.cstt.mhrd.gov.in
www.csttpublication.mhrd.gov.in